हिन्दी और राजस्थानी
भाषा का
तुलनात्मक अध्ययन

लेखक

डॉ॰ रामकृष्ण 'महेन्द्र'

एम ए (संस्कृत, हिन्दी, संगीत एव अंग्रेजी पूर्वार्द्ध)
पी-एच डी (हिन्दी), व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य
'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (शोध प्रबंध) एव
'बीकानेरी बोली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन' आदि
अनेक बहु प्रचलित ग्रंथो के लेखक ।

प्रकाशक

राज प्रकाशन, फलौदी

[जोधपुर-राज०]

ग्रन्थ	हिन्दी और राजस्थानी तुलनात्मक अध्ययन
लेखक	डा० रामकृष्ण 'महेन्द्र'
प्रकाशक	राज प्रकाशन
	महेश भवन स्टेशन रोड फलौदी
प्रथम सस्करण	१५ अगस्त १९७७
मूल्य	चालीस रुपये मात्र
मुद्रक	जवाहर प्रेस, जेल रोड, बीकानेर

A comparative Study of Hindi and Rajasthani

By

Dr Ram Krishna Mahendra

Price Rs 40/-

दो शब्द

सृजन का मूलोद्देश्य साहित्य शास्त्र सृष्टा ही के शब्दों में 'यशसे' अर्थकृते,व्यवहार विदे, शिवेतरक्षतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे होता है, पर प्रस्तुत कृति के सृजन का मूलोद्देश्य न अर्थार्जन है, न यशार्जन न इतर। तो क्या यह कृति निरुद्देश्य है ? नहीं। प्रस्तुत कृति का मूल उद्देश्य मात्र पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों (ग्रियर्सन आदि) की एवं उन्हीं का अनुसरण करने वाले कुछ भाषाविदों की इस भ्रान्त धारणा का निवारण है कि राजस्थानी भाषा हिन्दी की शाखा नहीं। राजस्थानी हिन्दी एवं संस्कृत भाषा भाषी होने के नाते मैं अब भाषाविदों से अनुनय करता हूं कि आगे इस भ्रान्त धारणा का अंधानुकरण न करें। प्रस्तुत ग्रंथ के आद्योपान्त पठन से यह तथ्य उजागर हो जाएगा कि राजस्थानी भाषा हिन्दी ही की एक शाखा है। बस यह सिद्ध करना ही इस कृति का उद्देश्य है। प्रकाशक महोदय का हृदयान्तस्तल से आभारी हूं जो इस कृति को प्रकाशित कर रहे हैं।

—लेखक

प्रकाशकीय

डा रामकृष्ण 'महेन्द्र' की काफी सेवा व मिन्नत करने पर उन्होंने मुझे अपनी कृति हिन्दी और राजस्थानी भाषा तुलनात्मक अध्ययन छापने की अनुमति दी हमारे प्रकाशन की यह प्रथम कृति है अतः हमारा यह प्रयास था कि राजस्थान के अच्छे से अच्छे लेखक की बहुमूल्य कृति छापें। हमें कई प्रकाशकों व साहित्कारों ने डा 'महेन्द्र' की कृति छापने की राय दी। कृति प्रकाशित हो गई है। मुझे बहुत गर्व एवं प्रसन्नता है कि हमारे प्रकाशन से ऐसी बहुमूल्य रचना छपी है।

—प्रकाशक

राज प्रकाशन, महेश भवन, फलौदी

विषयानुक्रमणिका

पूर्व खण्ड

विषय प्रवेश पृष्ठ १ से ५०

हिन्दी एव राजस्थानी भाषा भाषिक अभिप्राय, क्षेत्र व सीमाए, नामकरण वर्गीकरण, बोलिया–मारवाडी, ढूढाडी मेवाती, मालवी बागडी, उद्‌भव और विकास–भारतीय आर्य भाषा प्राचीन भारतीय आर्य भाषा–छान्दस, ध्वनिया, रूपतत्व, लौकिक सस्कृत–ध्वनियाँ, रूप तत्व वदिक एव लौकिक सस्कृत तुलना। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा–पालि—नामकरण, क्षेत्र, विशेषताए, पालि छान्दस एव सस्कृत तुलना प्राकृत—नामकरण, वर्गीकरण–प्राचीन प्राकृत अर्वाचीन प्राकृत, अभिलेखी प्राकृत अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत, निय प्राकृत मिश्र प्राकृत की ध्वन्यात्मक एव रूपात्मक विशेषताए। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाए—वर्गीकरण आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की विशेषताए, प्रतिनिधि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाए—सिन्धी लहदा, पजाबी, गुजराती उडिया, आसामी, बगाली, मराठी हिन्दी नामकरण व वर्गीकरण पूर्वी हिन्दी अवधि छत्तीसगढी बघेली पश्चिमी हिन्दी—ब्रज कनौजी बुन्देली बागरू कौरवी, खडी बोली हिन्दी और राजस्थानी–तुलना–साहित्य, लिपि।

उत्तर खण्ड

विषय–प्रवेश

०० हिन्दी एव राजस्थानी भाषा भाषिक अभिधार्थ

'हि न्दी' शब्द भाषिक अर्थ मे उस भाषा का द्योतक है जो वर्तमान समय मे परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा के रूप मे, भारतीय गणतन्त्र विधान की राज्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है

राजस्थानी शब्द भाषिक अर्थ म उस भाषा का द्योतक है जो राजस्थानी लोगों द्वारा आज भी उपयोग मे लायी जाती है, प्राचीन समय मे जो मरुभाषा, डिंगल आदि नामों मे सुशोभित थी । स्थूल रूप मे वर्तमान राजस्थान मे लोगो द्वारा प्रयोगाहृ भाषा राजस्थानी है ।

०१ हिन्दी एव राजस्थानी क्षेत्र व सीमाएँ

'इस प्रसग म हिन्दी मे तात्पर्य उस भाषा के लिए है जिसकी प्रसार भूमि की सीमाए पश्चिम म जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम मे अम्बाला, उत्तर मे शिमला से लेकर नेपाल के छोर तक पहाडी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व मे भागलपुर, दक्षिण-पूर्व मे रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम म खडवा तक पहुचती है ।[1]

१ डा धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास, प्रयाग पृ० ५६

यदि उपयु क्त हि दी भूमि क्षेत्र का अवलोकन करें तो विदित हागा कि राजस्थानी की सीमाए भी इसी के अ तगत समाहित हा गई है। पर राजस्थानी भापा की अपनी निजी क्षेत्रीय विशेपताए ह जो हि दी एव राजस्थानी के बीच क्षत्रीय विभेदक रेखा खीचती है तथा हि दी से अपना प्रथक अस्तित्व बनाए हुए है। ग्रियसन के अनुसार 'राजस्थानी राजस्थान और मालवा की मातभाषा है। इसके अतिरिक्त यह मध्य प्रदश, पजाब तथा सिंध के कुछ भागो म बोली जाती है। [1] ग्रियसन ने राजस्थानी भापा–भापी प्रदश का क्षत्र फल लगभग डेढ लाख वगमील बताया है जो अधिकाश भारतीय भापाओ के क्षेत्रफल से अधिक ह। उनके अनुसार इस भापा क बोलन वाला की सख्या १६२६८२६० है। [2] १९६१ की जनगणना के अनुसार राजस्थानी भापिया की सख्या डेढ कराड उ चास लाख है। पर तु वतमान समय मे राजस्थानी भापा का क्षेत्र एव सीमाए एव बोलन वालो की सख्या हिन्दी के बढते हुए प्रचार–प्रसार क कारण सीमित होती जा रही है। राजस्थान के इस विशाल क्षेत्र प्रदेश की उत्तरी सीमा पजाबी, पश्चिमी सीमा सि धी दक्षिणी सीमा मराठी, दक्षिण पूर्वी सीमा बुन्देली पूर्वी सीमा व्रज एव उत्तर पूर्वी सीमा बागड़ू तथा खडी बोली नामक बोलिया बनाती। [3]

भौगोलिक दृष्टि से हि दी भापा का क्षेत्र उत्तर मे हिमालय से लेकर दक्षिण मे नबदा तक है। ग्रियसन ने इस समस्त भू भाग को पश्चिमी तथा पूर्वी हि दी क्षेत्र मे विभक्त किया है। यहा यह ध्यातव्य है कि ग्रियसन ने राजस्थानी को हि दी क्षेत्र से बाहर माना

---

१ ग्रियसन खण्ड १ भाग १ प० १७१
२ वही वही वही
३ वही वही वही

है। प्रस्तुत प्रबन्ध लेखन का मुख्य उद्देश्य ही इस भ्रान्त धारणा का निवारण है। वस्तुत राजस्थानी भी हिन्दी की एक शाखा है जो आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जाएगा।

० २ हिन्दी एव राजस्थानी नामकरण

स्थूल रूप से हिन्दुस्तानी जिस भाषा का प्रयोग करते है वही 'हिन्दी' कहलाती है। यह नामकरण प्राचीन है। ईरान या फारस के लोग सिन्धु-नदी के तटवर्ती प्रदेश को सिन्धी तथा वहा के निवासियो को 'हिन्द' कहते थे। उन्ही 'हिन्द' लोगो की भाषा हिन्दी नाम से अभिहित की जाती है। यह नामकरण विदेशियो की देन है।

'राजस्थानी' भाषा का नामकरण पूर्णत आधुनिक है। स्वतत्रता से पूर्व ब्रिटिश शासन, मुसलमानी शासन आदि मे राजनैतिक कारणो से राजस्थान की भौगोलिक स्थिति भिन्न-भिन्न रही है अत भिन्न-२ समय मे यहा की भाषा भी भिन्न नामो से अभिहित की जाती रही है। वर्तमान राजस्थान मे २६ जिले है पर प्राचीन काल मे समग्र राजस्थान के लिए किसी एक नाम का प्रयोग नही होता था। प्राचीन तथा मध्य युग मे इसके भिन्न-२ नाम थे एव इसके कई भाग अन्य प्रदेशो के अन्तर्गत थे। यथा वर्तमान बीकानेर एव जोधपुर जिले महाभारत काल मे जागल देश कहलाते थे।[1] इसीलिए बीकानेर के राज्य चिन्ह मे जय जगलधर बादशाह लिखा मिलता

---

१ क महाभारत भीष्म पर्व अध्याय ६/५६
ख विशेष विवरण के लिए देखिए लेखक कृत
बीकानेरी बोली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन पृ० १

है। प्राचीन काल मे अलवर राज्य का उत्तरी भाग कुरु देश मे, दक्षिणी व पश्चिमी मत्स्य देश मे एव पूर्वी भाग शूरसेन जनपद के अन्तर्गत थे। भरतपुर धौलपुर एव करौली का अधिकाश भाग भी शूरसेन जनपद मे ही था। उदयपुर राज्य का प्राचीन नाम 'शिव' था। डूगरपुर, बासवाडा का प्राचीन नाम वागड था। जोधपुर राज्य का नाम मरु, मारवाड था। इसका दक्षिणी भाग गुजरत्रा कहलाता था। सिरोही अर्बुद (आबू) के अन्तर्गत आता था। जसलमेर राज्य का पुराना नाम 'माड' था। कोटा तथा बूदी सपादलक्ष के अन्तर्गत थे। कहने का अभिप्राय यह है कि वर्तमान राजस्थान (राजपूताना) नाम आधुनिक है एव इसी प्रान्त मे बोली जाने वाली भाषा राजस्थानी कहलाती है इससे पूर्व इसके मरु भाषा[1] मरुभाषा[2] मरुदेशीया भाषा[3] मरुवाणी[4] डिंगल आदि नाम थ।

मरुदेश की भाषा का सर्व प्रथम उल्लेख आठवीं शती मे उद्योतन सूरि द्वारा रचित कुवलय माला नामक ग्रन्थ मे उपलब्ध होता है। इसमे अठारह देशी भाषाए गिनाई गई है जिनमे एक मरुभाषा भी है। सत्रहवीं शती मे अबुल फजल ने अपने ग्रन्थ आइने अकबरी मे प्रमुख भारतीय भाषाओ मे मारवाडी को भी गिनाया है। अठारवी शती मे हमे इस भाषा के लिए डिंगल नाम उपलब्ध होने लगता है। डिंगल शब्द भाषा अर्थ मे कब प्रयुक्त होने लगा एव इसका क्या अभिप्राय है ? इस विषय म अति विवाद है। उस विवाद म न

---

१ गोपाल लाहोरी रस विलास-मरुभाषा निर्जल तजी

२ कवि रघुनाथ रूपक मरुभूम भाषा तणौ मारग रस आखीरात गृ

३ कवि मोन्जी पाबू प्रकाश

४ सूर्यमल्ल वशभास्कर

है। प्रस्तुत प्रन्थ लेखन का मुख्य उद्देश्य ही इस भ्रान्त धारणा का निवारण है। वस्तुत राजस्थानी भी हिन्दी की एक शाखा है जो आगे के विवचन मे स्पष्ट हो जाएगा।

० २ हिन्दी एव राजस्थानी नामकरण

स्थूल रूप से हिन्दुस्तानी जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वही 'हिन्दी' कहलाती है। यह नामकरण प्राचीन है। ईरान वा फारस के लोग सिन्धु-नदी के तटवर्ती प्रदेश को सिन्धी तथा वहा के निवासियो को 'हिन्द कहते थे। इन्ही 'हिन्द' लोगो की भाषा हिन्दी नाम से अभिहित की जाती है। यह नामकरण विदेशियो की देन है।

राजस्थानी' भाषा का नामकरण पुरातन आधुनिक है। स्वतन्त्रता से पूर्व ब्रिटिश शासन, मुसलमानी शासन आदि मे राजनतिक कारणो से राजस्थान की भौगोलिक स्थिति भिन्न-भिन्न रही है अत भिन्न-२ समय मे यहा की भाषा भी भिन्न नामो से अभिहित की जाती रही है। वर्तमान राजस्थान मे २६ जिले ह पर प्राचीन काल मे समग्र राजस्थान के लिए किसी एक नाम का प्रयोग नही होता था। प्राचीन तथा मध्य युग म इसके भिन्न-२ नाम थे एव इसके कई भाग अन्य प्रदेशो के अन्तगत थे। यथा वतमान बीकानेर एव जोधपुर जिले महाभारत काल मे जागल देश कहलाते थे।[1] इसीलिए बीकानेर के राज्य चिन्ह मे जय जगलधर बादशाह लिखा मिलता

---

१ क महाभारत भीष्म पर्व अध्याय ६/५६

ख विशेष विवरण के लिए देखिए लखक कृत

बीकानेरी बोली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन पृ० १

है। प्राचीन काल मे अलवर राज्य का उत्तरी भाग कुछ कुरु देश मे, दक्षिणी व पश्चिमी मत्स्य देश में एव पूर्वी भाग शूरसेन जनपद के अ तगत थे। भरतपुर धौलपुर एव करौली का अधिकाश भाग भी शूरसेन जनपद मे ही था । उदयपुर राज्य का प्राचीन नाम शिव' था । डू गरपुर, बासवाडा का प्राचीन नाम वागड था । जोधपुर राज्य का नाम मरु, मारवाड था। इसका दक्षिणी भाग गुजरत्रा कहलाता था । सिरोही अर्बु द (आबू) के अन्तगत आता था। जैसलमेर राज्य का पुराना नाम 'माड' था। कोटा तथा बू दी सपादलक्ष के अ तगत थे । कहने का अभिप्राय यह है कि वतमान राजस्थान (राजपूताना) नाम आधुनिक है एव इसी प्रा त मे बोली जाने वाली भाषा राजस्थानी कहलाती है इससे पूव उसके मरु भाषा[1] मारुभाषा[2] मारुदेशीया भाषा[3] मरुवाणी[4] डिंगल आदि नाम थे।

मरुदेश की भाषा का सव प्रथम उल्लेख आठवी शती मे उद्योतन सूरि द्वारा रचित कुवलय माला नामक ग्र थ मे उपलब्ध होता है। इसमे अठारह देशी भाषाए गिनाई गई है जिनम एक मरुभाषा भी है। सत्रहवी शती मे अबुल फजल ने अपने ग्र थ आइने अकबरी म प्रमुख भारतीय भाषाओ म मारवाडी को भी गिनाया है। अठारवी शती मे हमे इस भाषा के लिए डिंगल नाम उपलब्ध होने लगता है। डिंगल शब्द भाषा अथ म कब प्रयुक्त होने लगा एव इसका क्या अभिप्राय है ? इस विषय म अति विवाद है। उस विवाद मे न

---

१ गोपाल लाहोरी रस विलास-मरुभाषा निजल तजी

२ कवि रघुनाथ रूपक मरुभूम भाषा तणो मारग रस आखीरान ग

३ कवि मोडजी पाद् प्रकाश

४ सूयमल्ल वशभास्कर

पढकर मै यही कहूगा कि डिंगल शब्द 'पिंगल' भाषा के सादृश्य पर ही रचित हुआ है पिंगल' शब्द भाषा अर्थ मे बाद मे प्रयुक्त हुआ था, उससे पहले यह पिंगल' ऋषि के नाम पर उनके द्वारा रचित छन्द शास्त्र के लिए प्रयुक्त होता था यथा छन्दो ज्ञाननिधि जगान मकरो वेलातटे पिंगलम् पञ्चतन्त्र २/३३ 'डिगल शब्द का मूल सबध म 'डिङ्कर' से है जिसका अर्थ है 'सेवक'। राज्याश्रित चारण राजाओ के सेवक ही थे। वे उनकी चाटुकारिता मे जा कविता आदि लिखते थे वह बाद मे भाषा अर्थ मे पिंगल के सादृश्य पर डिंगल कह लाने लगी। जिस प्रकार पिंगल ऋषि के नाम पर पिंगल भाषा बनी उसी प्रकार डिङ्कर (सेवक-चारणादि की कविता) के आधार पर डिंगल' भाषा बनी।

'राजस्थानी' नामकरण विदेशी भाषा-शास्त्रियो की देन है। जेम्स टाड ने पुरानी बहियों के आधार पर इस राज्य का नाम रायवाडा या रायथान नाम दिया है।[1] आगे चलकर यही लौकिक रूप सारे राज्य के लिए एक इकाई के रूप में 'राजस्थान' प्रयुक्त किया जाने लगा एव इसकी भाषा राजस्थानी कही जाने लगी।

हिन्दी एव राजस्थानी वर्गीकरण

हिंदी एव राजस्थानी भाषा के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे भाषाविदो मे मतैक्य नही है। ग्रियसन ने भारतीय आर्य भाषाओ को मुख्यत तीन वर्गो मे वर्गीकृत किया-१ बहिरग शाखा २ मध्य-देशीया शाखा-क- बीच का समुदाय-१ पूर्वी हिन्दी। ३ अतरग शाखा (क) केन्द्रीय अथवा भीतरी समुदाय १ पश्चिमी हिन्दी। इस प्रकार स्पष्टत उन्होने हिन्दी को दो भागों मे वर्गीकृत किया-१ पूर्वी

---

1 कर्नल टाड एनाल्स पृ० १

हिन्दी २ पश्चिमी हिन्दी । पूर्वी हिन्दी के अन्तगत उन्होंने अवधि बघेली तथा छत्तीसगढ़ी बोलियों को परिगणित किया है एवं पश्चिमी हिन्दी के अन्तगत हिन्दोस्तानी बांगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी एवं बुन्देली बोलियों को परिगणित किया है । राजस्थानी को उन्होंने हिन्दी की बोलियों के अन्तगत परिगणित नहीं किया है ।[1] डा० सुनीति कुमार ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना की एवं उन्होंने मध्यदेशीया में पश्चिमी हिन्दी एवं प्राच्य भाषाओं में पूर्वी हिन्दी को वर्गीकृत किया ।[2] डा० वर्मा ने चटर्जी के वर्गीकरण का ही अनुसरण किया है । [3] डा० भोलानाथ ने मध्यवर्ती के अन्तगत पूर्वी एवं पश्चिमी हिन्दी को समाहित किया है ।[4] उपर्युक्त, वर्गीकरणों पर दृष्टिपात करने से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी भाषा को दो प्रमुख वर्गों में वर्गीकृत किया गया है-१ पूर्वी हिन्दी २ पश्चिमी हिन्दी । पर हिन्दी की विभाषाओं के सम्बन्ध में विवाद है । मेरे विचार में राजस्थानी भाषा पश्चिमी हिन्दी की एक विभाषा है । ग्रियर्सन ने इसे स्वीकृत नहीं किया है । वस्तु स्थिति यह है कि ब्रज एवं राजस्थानी (पिंगल एवं डिंगल) दोनों ही हिन्दी की प्रतिनिधि विभाषाएं हैं एवं दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

राजस्थानी भाषा के वर्गीकरण के सम्बन्ध में भी भाषाविदों की मान्यताएं पृथक् पृथक् हैं । ग्रियर्सन ने राजस्थानी भाषा को

---

१ ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया भाग—१

२ डा० सुनीति कुमार ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ बंगाली लैंग्वेज

३ डा० धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास

४ डा० भोलानाथ हिन्दी भाषा

निम्न प्रकारेण वर्गीकरण किया है--

१ पश्चिमी राजस्थानी—इनमे ये बोलिया आती हैं-जोधपुर की स्टैण्डर्ड या खडी राजस्थानी अर्थात् शुद्ध पश्चिमी मारवाडी, ठटकी, थली, बीकानेरी, बागडा, शेखावाटी, मेवाडी, खराडी, सिरोही की बोलिया (राठी की बोली) गोडवाटी और देवडावाटी ।

२ उत्तर-पूर्वी राजस्थानी अहीर वाटी और मेवाती ।

३ मध्यपूर्व राजस्थानी (ढूढाडी) तोरावाटी, खडी जैपुरी काठडा, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढी चौरासी (शाहपुरा) नागर चाल हाडोती ।

४ दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी या मालवी-रागडी और सोडवाडी ।

५ दक्षिणी राजस्थानी निमाडी

डा० सुनीति कुमार ने ग्रियर्सन द्वारा कृत वर्गीकरण मे प्रथम वर्ग एव ततीय वर्ग को ही राजस्थानी कहना अधिक तर्क सगत समझा है तथा एक को पश्चिमी राजस्थानी एव तीन को पूर्वी राजस्थानी की सज्ञा दी है । साथ ही अहीरवाटी, मेवाती, मालवी, मेवाती एव निमाडी को राजस्थानी मे परिगणित किया जाय या नही सदिग्धावस्था मे छोड दिया है एव शोध की अपेक्षा की है ।[१] ग्रियर्सन ने भीली का राजस्थानी मे पृथक माना पर डॉ० सुनीति कुमार के अनुसार व्याकरण की दृष्टि से भीली को भी राजस्थानी के अधीन रखना ठीक होगा ।[२] मेरे विचार मे वर्तमान राजस्थानी पूर्वकाल मे विविध भौगोलिक क्षेत्रो के आधार तद्देश के आधार पर विविध नामो से अभिहित की जाती थी । 'राजस्थानी' नाम से पूर्व

---

१ डा० सुनीति कुमार चटर्जी राजस्थानी, पृ० १०

२ वही वही पृ० ६

यह भाषा मरुभाषा, मारवाडी डिगल आदि नामो से अभिहित थी । कालान्तर म राजनीतिक कारणो से राजस्थान एक प्रान्त बना । पाश्चात्य भाषाविदो ने इसी प्रान्त मे आए सभी क्षेत्रो की बोलिया को राजस्थानी ही मान लिया । वस्तु स्थिति यह है कि ये सभी क्षेत्र राजस्थानी भाषा के अन्तगत नही है । मेरे विचार मे पश्चिमी एव पूर्वी राजस्थानी को आंशिक राजस्थानी तथा शेष को राजस्थानी सम्पर्कित मानना चाहिए फिर भी पूर्ण निष्कर्षों की प्रतिक्षा करनी चाहिए । [1]

हिन्दी एव राजस्थानी बोलिया

हिन्दी एव इसकी बोलिया का विस्तृत विवेचन मैं कर चुका हू [2] अत यहा पिष्टापेषण नही किया है।

राजस्थानी की अनेक बोलिया है । आजकल जिले के आधार पर भी राजस्थानी की बोलिया के नाम रखे जाने लगे है यथा-जोधपुरी बीकानेरी, बाडमेरी, जैसलमेरी, चुरू की बोली आदि । मुख्यत राजस्थानी की पाच बोलिया जिनका कि साहित्यिक रूप भी उपलब्ध होता है, ये है–१ मारवाडी २ ढूढाडी, ३ मालवी, ४ मेवाती एव ५ बागडी ।

मारवाडी मारवाडी प राजस्थानी की प्रतिनिधि शाखा है। मारवाड मे भाषा वाची स्त्री प्रत्यय ई के योग से यह शब्द रचित हुआ है। प्राचीन युग मे इसी के नाम मरुभाषा मारुभाषा मरुवाणी आदि थे । मारवाडी का क्षेत्र मारवाड मेवाड, जैसलमेर,

---

१ एतद् विषद विवेचन म अपने शोध प्रबध राजस्थानी भाषा उद्भव और विकास म करूगा ।

२ लेखक हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक इतिहास

बीकानेर एव जयपुर का पश्चिमोत्तर भाग है । राजस्थानी की अन्य सभी शाखाओं से यह भौगालिक क्षेत्र, बोलने वालो की जन सख्या, साहित्य आदि सभी दृष्टियो से समृद्ध है । ग्रियर्सन ने इसके बोलनै वालो की जन सख्या ६० लाख बताई है । मीरा मारवाडी की प्रतिनिधि कवयित्री थी । राय पृथ्वीराज द्वारा रचित बेलि क्रिसन रुक्मणीरी भी मारवाडी की प्रमुख रचना है । व्रजभापा के प्रचार प्रसार एव महत्ता के कारण पिंगल के सादृश्य पर म० डिंकर (सेवक चारण)>डिंगर>डिंगल शब्द मारवाडी भापा का वाचक हो गया । जोधपुरी, बीकानेरी, मेवाडी थली, ठटकी आदि इसकी उप बोलिया ह ।

क्षेत्रीय आधार पर मारवाडी के मुख्यत चार भेद है— १ पूर्वी मारवाडी २ पश्चिमी मारवाडी, ३ उत्तरी मारवाडी, ४ दक्षिणी मारवाडी । पूर्वी मारवाडी के अन्तगत मगरा बोली (मगरवी) मेवाटी, मारवाडी, गिरासिया की बोली, मारवाडी ढुढारी, मेवाडी बोलिया आती है । गोडवाटी, सिरोही, देवडा वाटी तथा मारवाडी गुजराती, दक्षिणी मारवाडी की बोलिया है । पश्चिमी मारवाडा मे थली एव ठटकी बोलिया आती ह । बीकानेरी शेखावाटी तथा वागडो, उत्तरी मारवाडी की शाखाए हैं ।

सगीत के क्षेत्र म 'माड' राग के लिए मारवाडी को सर्वोत्कृष्ट भापा माना गया है । कहा भी गया है "छदो मे सोरठ छद एव रागो मे माड राग जितना मारवाडी म अच्छा निखरता है उतना अच्छा और किसी मे नही ।

ढूढाडी

वतमान मे यह जयपुरी नाम से भी अभिहित की जाती है। ढूढाड प्रदेश की भाषा होने के कारण इसका नाम ढूढाडी प[ड़ा] है। यह मुख्यत जयपुर, किसनगढ, टौंक, अजमेर मरवाड उत्तर-पूर्वी भागो मे बोली जाती है। ग्रियसन ने इसके बोलने वालो की सख्या १,६८७,८६६ बताई है। तोरावाटी, काठेडा, चौरासी, नागरचाल तथा राजावाटी इसकी क्षेत्रीय बोलिया हैं। ढूढाडी मे साहित्य रचना भी हुई है। सत दादू ने अपने पथ का प्रचार इसी वाणी मे किया। बाइबिल का अनुवाद भी हुआ है।

हाडौती

बूदी कोटा एव इनके आस-पास मे बोली जाने वाली बोली का नाम हाडौती है। हाडा जाति के राजपूतो द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इसका नाम हाडौती हुआ है। इसके बोलने वालो की सख्या ६,६१,१०१ है। डा० कन्हैयालाल शर्मा ने इसका अत्यन्त वज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। हाडौती एव ढूढाडी म अधिक साम्य है। इसमे प्रतिष्ठित साहित्यिक रचना लब्ध नही होती।

मेवाती

यह प्रमुखत अलवर, भरतपुर एव गुडगाव मे बोली जाती है। प्रमुखत मेओ' 'मेउ' लोगो द्वारा बोली जाने के कारण इसका नाम मेवाती है। यह बृजभाषा से अति सम्पृक्त है। ग्रिय-

सन ने इसके बोलने वालो की सख्या ०,५३८०० बताई है। इसमे यत्किंचित साहित्य रचना भी हुई है। चरणदास एव उनकी शिष्याओ दया बाई एव सहजोबाई ने इसी मे अपनी साहित्यिक रचनाए की है।

मालवी

मालवा क्षेत्र की बोली है जो दक्षिण पूर्वी राजस्थाना का प्रतिनिधित्व करती है। इसके प्राचान नाम अवन्ती, अवंतिका एव रगडी मिलते ह। ग्रियर्सन ने इसके बोलने वाला की सख्या ४,३५०-५०७ बताई है। सोंदवाडी वोनेवाडी, पारखी कठियाली इसकी क्षेत्रीय बोलिया ह। इसमे यत्किंचित साहित्य रचना भी हुई है। चद्रसखी इसकी प्रतिनिधि कवयित्री है।

राजस्थानी भाषा की उपयुक्त शाखाओ पर दृष्टिपात करने पर विदित होगा कि इसकी प्रमुख शाखाए अथवा आदश राजस्थानी के रूप की प्रतिष्ठापिकाए दो शाखाए हैं। १-पूर्वी राजस्थानी, २ पश्चिमी राजस्थानी। इनमे भी पश्चिमी राजस्थानी प्रमुख है। मैंने जब पूरे राजस्थान का राजस्थानी बोलियो के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से भ्रमण किया तो मेरे सामने कई तथ्य उजागर हुए—

१— ग्रियसन ने जो राजनीतिक दृष्टि से वर्गीकृत राजस्थान प्रान्त की समग्र भाषा को एक सूत्र मे बाँधने का प्रयत्न किया है वह सर्वथा भ्रामक है। उदाहरणार्थ अलवर भरतपुर आदि क्षेत्रो मे जब मैं गया तो लोग मेरी बात राजस्थानी मे समझ ही नही पाए

ओर सभी का यह कथन था हम तो इसी प्रकार हिन्दी ही बोलते हे (ब्रज सम्पर्कित)। वामवाडा डूगरपुर क्षेत्र मे भी यही स्थिति थी। अत ग्रियसन ने राजस्थानी का जो वर्गीकरण किया है उनमे पूर्वी और पश्चिमी राजस्थानी ही राजस्थानी के क्षत्र मे आती है।

० ५ हिन्दी एव राजस्थानी

उद्भव एव विकास—

हिन्दी एव राजस्थानी दानो ही एक मा की दो पुत्रिया ह अर्थात् इन दोनो का उदभव शौरसेनी अपभ्र श से हुआ है। यद्यपि यह सवमा य नही हुआ है कि इन दोनो भाषाओ की उत्पत्ति शौरसनी अपभ्र श से ही हुई है, यथा कुछ डा० सुनीतिकुमार राजस्थानी भाषा को दो शाखाओ का मिश्रण मानते ह (राजस्थानी भाषा— पृ० ६) पर म इस धारणा से सहमत नही। क्योकि राजस्थानी का मूल स्रोत शौरसेनी अपभ्र श ही है। आचाय भरत ने जिस उकार बहुला भाषा का उल्लेख किया है वह शौरसेनी अपभ्र श ही है एव आज भी राजस्थानी मे उ>ओ मे प्रयुक्त होता है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए भारतीय आय भाषाओ के ऐतिहासिक क्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

० ५ १ भारतीय आय भापा

भारत वप म आर्य क्व आए ? आर्य मूल रूपेण भारतीय थे अथवा बाहर से आए ? आर्य भारत वर्ष मे एक बार आये या दा बार आदि प्रश्न आज भा विवादास्पद है। विषयेतर एव विस्तार भय से हम इन विवादा मे न पडकर 'वैदिक सस्कृत' को भारतीय आय भापा का प्रामाणिक निदशन मानकर भारतीय आय भापा को प्रमुखत तीन वर्गो मे विभक्त कर सकते ह—

१ प्राचीन भारतीय आय भापा (ई०पू० २००० से ई० ५०० तक

क- वदिक सस्कृत

ख- लौकिक सस्कृत

२ मध्य कालीन भारतीय आर्य भापा (ई०पू० ५०० से १००० ई तक।

३ आधुनिक भारतीय आय भापा (१००० ई से अब तक)

० ५ १ प्राचीन भारतीय आय भापा

प्रा० भा० आ० भा० के दो रूप ह—वैदिक सस्कृत २ लौकिक सस्कृत। वदिक सस्कृत—इसी का नाम छान्दस् भी है एव भारतीय आर्य भापाओ के विकास का मूल उत्स भी यही भापा है। 'छान्दस्' भापा क विकास क्रम को हम स्थूल रूप से इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते ह—(I) सहिता कालीन वैदिक सस्कृत (II) ब्राह्मण कालीन वैदिक सस्कृत (III) उपनिपद् कालीन वैदिक सस्कृत (IV) अरण्यक एव सूत्र कालीन वदिक सस्कृत। ऋक, यजु, साम एव आथर्व सहिता मे जो भापा प्रयुक्त हुई है वह सहिता कालीन भापा ह। ऋक सहिता का प्रतिपाद्य देव स्तुति (इन्द्र वरुण रुद्र, विष्णु आदि) है। 'यजु सहिता' के दो भेद है—शुक्ल यजुर्वेद एव कृष्ण यजुर्वेद।

इनमे याज्ञिक कर्मकाण्डो के विधान का विवेचन है । 'साम संहिता' मे साम यागो मे गाए जाने वाले वैदिक सूक्तो को गेयात्मक दृष्टि से सकलित किया है । पहले ये तीन सहिताए ही वदिक सहिताओ मे परिगणित की गयी एव इन्ही का नाम 'वेदत्रयी' था । कालान्तर मे अथर्व सहिता सकलित हुई जिसका प्रतिपाद्य तत्र मत्र, जादू टोना आदि था । यदि भाषा तात्विक दृष्टि से अवलोकन करें तो वैदिक सहिताओ मे भी भाषा की एक रूपता दृष्ट नही होती । ऋक् सहिता की भाषा सर्वाधिक प्राचीन है । इनमे भी प्रथम एव दशम मडल की भाषा अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये मण्डल ऋक् सहिता के प्रक्षिप्ताश है । सहिताओ की भाषा प्रयोगाह छान्दस भाषा से थोडी इतर थी । क्योकि सहितओ की ऋचाए वैदिक ऋषियो द्वारा कण्ठस्थ रखी जाती थी जबकि बोल-चाल मे इसी के समकक्ष बोलीगत रूप प्रयुक्त होता था । बल्कि सहिताओ को गूढ अर्थ वाली देववाणी समझ कर ऋषिगण परम्परा से कठस्थ करते थे । पर बाद मे यास्क आदि ने यह सिद्ध किया कि सहिताओ के भी अर्थ है । इससे स्पष्ट होता है कि सहिताओ की भाषा बोल चाल की भाषा नही थी ।

छान्दस् भाषा का दूसरा विकसित रूप हमे ब्राह्मण ग्रन्थो (ऐतरेय ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण आदि) मे दृष्टिगत होता है । ब्राह्मण ग्रन्थो का प्रतिपाद्य कर्मकाण्डो की व्याख्या करना था। इनमे साथ-२ आख्यान भी दिए गये है यथा शुन शेप आदि । वैदिक गद्य भाषा का प्राचीनतम निदर्शन हम इन्ही ब्राह्मण ग्रन्थो मे उपलब्ध होता है । ब्राह्मण ग्रन्थो के अनन्तर औपनिषदिक ग्रन्थ वैदिक भाषा के विकास की तीसरी सीढी है जो एक ओर भारतीय आध्यात्म विद्या के चरमोत्कर्ष रूप है तो दूसरी ओर वदिक एव लौकिक

संस्कृत के बीच की कडी है। अरण्यक एव सूत्र ग्रन्थों की भाषा पूर्णत लौकिक संस्कृत के निकट है। वदिक संहिताओं के आधार पर यहा पर वैदिक संस्कृत की भाषा तात्त्विक विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है—

वदिक ध्वनिया स्वरध्वनिया प्रातिसाख्य एव शिक्षा ग्रन्थो के आधार कहा जा सकता है कि वैदिक काल मे निम्नलिखित चौदह स्वर ध्वनिया थी—अ, इ, उ, ऋ, लृ, आ ई, ऊ, ऋ, लृ, ए ओ, ऐ, औ। इनमें अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋऋ, लृ लृ, समानाक्षर एव ए, ओ, ऐ औ सन्धक्षर है जिनमे अ+इ-ए, अ+उ-ओ, आ+इ=ऐ आ+उ-औ क्रमश गुण एव वृद्धि सज्ञक हे। साथ ही ऋ-अर, लृ-अल् गुण एव ऋ—आर लृ-आल भी वद्धि सज्ञक है।

वैदिक स्वरा के मुख्यत तीन भेद थे १ उदात्त २ २ अनुदात्त ३ स्वरित। इनके लिए सकेत चिह्न भी थे—उदात्त के लिए सकेत चिह्न नही था, अनुदात्त स्वरो के नीचे आडी रेखा खीची जाती थी। स्वरित स्वरो के ऊपर खडी रेखा खीची जाती थी क। इन स्वरो के उच्चारण पर अर्थ-प्रक्रिया निर्भर थी। स्वर के उदात्त या अनुदात्त होने पर भिन्न-२ अर्थ व्यक्त होत थे यथा 'इन्द्रशत्रुर्वधस्व' मे केवल स्वर के अशुद्ध उच्चारण के कारण वृत्र (असुर) मारा गया था।[1] वृत्र ने इन्द्र को मारने के लिए यज्ञ किया था। उसमे पुरोहितो मे इन्द्र शत्रु' का

---

१ मन्त्रो हीन स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो नतमर्थमाह स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रु स्वरोपरा धात् पाणिनीय शिक्षा—५२

महाभाष्य आह्निक

अव्यय शब्दो मे सुप् विभक्ति लुप्त रहती थी। शब्दो के ८ कारकीय रूपो, तीन वचनो के आधार पर २४ रूप थे। लिंग तीन थे—पुल्लिग, स्त्रीलिग, नपुंसकलिंग। व्याकरणिक दृष्टि से सुबन्त शब्दो के दो भेद थे-१ अजन्त (स्वरान्त) २ हलन्त (व्यंजनान्त)। अजन्त शब्दो मे अकारान्त (प्रिय पु०) प्रियम् (नपु०) आकारान्त (रमा, प्रिया स्त्री०) इकारान्त (हरि, मति शुचि आदि) ईकारान्त (देवी, नदी आदि) उकारान्त (मधु) ऋकारान्त (दाता, पिता) आदि। अकारान्त शब्दो मे औ के स्थान पर आ होता था देवौ> देवा—(सुपा सुलुक्-७ १ ३९)। प्रथमा बहु० व० मे 'आस' होता था-देवास (आज्जसो सुक्—७-१ ५०)। भि को ऐ विकल्प से आदेश होता था तथा तृतीया एक वचन मे 'आ' होता था। त एन— एना। अकारान्त प्रिय शब्द के रूप इस प्रकार थे--प्र० प्रिय प्रिया-प्रियौ प्रिया प्रियास द्वि० प्रियम, प्रिया-प्रियौ, प्रियान त० प्रियेण-प्रिया, प्रियाभ्याम्, प्रियेभि० च० प्रियाय, प्रियाभ्याम, प्रियेभ्य प० प्रियात् प्रियाभ्याम् प्रियेभ्य, ष० प्रियस्य, प्रिययो, प्रियाणाम् स० प्रिये प्रिययो प्रियेषु स० हे प्रिय हे प्रिया, प्रियौ, हे प्रिया प्रियास। आकारान्त शब्दो मे तृ व मे लौकिक सस्कृत से रूप भिन्न थे। इकारान्त शब्दो में त० एव स० रूपो मे भिन्नता थी। ईकारान्त शब्द लौकिक सस्कृत वत् थे केवल प्रथमा/द्वितीया एव सम्बोधन के रूपो मे भिन्नता थी। ऋकारान्त शब्दो मे केवल प्रथमा, द्वितीय के रूपो म भिन्नता थी। व्यजनान्त शब्दो मे निम्न लिखित शब्दो न रूप सस्कृत स भिन्न थे शत प्रत्ययान्त (अत्), इन प्रत्ययान्त, क्वसु प्रत्ययान्त, अन् अन्त वाले (राजन् वृत्रहन्), वाच विश् पुर् यशस चक्षुष्, आत्मन् आदि। शेष व्यजनान्त शब्द लौकिक सस्कृतवत् थे। विशेषण शब्द सस्कृत वत् ही थे। सार्वनामिक रूपो अस्मद्-युष्मद्

के रूपो मे भिन्नता थी यथा-प्र० अहम्, वाम् आवम् वयम् त्व
युवम्, यूयम् द्वि० के रूप सस्कृतवत् थे तृ० (
त्वया, युवाभ्याम्, युवभ्य, युष्माभि च० मह्यम्, मह्य, आवाभ्या
अस्मभ्यम्, युष्मद् के सस्कृत वत्, प० ब०व० मे भिन्न आवत् अस्म
युवत्, युष्मत्, ष० सस्कृतवत्, स० अस्मासु, असे, त्व, त्वां
युवयो, युष्मे। अव्यया मे उपसग क्रिया से पूर्व प्रथक् रूप
क्रिया के बाद एव कुछ पदो के व्यवधान में प्रयुक्त होते थे यथा
आ मन्द्ररिन्द्र हरिभियादि। उपसग यदि एक बार क्रिया के साथ १
जाता है तो बाद मे उस उपसर्ग का ही प्रयोग होता था एव व
क्रिया नही दी जाती थी। धातु रूपो मे लेटलकार वदिक सस्कृ
की प्रमुख विशेषता थी जिसका लौकिक सस्कृत म अभाव है यथा
भवाति भवात्, भवात भवामि भवा भवाथ, भवानि भवा-भवा
आदि। वदिक कालीन सस्कृत मे विकरण निश्चित नही थे यथ
जुहात्यादि म द्वित्व न होना-आण्डा शुष्णस्य भदति (भिनत्ति
के स्थान पर)। व्यत्यय प्रक्रिया प्रबल थी—सुप्तिङुपग्रह लिङ्नराण
काल हल च्स्वर कतृ यडा च व्यत्ययमिच्छति शास्त्र कृदेषा साऽपि
सिध्यति बालकेन (महाभाष्य) अर्थात् महाभाष्यकार का कथन है कि
इन स्थानो पर वेद मे व्यत्यय (उलट पुलट) देखा जाता है १ प्रथम
आदि विभक्तिया २ तिङ प्रत्यय ३ उपग्रह (परस्मपद आत्मनेपद)
४ पुल्लिग आदि ५ प्रथम पु० आदि ६ कालवाचक प्रत्यय ७
व्यजन स्वर ८ उदात्तादि ९ कृत् तद्धितादि १० विकरणादि। कहने
का अभिप्राय यही है कि वदिक व्याकरणिक परम्परा अव्यवस्थित
थी।

लेट् लकार के अतिरिक्त शेष नौ लकार सस्कृत वत् थे।
मार्कीनिक रूप अधिकाशत सस्कृत की भांति ही थ। यदि किन्

अंतर अवश्य था यथा-स० माता पितरौ वैदिकी मातरापितरा कुकौ कव—स० अष्टपदी वैदिक अष्टापदी आदि। तद्धित, कृत कृत्य प्रक्रिया संस्कृत की भांति हो थी। वैदिक संस्कृत की एक उल्लेखनीय विशेषता 'पद पाठ' थी जिसके विशेष नियम थे।

लौकिक संस्कृत—परिनिष्ठित, परिमार्जित, व्याकरण सम्मत भाषा ही लौकिक संस्कृत कहलाती थी। वैदिक संस्कृत में जब अति-व्यत्यय प्रक्रिया प्रबल हुई तो पाणिनि ने इस अव्यवस्था को रोकने के लिए एक सर्व सम्मत व्याकरण लिखा और इसी व्याकरण से पुष्ट भाषा ही लौकिक संस्कृत कहलाई। वैदिक काल में जो विभक्ति, लिंग, धातु रूप, उपग्रह, प्रत्ययार्थ आदि में व्यत्यय होता था, उसे पाणिनि ने रोक दिया। दूसरे शब्दों में लौकिक संस्कृत वैदिक संस्कृत का ही परवर्ती रूप है। लौकिक संस्कृत एवं वैदिक संस्कृत में मुख्यतः निम्नलिखित अंतर है।

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में अंतर जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि वैदिक संस्कृत में व्याकरणिक प्रतिबन्ध इतने जटिल नहीं थे जितने कि लौकिक संस्कृत में। वैदिक संस्कृत में व्यत्यय प्रक्रिया प्रबल थी यथा-तिङ व्यत्यय-बहु० व० के स्थान पर एक व० तिङ व्यत्यय—चषाल ये अश्वयूपाय तक्षति (तक्षन्ति के स्थान पर तक्षति) पद व्यत्यय परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद या आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद—ब्रह्मचारिणम् इच्छते (इच्छति के स्थान पर इच्छते) पुरुष व्यत्यय—दशभिर्वियूया, काल व्यत्यय लुट् के स्थान पर लट्-श्वोग्नीनाधास्मानेन। व्यंजन व्यत्यय-ध>द-तमसो गा अदुक्षत आदि। आचार्य पाणिनि ने उपयुक्त समग्र अव्यवस्थाओं का निवारण कर एक संस्कृत एवं परिमार्जित रूप दिया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि परवर्ती पाणिनि काल में यदि कोई व्याकरणिक दृष्टि से

अशुद्ध रूप प्रयुक्त करता था तो वह विद्वद्गणो मे उपहास का पात्र होता था। यहा वैदिक सस्कृत एव लौकिक सस्कृत मे जो स्थूल अन्तर थे, उन्ही को दिया जा रहा है। इनके अतिरिक्त भी अनेको अन्तर थे।

वैदिक सस्कृत के 'लृ, (दी) लॄ' स्वर के रूप मे थे। लौकिक सस्कृत मे लॄ (दी) था ही नही एव लृ का केवल पाणिनि ने माहेश्वर सूत्र (ऋलृक्) मे उल्लेख भर किया है, पर प्रयोग मे यह वर्ण नही था। ळ, ळह ध्वनिया सस्कृत मे नही रही। उच्चारण स्थानो मे भी परिवर्तन आया। वैदिकी मे ष' > ख' उच्चरित होता था पर सस्कृत मे यह मूर्धन्य था। उदात्त-अनुदात्त-स्वरित लेखन प्रक्रिया समाप्त हो गई। सधि नियमो मे भिन्नता थी यथा कई स्थानो पर प्रगह्य सज्ञा होने से प्रकृतिभाव होता था अत यण, दीर्घ आदि कोई सन्धि नही होती थी यथा-अवेद्धिन्द्र (अवे द उ इन्द्र) (निपात एकाजनाङ -१-१ १४)। प्रथमा द्वितीया द्विवचन के ई ऊ प्रगृह्य होते थे अत इनको यण नही होता था, यथा हरि ऋतस्य-साधू अस्मे। (ईददद द्विवचन प्रगृह्य १ १ ११)। अकारान्त, आकारान्त, इकारान्त ईकारान्त उकारान्त ऊकारान्त शब्द रूपो (पु०स्त्री० नपु०) के प्र० वहु व०, तृ० एक व, वहु-व, च, प प स एक व व वहु व के रूप भिन्न थे यथा प्रियौ, प्रियास शुचा, शुची (स०एक व) मध्वा मधुना (तृ एक व)। मध्वो मध (प एक व) आदि। व्यजनान्त शब्दो म शतृ इन् वसु प्रत्ययान्त शब्दो के रूप भिन्न थे। राजन्, कर्मन् अश्मन् पद् वाच् पुर्, यशस् आदि व्यजनान्त शब्दो के रूप भिन्न-२ थे। सर्वनामिक रूपो मे अस्मद्-युष्मद् के रूप विशेष अव्यवस्थित थे। अव्ययो मे उपसर्गों का प्रयोग सस्कृत से सर्वथा भिन्न था। धातु रूपो म लेट् लकार का प्रयोग वैदिकी मे था सस्कृत मे नही था। विकरणो

का व्यत्यय वैदिकी मे था, यथा– नाध्व नो देना (नाव्वम्-नायच्चम्) वैदिकी मे द्वित्व वैकल्पिक था, पर सस्कृत मे आवश्यक था, यथा— योजागार (जागार-जजागार) दाति प्रियाणि (ददाति प्रियाणि)। लकार का अनिश्चित प्रयोग प्राय सभी कालों मे होता था, यथा– देवो देवेभिरागमत् (आगमन–आगच्छतु लोट् के अर्थ में लुङ्) अद्य ममार (ममार-म्रियते-लट के अर्थ में लिट् आदि । इसी प्रकार धातुओं के गुण वृद्धि, उपधा लोप आदि के सम्बन्ध मे भी भिन्नता थी । सामासिक रूपो में भी भिन्नता थी । तद्धित, कृत् प्रत्ययान्त शब्द भिन्न थे । कहने का अभिप्राय यह है कि वैदिक सस्कृत एव लौकिक सस्कृत मे पर्याप्त पार्थक्य था एव लौकिक सस्कृत वैदिक सस्कृत के विकास की दूसरी सीढी थी।

० ५ १ २ मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा—

५०० ई पू से १००० ई पू तक

वदिक सस्कृत मे जो भाषिक अव्यवस्था थी उसे पाणिनि ने व्याकरणनिष्ठ कर सुव्यवस्थित करने का प्रयास तो किया पर वह परिनिष्ठित, परिष्कृत भाषा पडित जनो को ही मडित कर सकी, कोटिश जनों के लिए ता वह अव्यवस्थित ही रही । महाभाष्यकार ने भ्वादयो धातव (१-३-१) सूत्र का भाष्य करते हुए लिखा है कि पाणिनि के समय मे लोगा मे 'आणवयति' (आज्ञा देना) वटटति (वतमान होना) वड्ढति (बढना) आदि क्रिया के रूप बोले जाते थे तथा कृषि के अर्थ मे कसि तथा दृशि के अर्थ में दसि का प्रयोग करते थे। व्याकरणो के निर्माण के समय इन प्रयोगो को गौण समझ कर छोड दिया गया । व्याकरण स्रष्टाओ ने तो इन प्रयोगो को अशुद्ध या सामान्य समझकर छोड दिया पर जन सामान्य जिसके

लिए कि ये ही प्रयोग सुकर थे—इन प्रयोगो को कैसे छोडता ? कालान्तर मे कोटि जनो द्वारा प्रयोगाहृ ये हो प्रयोग बढे जिसे भाषा विदो ने मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा की सज्ञा दी। म० भा० आ० भा० लगभग डेढ हजार वर्ष तक समग्र उत्तर भारत की एक छत्र भाषा रही (कुछ क्षेत्रीय अपवादो को छोडकर) एव निरतर विकास की ओर अग्रसर होती रही। म० भा० आ० भा० के विकास की तीन सीढ़िया है— १ पालि २ प्राकृत ३ अपभ्रश।

पालि—

भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश जिस वाणी मे दिए, अथवा भगवान बुद्ध के उपदेश जिस वाणी मे सग्रहित है, वही भाषा पालि नाम से अभिहित की जाती है। भाषा-तात्विक दृष्टि से यह भाषिक विकास की प्रथम सीढी है। वदिक सस्कृत मे जो भाषिक प्रवृत्तिया थी, या रूप बहुलता थी पाणिनि ने उसे निर्धारित कर एक रूप देने का प्रयास किया था पर ये मिटी नहीं। पालि मे वे यथावत् प्रयुक्त मिलती है, यहा वदिक पालि एव सस्कृत की तुलना से इस तथ्य की पुष्टि हो जाएगी।(१)वैदिकी मे व्यत्यय बहुलता थी (व्यत्ययो बहुलम् ३/१/८५) पालि मे भी यह व्यत्यय प्रक्रिया थी यथा—गुण व्यत्यय एक समय (एकम्मि समयम्मि), तेलम्स पिविरता तल पिवरवा आदि।

तिङ् व्यत्यय-अत्थि इमस्मि काय केसालोमा ऽत्ता (अत्थि-सन्ति) वण व्यत्यय-वुद्ध भि-बुद्धेहि, पलिघो-परिघा, काल व्यत्यय-भूतकाल के अर्थ मे भविष्यत् काल-मतियेल नमस्सिस्सति। सस्कृत में यह व्यत्यय प्रक्रिया उपलब्ध नहीं होती।

(२) वैदिकी में नपु सर्कलिंग शब्द पुल्लिंग म प्रयुक्त होते थे

(छन्दसि नपुंसकस्य पुंवद्भावो वक्तव्य—इति महाभाष्ये) पालि मे भी ऐसा ही होता था । फल शब्द के प्रथमा बहु वचन मे फला-फलानि दोनो रूप होते थे । वैदिकी मे षष्ठी के स्थान पर चतुर्थी व चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती थी (चतुर्थ्यर्थे बहुल छन्दसि२/३/६२ षष्ठ्यर्थे चतुर्थीतिवाच्यम्-वार्तिक)पालिमे भी चतुर्थी व षष्ठी के रूप प्राय समान रहते हैं यथा - ब्राह्मणस्स धन दाति ब्राह्मणस्य सिस्सो । लौकिक संस्कृत मे ऐसा नही होता ।

(३) क्रिया के रूपो मे भी वैदिकी और पालि मे साम्य है । वैदिकी मे लुङ् लकार का प्रयोग था-पालि मे भी यह प्रयुक्त होता था यथा-अहोमि अकासि, अगच्छि आदि । वैदिकी मे भूतकाल मे 'अ' का आगम वैकल्पिक था । पालि में भी ऐसा ही है पर संस्कृत म नही । इसी प्रकार अनेक साम्य है । कहने का अभिप्राय यह है कि वैदिकी से जिस भाषा का सहज विकास हुआ वह भाषा पालि कहलाई ।

पालि भाषा नामकरण—

बुद्ध वचनो की भाषा का नाम पालि कैसे पडा ? इस विषय मे विद्वानो में मतैक्य नही है यथा-विधुशेखर स० पंक्ति से कोसाम्बी स० पाल (ई) रक्षा करना से भिक्षुसिद्धार्थ स पाठ से डा मैक्समूलर पाटलिपुत्र से इसका सम्बन्ध जोडते ह । इसी प्रकार कुछ मनीषी पल्लि (गाव की भाषा) से और प्राकृत (पाकट>पाअड>पाअल>पालि) से इसे सम्बद्ध करते ह ।

उक्त सभी मत कल्पना प्रसूत और बौद्धिक विलास मात्र है । वस्तुस्थिति यह है कि बुद्ध ने अपने उपदेश मागधी भाषा मे ही दिये थे ।

थे । भाषा ग्रथ मे सवत्र बुद्ध वचनो के लिए मागधी का ही प्रयोग हुग्रा है यथा—सिद्धामिद्धगुरा साधु नमसित्वा तथागत सधम्मसङ्ग भासिस्स मागध सद्दलक्खत (मोग्गलान व्याकरण) । पालि शब्द का प्रयोग मूल त्रिपिटक के लिए होता था, यथा—दीघ निकाय पालि, उदानपालि ग्रादि। धीरे-धीरे यही 'पालि शब्द भाषा ग्रथ मे प्रयुक्त होने लगा । इस सम्बध मे जगदोश कश्यप का मत अधिक सगत प्रतीत होता है। उनके ग्रनुसार त्रिपिटक के मूल ग्रथो मे जगह-जगह पर बुद्ध देशना बुद्ध उपदेश बुद्ध वचन के ग्रथ मे 'धम्म परि-याय शब्द का पाठ मिलता है, जैसे-

इम धम्म परियाय ग्रत्य जालेन्ति पि न धारेति

सोकसल्लहरणो नाम ग्रय महाराज धम्म परियायोत्ति

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि बुद्ध वचन के ग्रथ मे ही परियाय> पालि शब्द का प्रयोग किया गया है । बाद मे इसी शब्द का लघु रूप 'पालि' हो गया ग्रौर इसका ग्रथ हुग्रा बुद्ध वचन । ग्रौर यदि गहराई मे जाए तो ज्ञात होगा कि 'परियाय का मूल सस्कृत शब्द 'पर्याय' है जो चक्कर लगाना, उत्तराधिकारी, समानायक धर्म ग्रादि ग्रर्थों मे प्रयुक्त होता था- बुद्ध न ग्रपने उपदेश देश मे सवत्र चक्कर लगाकर किए थे उन्होंने जन भाषा मे उपदेश दिए थे । यह भाषा स० की परवर्ती होने के कारण उत्तराधिकारिणी थी एव धम भाषा थी । इन्ही ग्रर्थों से विकसित होकर धीरे-धीरे स० पर्याय ᐳ पा० परियाय, पालिग्राप्र पालि रूप विकसित हुग्रा है ।

पालि क्षेत्र --पालि भाषा किस किस क्षेत्र की भाषा थी इस विषय मे भी भाषाविदो मे विवाद है । लका के बौद्ध इसे मगध की, वैस्टरगाड स्टैनकोने इसे उज्जैन या विन्ध्य प्रदेश की

प्रदेश की ग्रोल्डन बर्ड मारवेल की डैविड्ज ने कोसल की भाषा माना है। पर पालि भाषा किसी क्षेत्र विशेष की भाषा नही थी। बुद्ध ने अपने उपदेश तत्काल मे सब बोधगम्य भाषा म ही दिए थे। तथा यह भाषा समग्र मध्य प्रदेश मे व्याप्त थी। यहा पालि भाषा का क्षेत्र था।

ध्वनिया –पालि मे कुल तियालीस ध्वनिया थी (अग्रादया तितालीस वण्णा (मोग्गलान)। कच्चायन ने पालि की इकतालीस ध्वनिया बताई है (अक्खरापादयो एक चत्तालीस। पालि मे दस स्वर (अ आ, इ ई, उ ऊ एऍ, ओ ओ̆) पचवग (कवर्गादि) अन्तस्थ म ह् ल ल् एव निग्गहीत (अ) कुल तितालीस ध्वनिया थो। पालि ध्वनियो मे मुख्यत निम्नलिखित परिवर्तन हुए—(१) ऋ>अ, इ, उ मे परिवर्तित हुआ यथा ऋक्ष >अच्छो, नृत्य>नच्च, दृष्ट>दिट्ठ ऋए>इए वृष्टि>वुट्ठि ऋतु>उतु।

(२) ऐ>ए, इ, ई मे परिवर्तित हो गया-- वैमानिक > वेमानिको एश्वय>इस्सरियो (३) औ>ओ या उ मे परिवर्तित हुआ-मौद्गल्लायन >मोग्गलायनो, औद्‌शिक >उद्देस्को। (४) श, ष >स मे परिवर्तित हुए, शिष्य>सिस्सो, षोडश>सोलह।(५) विसग >ओ, देव >देवो। (६) जिह्‌वामूलीय व उपह्मानीय नही थे। (७) वैदिक ल् ध्वनि जो सस्कृत मे छोड दा गई थी पालि मे थी- वेळु। (८) सयुक्त वर्णो मे पूव का दीघ स्वर ह्रस्व हो गया- तीथ-तित्थ। (९) रेफ का लोप हो गया। कम-कम्म। (१०) य रिय म परिवर्तित हुआ आय अरियो (११) क्ष-ख-क्ख, क्षीर-खीर, मोक्ष -मोक्खो, (१२) द्य-ज ध्य झ, त्य-च, न्य ण्य, ज्ञ ञ्ञ-ज, ष्ट ठ, स्त-थ मे परिवर्तित हो गये। यथा- अद्य अज्ज, ध्यान-भान, नृत्य नच्च,

धान्य धम्म, ज्ञाति जाति, स्तम्भो थम्भो ।

रूपात्मक रचना—(१) प्रातिपदिक स्वरान्त थे व्यंजनान्त नहीं—बुद्ध (अकारान्त) (मुनि (इ) नदी (ई) भिक्खु (उ) वधू (ऊ) आकारान्त (लता), ओकारान्त (गो)। (२) तीन लिंग एवं दो वचन थेथे। (३) सार्वनामिक रूप एवं विशेषण संस्कृत की भांति थे। (४) क्रियाओं की संख्याओं में कमी आई। क्रियाओं में वचन दो एवं दो पद(आत्मने पद परस्मैपद) थे।

साहित्य—

भगवान बुद्ध ने अपना उपदेश मौखिक ही दिए थे। उनके निर्वाण के उपरान्त उनके शिष्यों ने उन उपदेशों का संग्रहीत कर दिया यही संग्रह 'त्रिपटक' (तीन पिटारी) नाम से अभिहित है एवं यही पालि साहित्य है। इसके मुख्यतः तीन भाग है- (१) सुत्तपिटक (२) विनय पिटक अभिधम्म पिटक।

प्राकृत—

जन सामान्य द्वारा प्रकृत रूपेण (स्वाभाविक रूप) प्रयुक्त भाषा ही प्राकृत कहलाई। संस्कृत भाषा शिष्ट जनों, शिक्षित जनों की भाषा थी। पर जन सामान्य दैनिक जीवन में परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग नहीं करता था। जनसमूह सहज रूप से भाषा का प्रयोग करता था। सुसंस्कृत, परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा संस्कृत थी तो जन सामान्य की सहज वाणी से निःसृत सहज-प्रकृत स्वाभाविक भाषा ही प्राकृत थी। आचार्य भरत के कथन से इसकी पुष्टि होती है। 'एतदेव विपर्यस्त संस्कार गुण वर्जितम् विनय प्राकृत पाठ्य नानावस्था रात्मकम्' अर्थात् मूल प्रकृति संस्कृत के पदों को विपर्यस्त करके आगे के वर्णों को पीछे पीछे के वर्णों को आगे, मध्य के वर्ण को आगे पीछे

करके भिन्न २ प्रकार मे बोलना 'प्राकृत पाठ कहलाता है। यही प्राकृत पाठ' प्राकृत भाषा बना। भर्तृहरि ने भी लिखा है– 'दैवीवाक् व्यावकार्णेयम् शक्तैरभिधातृभि अर्थात् दैवीवाक् (सस्कृत अशक्त कहने वालो के द्वारा भिन्न-२ प्रकार से विस्तार या फैलाव को प्राप्त होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जन सामान्य द्वारा प्रयुक्त सहज बोध गम्य वा प्रकृत–भाषा ही प्राकृत कहलाई।

नामकरण–

पालि की भाति प्राकृत के नामकरण के विषय मे भी विद्वानो मे मतैक्य नही है। इसके दो वर्ग हैं। पहला वर्ग इसे सस्कृत से पहले का (प्राक्+कृत्) एव श्रेष्ठ मानता है। नमि साधु लिखते हैं—प्राकृतेति सकल जगज्जन्तूना व्याकरणादिभि अनाहत सस्कार सहजो वचन व्यापार प्रकृति तत्र भव सेव प्राकृतम्' वाग्पति के अनुसार–-सयलाओ इम वाया विसन्ति एतो य णेन्ति वायाओ समुद्दं चिट् णेति सायराओ च्चिय जलाइ' अर्थात् जैसे जल सागर मे प्रवेश करता है और सागर से ही निकलता है, उसी प्रकार सभी भाषाए प्राकृत मे ही प्रवेश करती है और प्राकृत से ही निकलती है।

दूसरा वर्ग उन विद्वानो का है जो प्राकृत को हेय एव सस्कृत से परवर्ती मानता है। महाभाष्यकार लिखते है–

> यथैव हि शब्द ज्ञाने धर्म एवमपशब्दज्ञानेऽधर्म ।
> भूयानधर्म प्राप्नोति भूयान् अधर्म । अल्पीयांस शब्दा भूयांसोऽपशब्दा ।
> एकैकस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशा । तद्यथा गौरी इत्यस्य गावी गोणी गोता,
> गोपोतलिके इत्येवमादयोऽपभ्रंशा ।

अर्थात् जैसे शब्दो के भली प्रकार जानने मे धर्म होता है इसी प्रकार अपशब्दो को जानने मे अधर्म होता है। यही नही धर्म की अपेक्षा

अधम अधिक होता है । एक ही शब्द के बहुत से अपभ्रंश होते हैं जैसे 'गा' इस शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोनलिका आदि । संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति मानने वाले प्रमुख विद्वानों में मार्कण्डेय[1], लक्ष्मीधर[2] हेमचन्द्र[3], सिंहदेवगणि[4] वासुदेव[5], प्राकृत मजरीकार[6], जयदेव[7] के मत उल्लेखनीय हैं ।

जहा तक भाषा के महत्व का प्रश्न है दोनों भाषाओं (संस्कृत-प्राकृत) का अपने अपने स्थान पर महत्व है । पर यह नितांत सत्य है कि प्राकृत की जननी संस्कृत है । संस्कृत से ही प्राकृत का विकास हुआ है ।

प्राकृत वर्गीकरण–

प्राकृत के मुख्यत तीन वर्ग हैं– (१) प्राचीन प्राकृत (पालि एवं अभिलेखी प्राकृत–तृतीय शताब्दी ई० पू० से द्वितीय शताब्दी ई० पू० तक, प्राचीन जैन सूत्रों की भाषा अश्वघोष के नाटकों की भाषा आदि)

(२) मध्यकालीन प्राकृत (अर्ध मागधी, महाराष्ट्री, शौरसेनी–पैशाची आदि)

(३) परवर्ती प्राकृत (अपभ्रंश) । इन्हें ही भाषाविदों ने क्रमश प्रथम प्राकृत, द्वितीय प्राकृत एवं ततीय प्राकृत कहा है ।

---

१ प्रकृति संस्कृत तत्र भव प्राकृत उच्यते मार्कण्डेय

२ प्रकृते संस्कृतायास्तु विकृति प्राकृती मता लक्ष्मीधर

३ प्रकृति संस्कृतम् । तत्र भव तत आगत वा प्राकृतम् हेमचन्द्र

४ प्रकृते संस्कृताद् आगत प्राकृतम् सिंहदेव गणि

५ प्राकृतस्य सर्वमेव संस्कृत योनि वासुदेव

६ प्रकृतेनु प्राकृतत्वेन गिर परिणति गता प्राकृतमजरीकार

७ संस्कृतात् प्राकृत इष्ट ततो अपभ्रंश भाषणम् ।

प्राचीन प्राकृत के अन्तर्गत पालि, तृतीय ई० पू० शताब्दी से द्वितीय शताब्दी ई० पू० तक के अभिलेखों की प्राकृत, अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत, निय प्राकृत एवं मिश्र आती है। पालि का विवेचन किया जा चुका है।

अभिलेखी प्राकृत—

अशोक महान ने धार्मिक उपदेशों एवं प्रशासनिक आज्ञाओं को भिन्न भिन्न क्षेत्रों में वहां की भाषा में ही शिलालेखों पर लिखवाया। इन शिलालेखों पर लिखित भाषा ही अभिलेखी प्राकृत कहलाती है। भाषा तात्त्विक दृष्टि से इन शिलालेखों भाषाओं के तीन भेद हैं– १ पश्चिमी गिरनार का शिलालेख। २ पूर्वी (जोगढ) ३ उत्तरी (मनसेहर)। इन शिलालेखों का अध्ययन करने से इनकी भाषा में स्पष्ट अन्तर ज्ञात होगा। उदाहरणार्थ हम इन लेखों की एक एक पंक्ति ले रहे हैं–

इय धमलिपी देवान प्रियण प्रियदसिना राजा लखापिता

(पश्चिमी–गिरनार का शिलालेख)

इय धम्मलिपि खपिंगलसि पवतसि देवान पियन पियदसिना लाजिना लिखापिता

(पूर्व–जौगढ मे उसी लेख का दूसरा भाग)

अयि ध्रमदिपि देवन प्रियन प्रियद्रसिन रजिन लिखपित

(उत्तर मनसेहर मे उसी लेख का तीसरा भाग)

अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत—

प्रसिद्ध बौद्ध धर्मावलम्बी महाकवि अश्वघोष द्वारा अपनी कृतियों में प्रयुक्त भाषा ही अश्वघोष की प्राकृत के नाम से अभिहित की जाती है। भारत के अतिरिक्त मध्य एशिया में भी इनके

नाटकों की खण्डित प्रतिया मिली है जिनका सम्पादन ल्यूडस न किया है ।

निय प्राकृत

तुर्किस्तान के नियं नामक प्रदेश मे मिली सामग्री के आधार पर ही इस भाषा का नाम निय प्राकृत है । टी बरो' ने इस भाषा को निय प्राकृत वताया है ।

मिश्र—

इसी का नाम गाथा सस्कृत है । इसमे पालि एव सस्कृत का मिश्रण है । इसमे महावस्तु ललित विस्तार आदि अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते ह । गाथा सस्कृत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमे पालि एव सस्कृत का स्पष्ट मिश्र रूप दृष्ट होता है —

> सहस्रमपि वाचाना अनथ पद सहिता एक अथवतीश्रेया यां श्रुत्वा उपशाम्यति यो शतानि सहस्राणासग्राम मनुजा जये। यो चैक जय आत्मान सव सग्राम जितवर ।
>
> (पेरिम स प्रकाशित महावस्तु पृ० ४३४ ,५)

द्वितीय प्राकृत

इसके अन्तगत महाराष्ट्री, शौरसेनी मागधी एव पशाचा चार प्राकृत आती ह । वररुचि ने इन्ही चार का उल्लेख किया है । प्राकृत सवस्वकार मार्कण्डेय ने प्राकृत भाषाओ के तैतालीस भेदोप-भेद स्वीकृत किये ह –प्रथमत उन्होने भाषाओ के चार भेद किए हैं—(१) भाषा २) विभाषा (३) अपभ्रश (४) पैशाची ।

भाषा के पुन पाच भेद- (१) महाराष्ट्री, (२) शौरसेनी, (३) प्राच्या, (४) अवन्ती, (५) मागधी ।

विभाषा के भी पाच भेद— (१) शाकारी (२) चाण्डाली (३) शावरी (४) आभीरिकी (५) शाखी ।

अपभ्रंश के उन्होने ३० भेद किये है । पैशाची के तीन भेद, यथा– कैकेयी, शौरसेनी, पाचाली । प्राकृत के चाहे कितने ही भेद रहे हो, चार भेद तो सभी ने स्वीकृत किए है (१) महाराष्ट्री (२) शौरसेनी, (३) मागधी । अर्ध मागधी। (४) पैशाची । वररुचि ने पैशाची और मागधी की प्रकृति शौरसेनी एवं शौरसेनी की प्रकृति सस्कृत को माना है। शौरसेनी के कुछ विशिष्ट कार्यों का उल्लेख कर उन्होने शेष काम महाराष्ट्री के अनुरूप ही बताये है ।

प्राकृत ध्वनिया–

प्राकृत की ध्वनिया पालि के समान ही थी । पालि मे जो विशेषताए बताई गई है वे प्राकृत मे भी थी । इनके अतिरिक्त जो विशेषताए थी, उनका उल्लेख यहा किया जा रहा है—सस्कृत की अ ध्वनि प्राकृत मे अनेक शब्दो मे 'आ' एव इ, ए हो गई, यथा— अश्व आमो असि-इसि, शय्या-सेज्जा, 'आ' कही अ कही इ मे परिवर्तित हुआ, यथा—चामर-चमर, यदा–जइ । इ कही अ कही ए, कही ई कही उ मे परिवर्तित हुआ यथा—पथि-पथो, विष्णु वेण्हू, इक्षु उच्छ जिह्वा-जीहा । ई इ, वा ए उ-ओ, अ मे परिवतन हुआ यथा—ततोय-तइअ कीदृश-केरिसो मुक्त-मोत्ता, मुकुटम्-मउड । व्यजन वर्णों मे इस प्रकार परिवतन हुए–अनादि मे प्रयुक्त क ग च ज त द प य व लुप्त हो गये । त-ड, द–ल, र, प-व, ट-ड, ड-ल, ठ–ढ, फ भ, ख, घ थ ध फ भ-ह र-ल आदि य-ज, प–फ, प छ सवत्र न ण, मे परिवर्तित हुए सयुक्त वर्णो मे क, ग ड, त, द प श स ष म न ल, व, र का लोप हो गया ।

रूपगत विशेषताए—

स्वरात प्रातिपदिक ही थे। आत्मनेपद नही था। तीन लिंग एव दो वचन थे। कारकीय रूपो मे स्वतत्र शब्द जोडे जाने लगे। जिन्होंने परवर्ती काल मे परसर्गों का रूप ग्रहण किया। वाच्य तीन थे। लिट लकार प्राय नही था। सगीतात्मक स्वराघात नही था। अधिकाश शब्द तद्भव थे। व्यजनान्त शब्द नही थे अत व्यजन सधि का भी प्राय अभाव था। क्त्वा प्रत्यय दूओ म परिवर्तित हो गया। क्त प्रत्यय दा मे एव कही अ' मे परिवर्तित हो गया। तव्यत्<दव्य मे परिवर्तित हो गया।

तृतीय प्राकृत अपभ्रश समय —

यद्यपि सहज भाषा प्राकृत भी साहित्य की परिधि मे प्रतिष्ठित हो गई एव इसे भी वररुचि आदि द्वारा व्याकरणिक शृखलाओ मे आबद्ध कर दिया पर भाषा का सहज विकास अवरुद्ध नही हुआ। कालान्तर मे यही विकसित भाषा [अपभ्रश कहलाई। आरम्भ मे महाभाष्यकार आदि ने कुछ अशुद्ध शब्द रूपो को देखकर उन्हे अपभ्रष्ट कहा एव यही हम अपभ्रश भाषा का बीज प्राप्त होता है। प्रारम्भ म कुछ अपभ्रष्ट शब्दो का इतना प्रयोग बढा कि कालान्तर मे इसे अपभ्रश भाषा का ही नाम देना पडा। कालिदास के विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अक मे राजा की विक्षिप्तावस्था मे जो वाक्य निकलते हैं व अपभ्रश म ही है। भरत मुनि ने उकार बहुला की भाषा का उल्लेख किया है एव इसका क्षेत्र हिमालय सिधु व सौवीर बताया है। इस प्रकार अपभ्रश का समय ई० पू० दूसरी सदी तक पहुचता है। पर क्या सचमुच अपभ्रश भाषा भाषिक रूप मे इतनी प्राचीन थी। इस विषय म विभिन्न मनीषी

मतैक्य नही है ।

डा० सुकुमार सेन ने अपभ्रंश का काल १ ई० से ६०० ई० माना है । डा० उदयनारायण, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० नामवरसिह आदि अपभ्रंश का समय सातवी शती मानते हैं । यदि अपभ्रंश के साहित्यिक ग्रन्थो एव लब्ध प्रमाणो का अन्वेषण करें तो निम्न तथ्य हमारे सामने आते हैं–

(१) भरत मुनि ने उकार बहुला जिस भाषा का उल्लेख किया था एव उसका जो क्षेत्र बताया था वह अपभ्रंश ही थी । पर उस समय वह साहित्य मे प्रयुक्त नही थी । भरत मुनि का समय भी विवादास्पद है पर अधिकाशत सस्कृत इतिहासकारो की मान्यता है कि भरत मुनि का समय दूसरी शती है । इसी शती से अपभ्रंश का जन्म स्वीकार करना चाहिए ।

(२) अपभ्रंश का प्रयोग साहित्य मे अपभ्रष्ट शब्दो के रूप मे हुआ । भाष्यकार पतजलि ने इसका उल्लेख किया है ।

(३) ई० की तीसरी शती और चौथी शती मे अप० भाषा रूप मे प्रतिष्ठित हो गई थी ।

दण्डी[1], रुद्रट[2], वाग्भट्ट[3] आदि ने इसका उल्लेख भाषा रूप मे किया है । पर इस समय तक भी अपभ्रंश मे साहित्यिक रचना नही होती थी । साहित्यिक-सृजन अपभ्रंश मे पाचवी और छठी शती

---

१ दण्डी तदेतद्वाङ्मय भूय सस्कृत, प्राकृत तथा । अपभ्रशश्चमिश्र चेत्याहु राप्याश्चतुर्विध

२ रुद्रट ने अपने काव्यालकार में भाषाओं का वर्गीकरण—

१ सस्कृत, २ प्राकृत, ३ अपभ्रश । इन तीन रूपो म किया है ।

वाग्भट्ट अपभ्रशस्तु यच्छुद्ध तत्तद्देशेषु भाषितम् ।

के बीच होता है एव १००० ई० तक प्राप्त होता है। अत भाषिक दृष्टि से अपभ्रंश का समय पूर्वी शता से १००० ई० तक मानना ही सगत है। अपभ्रंश के कितने भेद थे इस विषय मे प्राचीन वैयाकरणो, काव्यशास्त्रियो एव आधुनिक भाषाशास्त्रियो मे अति विवाद है। नमि साधु ने अपभ्रंश के प्रमुख तीन भेद--उपनागर, आभीर और ग्राम्य (स चान्यैरुपनागराभीर ग्राम्यत्व भेदेन त्रिधोक्तन्निरासार्थमुक्त भूरि भेद इति) एव गौण रूपेण बहुत से भेद माने हैं। विष्णु धर्मोत्तर कार ने भी अपभ्रंश के अनन्त भेद माने है। (अपभ्रष्ट तृतीय च तदनन्तनराधिप। देशभाषा विशेषण तस्यानतोभेद विद्यते अपभ्रंश कायत्रयी पृ० ६६)। मार्कण्डेय ने प्राकृत सर्वस्व मे नागर, उपनागर एव व्राचड (नागरो व्राचडश्चे पनागरश्चेति ते त्रय अपभ्रंश परे सूक्ष्म भेदत्वान्न प्रथगमत) के साथ अपभ्रंश के २७ और भेद स्वीकार कर कुल तीस भेद स्वीकार किए है। इसी प्रकार शारदातनय, पुरुषोत्तम देव आदि ने अपभ्रंश के भेद किये है। पाश्चात्य मनीषियो मे डा० याकोबी अपभ्रंश के चार (पूर्वी-पश्चिमी, उत्तरी दक्षिणी) डा तगारे तीन (पूर्वी, पश्चिमी दक्षिणी) एव डा० नामवरसिंह दो ही भेद स्वीकार करते हैं।

उपर्युक्त मतो का अवलोकन कर तो दो तथ्य हमारे सामने प्रमुखत आते है एक अपभ्रंश के अनेक भेद (लगभग तीस) एवं अपभ्रंश के तीन या चार भेद। प्रथम वर्ग क्षेत्रीय बोलियों से सम्बद्ध है एवं दूसरा वर्ग परिनिष्ठित अपभ्रंश से। यदि अपभ्रंश साहित्य का अवलोकन करें तो अपभ्रंश का मुख्यत एक ही वर्ग है--

शौरसेनी अपभ्रंश एवं यदि क्षेत्रीय उपभेदो का विचार करें जिससे कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाए सम्बद्ध है तो अप-

भ्र श के मुग्यत निम्न भेद है—१ शोरसेनी २ पशाची ३ ब्राचड ४ पूर्वी ।

अपभ्र श की विशेषताए ध्वनिया—

अपभ्र श मे पालि, प्राकृत की सभी ध्वनिया थी । 'ड' 'ढ' ध्वनिया विशिष्ट थी । स्वरो मे अनियमित व्यत्यय था । मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यजन प्राय लुप्त हो गये (प्राकृत की प्रकृति का विकास) एव उनके सयोगी स्वर 'य' या 'व' श्रुति से प्रयुक्त होकर या स्वर रूप मे ही उच्चारित होते थे ।

महाप्राण ध्वनियो मे ख घ थ ध फ भ प्राकृत वत [ह' मे ही उच्चरित होते थे । 'म' 'व' मे प्राकृतवत ही था । रूपात्मक विशेषताए—अपभ्र श की प्रमुख विशेषता उकार बहुलता थी । स्वरान्त प्रातिपदिक ही थे । कारक-विभक्तियां में न्यूनता आई । सर्वनामिक रूपोमे 'हउ' रूप विशेष उल्लेखनीय है जिसका राजस्थानी रूप आज भी हूं है । धातु रूपो मे कमी आई । धातु रूपो मे उत्तम पुरुष एक वचन की 'उ' विभक्ति विशिष्ट थी । कृदतीय रूपो मे भूतकालिक इय, इवि, एवि, एवणु एव ऊण प्रमुख थे । स्वार्थिक एव विशेषणात्मक प्रत्ययो मे अल्ल, इल्ल, एल्ल, आल, दूर, क>य> अ एव 'ड' प्रमुख थे । तद्‌भव एव देशज शब्दो की प्रधानता थी ।

अवहट्ट—

डा० चटर्जी एव डा० सुकुमार सेन आदि ने उत्तरवर्ती अपभ्र श के लिए 'अवहट्ट' वा 'अवहठ्ठ शब्दो के प्रयोग किये है एव इसी प्रकार प्राय सभी भाषा शास्त्रियो ने इसी प्रकार अवहट्ठ को पृथक् किया है । अवहट्ट अपभ्र श से कोई पृथक् भाषा नही अपितु तत्सम शब्द अपभ्रष्ट का तद्‌भव रूप है । इसे ही अपभ्र श काल मे लोग अवहट्ट

रूप मे प्रयुक्त करते थे । भाषिक क्षेत्र मे इसी भ्रातिवश 'अवहट्ट' का अपभ्रंश से पृथक मान लिया है । वास्तव में यह अपभ्रंश का अन्त्य चरण है एव आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का बीजवपन है। यह प्रवृति लगभग ११-१२ वी शती तक रही । अत अवहट्ट को पृथक न मानकर अपभ्रंश ही मानना सगत है। डा० भोलानाथ ने भी यही शका उठाई है पर उन्होने अन्त मे इसे चलती का नाम गाडी' कहकर स्वीकार कर लिया है ।

० ५ १ ३ आधुनिक भारतीय आर्य भाषाए–

स्थूल रूपेण आधुनिक भारतीय आर्य भाषाए, भा० आर्य भाषा के विकास की छठी सीढ़ी (छान्दस, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) है । जिस प्रकार प्राकृत अपभ्रंश आदि काल में क्षेत्री-यता के आधार पर भिन्न-२ भेद थे उसी प्रकार आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के भी भिन्न-२ भेद हैं ।

आ० भा० आ० भाषाओं म प्रमुख भाषाए है–हिन्दी पूर्वी एव पश्चिमी) सिन्धी, गुजराती, पजाबी मराठी बगाली उड़िया, आसामी ।

वर्गीकरण—

उपर्युक्त आ० भारतीय आर्य भाषाओं को भाषा शास्त्रियों ने भिन्न-२ रूपेण वर्गीकृत किया है । इन भाषाविदों म हार्नले (Comparative study of the gaudian languages) ग्रियर्सन (लि० स० भा० इ०) डा० सुनीतिकुमार (भा० है० भा० व०) डा० धीरेन्द्र वर्मा (हिन्दी भाषा का इतिहास) डा० भोलानाथ (हिन्दी भाषा) का नाम विशेष उल्लेख्य है । हार्नले ने भा० आ० भा० आ० को चार वर्गों म वर्गीकृत किया—१ पूर्वी गौ० (पूर्वी हिन्दी, बगला उड़िया वर्गसित । पश्चिमी गौ०-पश्चिमी हिन्दी (राजस्थानी भी

पजाबी गुजराती, सिन्धी । उत्तरी गो० नेपाली, गढवाली । दक्षिणी गो० मराठी ।

इन भाषाओं के अध्ययन से हानले ने निष्कर्ष निकाला कि आर्य भारत मे दो बार आए । पहले आर्य पजाब मे आकर बसे । दुबारा जब आर्य आए तो पूर्वागत आर्य पूर्व-पश्चिम एव दक्षिण मे फैल गये एव नवागत आर्य मध्यवर्ती प्रान्त मे । इस प्रकार पूर्वागत आर्य बाहरी शाखा के अन्तर्गत आते है एव नवागत आर्य भीतरी शाखा के अन्तर्गत । परन्तु अद्यावधि ऐसे कोई प्रमाण नही मिले है जिससे यह सिद्ध होता हो कि आर्य दो बार आए थे । साथ ही दो बार आये आपस मे लडे नवागतो ने उन्हे पूर्व-पश्चिम उत्तर मे खदेडा दूसरी जातियां मौन रही, आर्यो ने इसका ऋग्वेदादि मे उल्लेख भी नही किया आदि बाते कुछ असगत प्रतीत होती है । जो कुछ भी हो वर्गीकरण की दृष्टि से हानले का वर्गीकरण क्षेत्रीयता पर विशिष्ट रूपेण आधृत है । आ० भा०आ०भा० का दूसरा प्रमुख वर्गीकरण ग्रियर्सन ने किया । उनका वर्गीकरण इस प्रकार है— १ बाहरी उपशाखा– क पश्चिमोत्तर समुदाय (लहदा सिन्धी) ख दक्षिणी समुदाय (मराठी) ग पूर्वी समुदाय (उडिया बगाली, आसामी, बिहारी) २ मध्यवर्ती उपशाखा (पूर्वी हिन्दी) ३ भीतरी उपशाखा क केन्द्रीय समुदाय (पश्चिमी हिन्दी, पजाबी गुजराती भीली खानदेशी ख पहाडी समुदाय (पूर्वी-मध्यवर्ती पश्चिमी) ग्रियर्सन ने यह वर्गीकरण ध्वन्यात्मक, रूपात्मक एव शब्दात्मक आधार पर किया । डॉ सुनीति कुमार ने तीनो ही आधारो की आलोचना की । प्रस्तुत पक्तियो का लेखक डा चाटुर्ज्या के अतिरिक्त ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना राजस्थानी के विशिष्ट सदर्भ मे कर रहा है ।

(१) ग्रियसन के अनुसार र के स्थान पर ल या ड बाहरी भाषाओ मे प्रयुक्त होता है भीतरी मे नही । यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो ज्ञात होगा कि र>ल ल>र भारतीय आर्य भाषाओ की प्रमुख विशेषता है (रलयोरभेद पाणिनी) ड>ल, ल>ड वदिकी एव पालि की विशेषता रही है यही प्राय सभी आधुनिक भारतीय आ भा मे है । यहा भीतर शाखा मे राज के कुछ उदाहरण दिए जा रहे है-किवार-किवाड । भीर भीड । (२) ग्रियसन के अनुसार द>ड बाहरी मे होता है । पर भीतरी मे भी यह विशेषता है, यथा दड>डड, दश>डस, दालित>डोलै ।

(३) ग्रियसन के अनुसार 'म्ब' का बाहरी शाखा मै विकास म मे हुआ है पर राजस्थानी मे भी 'म्ब >मदृष्टव्य है निम्ब-नीम जम्बुक>जोमू (काला जोमू जामुनर)

(४) ऊष्म ध्वनिया (स श ष) के सम्बन्ध म ग्रियसन ने कहा कि भीतरी मे इनका उच्चारण अधिक दबाकर किया जाता है एव वह 'स' रूप मे ही होता है किन्तु बाहरी मे वह श् स ह रूप उच्चारित होता है । राजस्थानी की जोधपुरी आदि मे सर्वत्र स>ह उच्चारित होता है । यथा साथ>हाथ (साथ मे) सर>हैर (बाहर) आदि । स>ह की प्रवृति पालि काल मे प्रारम्भ हो गई थी यथा एकादश पा एकारस, एकारह, द्वादस बारस बारह आदि । यही प्रवृति बढी जो न केवल बाहरी अपितु भीतरी शाखाओ मे भी थाती रूप मे आई । स>ख में परिवतन ष>ख (उच्चारण) का प्रभाव है जो बाहरी नही भीतरी मे भी उपलब्ध होता है । यथा दश> नीख, दोसेटोनो रूप (राजस्थानी)

(५) महाप्राण ध्वनियो का अल्प प्राण होना ग्रियसन के अनु-

सार बाहरी शाखाओ की विशेषता है पर यह भीतरी शाखाओ मे भी प्राप्त होती है, यथा भगिनि, बहिन ।

(२) व्याकरणात्मक दृष्टि से उन्होने -ई- स्त्री० प्रत्यय के आधार पर बाहरी शाखा की पश्चिमी एव पूर्वी भाषाओ को एक करना चाहा है पर बाहरी मे नही भीतरी मे भी यह विशेषता है, यथा--दौडी, गई, मोई आदि । ख-बाहरी एव भीतरी मे ग्रियसन ने मुख्य अतर यह बताया कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाए सयोगात्मकता से वियोगात्मकता की ओर विकसित हुई है पर बाहरी शाखा की भाषाए विकास की एक और सीढी आगे बढी है अर्थात् अब वे पुन सयोग की ओर अग्रसर हो रही है । यथा-हि० राम की पुस्तक बगाली रामेर बोइ । भीतरी मे यदि कही सयोगात्मक रूप है तो सस्कृत के अवशेष मात्र ।

पर यह तर्क भी सगत नही, भीतरी मे भी बाहरी के समान ही सयोगात्मक रूप मिलते है जैसे उपर्युक्त उदाहरण का ही राज० रूप 'रामरी पोथी' इसके अतिरिक्त 'घरे (सप्तमी एक वचन) सागे (सप्तमी एक वचन) आदि । ग 'ल' विशेषणात्मक प्रत्यय को ग्रियसन बाहरी शाखा की विशेषता मानते है पर भीतरी मे भी यह पर्याप्त रूप से मिलता है यथा - रगीला, चमकीला इसी प्रकार शब्द समूह के आधार पर भी ग्रियसन ने बाहरी शाखाओ को एक माना पर यह भी तर्क असगत है । इसी प्रकार अन्य न्यूनताओ को देखते हुए डा० चटर्जी ने ग्रियसन के वर्गीकरण की आलोचना की एव आधुनिक भा० आ० भा० का वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया-उदीच्य (सिन्धी, लहदा पजाबी) प्रतीच्य (गुजराती-राजस्थानी) मध्यदेशीय (पश्चिमी हिन्दी) प्राच्य (पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उडिया, असमिया, बगाली) दक्षिणात्य (मराठी) पर सूक्ष्मता से देखने पर

यह वर्गीकरण भी कोई मौलिक नही अपितु हानले द्वारा कृत वर्गीकरण का पर्यायान्तर एव यत्किंचित सशाधित रूपातर मात्र है। इन्ही का अनुकरण डा० वर्मा ने किया है । डा० भोलानाथ ने आ० भा० आ० भा० के वर्गीकरण के दो रूप प्रस्तुत किए ह । उनका प्रथम वर्गीकरण इस प्रकार है –

(१) मध्यवर्ती (पूर्वी एव पश्चिमी हिन्दी) (२)पूर्वी (बिहारी उडिया, बगाली आसामी) दक्षिणी (मराठी) पश्चिमी (सिन्धी गुजराती, राजस्थानी) उत्तरी (लहदा, पजाबी, पहाडी । उन्होने दूसरा वर्गीकरण इस प्रकार किया है - शौरसेनी (पश्चिमी हिन्दी पहाडी राजस्थानी, गुजराती) मागधी (बिहारी बगाली आसामी उडिया) अर्ध मागधी पूर्वी हिन्दी) महाराष्ट्री (मराठी) व्राचड–पशाची (सिन्धी, लहदा, पजाबी)

प्रस्तुत पक्तियो का लेखक आ० भा० आ० भा० को इस प्रकार वर्गीकृत करने के पक्ष मे ह—१ मध्यदेशीया-पश्चिमी हिन्दी (राजस्थानी भी सम्मिलित है) पूर्वी हिन्दी (बिहारी भी सम्मिलित ह) २ उत्तरी (पजाबी, सिन्धी लहदा) ३ पश्चिमी (गुजराती) ४ पूर्वी (उडिया, बगाली असमिया ५ दक्षिणी (मराठी) ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ की विशेषतायें—

ध्वन्यात्मक विशेषताए–आ भा भा मे प्राय वे ही ध्वनिया है जो अपभ्रंश मे थी पर कुछ ध्वन्यात्मक विशेषताए ह—

(१) आ० भा० आ० भा० मे प्रमुखत हिन्दी लेखन मे तत्सम प्रभाव के कारण ऐं' औ' का लेखन होता है एव व्रज, अवधि आदि मे इनका स्पष्ट उच्चारण भी होता है-औरे' ऐसा । सस्कृत काल मे ये सयुक्त स्वर थे ।इनका उच्चारण आई (ए) आऊ (औ)

रूप मे होता था पर हिन्दी आदि मे ये मूल स्वर हो गये है एव इनका उच्चारण मूल स्वर वत 'ऐ' 'औ' होता है । 'ऋ' भी लिखने मे प्रयुक्त होता है पर उच्चारण म यह आज भी उ, रि आदि है। प श का भी लेखन होता है पर प्रयोग मे श स ही है या शिक्षा देने मे शिक्षक वृन्द प्रयत्नसाध्य ष' का उच्चारण करते है । हिन्दी आदि मे च वर्ग स्पश सघर्षी ह । मराठी मे यह त्स' (च्) द्ज(ज) रूप प्रयुक्त होता है तो राजस्थानी के बाडमेर आदि क्षेत्रा मे विश्व-नोई आदि जातियो द्वारा च वर्ग मराठी की भान्ति स' रूप मे उच्चरित होता है, यथा – चौदह–सद्दे । अपभ्रंश की उकार वहुलता हिन्दी आदि मे समाप्त हो गई है जबकि राजस्थानी आदि मे 'ओ' मे परिणत हो गई है । मध्य० भा० आ० भा० मे जो असयुक्त वर्णो मे अल्पप्राण—क ग च ज त द प व के लोप की प्रवति थी वह हिन्दी आदि मे नही ह । सयुक्त व्यजन जो द्वित्व हो गये थे आ० भा० आ० भा० में पुन द्वित्व भग हो गया ह एव क्षति पूरणाथ पूव वर्ण दीघ हो गया है यथा—कम्म–काम, कण्ण–कान आदि । घर्म अपवाद ह । बलात्मक स्वराघात प्रधान है ।

रूपात्मक विशेषताए

प्रातिपदिक स्वरान्त एव व्यजान्त दोनो है । कारकीय रूप तीन या चार ही ह । परसर्गों का प्रयोग आधुनिक है । सू, से, ने, नू, का, की के, रा री, रे मे, माय आदि परसर्ग विकसित हुए है । कृदन्तीय रूपों के योग से काल सरचनाए होती है । सहायक क्रियाओं का भी प्रयोग बढा है ।

आ० भा० आ० भा० वियोगात्मक रूप है । यद्यपि ब्रज, राजस्थानी आदि मे सयोगात्मक रूप भी मिलते है। घरे (स० गृहे)

व० घरहि आदि वचन दो (एक व०, बहु व०) लिंग दो (पुलिंग स्त्रीलिंग-कुछ निलिंग शब्द भी है) । शब्द भण्डार की दृष्टि से आ० भा० आ० भा० मे तत्सम, तद्भव, देशी विदेशी (अरबी, फारसी अग्रेजी तुर्की, पुतगाली आदि) अनेक शब्द रूप है।

प्रतिनिधि आधुनिक भारतीय आय भाषाए

प्रमुख आ० भा० आ० भा० निम्ननिखित है - सिंधी लहदा, पजाबी, गुजराती, उडिया असमिया बगाली, मराठी हिन्दी (पूर्वी पश्चिमी-राजस्थानी भी पश्चिमी हिन्दी मे ही सम्मिलित है। प्रस्तुत कृति का सम्बन्ध हिन्दी एव राजस्थानी से ही है अत यहा इन्ही का विस्तृत विवेचन किया गया है। शेष भाषाओ का आशिक परिचय ही दिया गया है—

सिन्धी

सिध प्रदेश मे बोली जाने के कारण ही इसका नाम सिन्धी है। डा० भोलानाथ की मान्यता है। इस शब्द का मूल द्रविड शब्द सिद् था सिन्ध नही। पर उनकी यह धारणा त्रुटि पूण है। वैदिक >रचनाओ मे 'सप्त सिन्धु' का अनेक बार उल्लेख मिलता है अत इसे मूल द्रविड शब्द मानना भ्रान्त है। 'सिन्ध से ही भाषावाची-ई प्रत्यय जुडकर सिन्धी शब्द बना है। इसके प्राचीन उल्लेख भरत नाट्य, कुवलय माला आदि मे मिलते है। वतमान युग मे इसकी प्रतिनिधि बोली विचोली है। इसके अतिरिक्त थरली, लासी, लाडी तथा कच्छी इसकी प्रमुख बोलिया है। इसकी प्राचीन तम कृति महाभारत मानी गई है।

लहदा

इसका शाब्दिक अथ है-सूर्यास्तया पश्चिम या है एव यह

यह मुख्यत पजाव के पश्चिमी भाग मे ही बोली जाती है इसी कारण इसे लहदा या पश्चिमी पजाबी कहते है हिन्दकी, जटकी, उच्ची मुल्तानी, आदि इसके अन्य नाम हैं। ग्रियसन के अनुसार इसके बोलने वाला की मख्या ६०, ६२, ७८१ हैं। लहदा मे साहित्यिक निधी अन्य ह। लोक सायित्य ही प्राप्त होना है।

पजाबी

पजाव प्रान्त मे (पूर्वी पजाव) मे बोली जाने के कारण इसका नाम पजाबी ह। शाब्दिक दृष्टि से यह शब्द फारसी पज-आब है जिसका मस्कृत रूप पचनद' है। परिनिष्ठित पजाबी अमृतसर एव उसके आस पास बोली जाती है। दो आबी, दाठी, मालवाई आदि इसके अन्य रूप ह। साहित्यिक दृष्टि से इसमे गुरु नानक, गुरु अर्जनदेव आदि की कृतिया प्रमुख है।

गुजराती

गुजरात प्रान्त मे प्रसृत एव भाषित होने के कारण ही इसका नाम गुजराती है। इसका उद्भव गुजर अपभ्रश से हुआ है। भाषा रूप मे इसका उल्लेख कुवलय माला मे मिलता है। इटैलियन भाषा शास्त्री टैसीटरी ने यह सिद्ध किया है कि १६ वी शती के लगभग पश्चिमी राजस्थान तथा गुजरात की भाषा एक थी एव इसे उन्होंने पश्चिमी पुरानी राजस्थानी कहा है। १६६१ की जनगणना के अनुसार गुजराती भाषियो की जनसख्या दो करोड तीन लाख मे ऊपर है। नागरी वडइया गामडिया सुरती अनावल, पूर्वी भडौची पाठीदारी वडोदरी, पट्ठनी, काठियाघाटी वोरुमाई, खारवा पटलूणी काकरी आदि इसकी प्रमुख बोलिया है। साहित्यिक दृष्टि से विनयचन्द्र सूरि, राजशेखर नरसी मेहता, प्रेमानन्द 'अखा आदि के नाम विशेष उल्लेख्य

मराठी

महाराष्ट्र प्रान्त मे भाषित एव प्रसृत होने के कारण ही इसका नाम महाराष्ट्री है । इसका उद्भव महाराष्ट्री प्राकृत अप-भ्रंश,से हुआ है एव महाराष्ट्री शब्द से ही मराठी शब्द विकसित हुआ है। इसका प्राचीन उल्लेख कुवलय माला मे मिलता है– दिण्णल्ले गहिल्ले उल्लविरे तत्थ मरहट्ठे । १९६१ की जन गणना के अनुसार मराठी बोलने वालो की सख्या ३२, २८६ ७७१ है । कोंकणी इसकी सबसे प्रसिद्ध बोली है । ग्रियसन ने मराठी की ३९ बोलिया का उल्लेख किया है । मराठी साहित्यकारो म सतज्ञानेश्वर सत तुकाराम सत नामदेव एकनाथ एव रामदास के नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

उडिया

उडीसा प्रान्त मे प्रसृत एव भाषित होने के कारण ही इसका नाम उडीया पडा है । ओरिया, उत्कली उत्कली ओडी आदि इसके अन्य नाम है । इसका सम्बन्ध मागधी अपभ्रंश से जोडा जाता है। इसका प्राचीन तम उल्लेख अनन्त वर्मा के उरजम शिला लेख (ई १०५१) मे मिलता है । कटकी, गजामी, सभलपुरी एव भत्री आदि इसकी प्रमुख बोलियाँ है । १९६१ की जन गणना के अनुसार इसके बोलने वालो की जन सख्या १५६ १६, ९८६ है भुइण्या, १८१, सारलादास बलरामदास जगन्नाथदास एव उपेन्द्रभज इसके प्रतिनिधि साहित्यकार है बगाली– बगाल प्रान्त म प्रसृत एव भाषित होने के कारण इसे बगाली कहा जाता है । इसका प्राचीन नाम बग था एव इसी में आली प्रत्यय योग से यह शब्द व्युत्पन्न हुआ है

जिसका अर्थ है बग देश की या वाली । गौडी, गौरली आदि इसके अन्य नाम प्राप्त होते हैं । इसका उद्भव मागधी अपभ्रंश के पूर्वी रूप से हुआ है । डा० चटर्जी ने इसका उद्भव ९५० ई० मे माना है । ग्रियर्सन ने बगाली के सात भेद किए है—परिनिष्ठित बगाली, पश्चिमी बगाली, दक्षिणी – पश्चिमी बगाली उत्तरी बगाली, पूर्वी बगाली, दक्षिणी-पूर्वी बगाली । स्वतन्त्रता मे पूर्व १९३१ की जन गणना के अनुसार इसके बोलने वालो की सख्या पाच करोड अडतीस लाख स भी ऊपर थी । बग विभाजन के अनन्तर १९६१ की जन गणना के अनुसार भारत मे बगला भाषियो की सख्या ३ ३८,०८६,९३९ । प्राचीन बगाली साहित्य मे कृत्तिवासी रामायण कासीराम दास कृत क्षेमानन्द काव्य' प्रमुख है । आधुनिक बगला साहित्यकारो मे रविन्द्रनाथ टैगोर बकिमचन्द्र चटर्जी माइकेल' मधु सूदनदत्त शरत्चन्द्र आदि के नाम विश्व साहित्य मे परिगणित है ।

आसामी—

यह आसाम मे बोली जाती है । इसका प्राचीन नाम काम रूप था । इसका आसाम नाम कैसे पडा, इस विषय मे विवाद है । सर एडवडगर के अनुसार स० असम (जिसके कोई समान न हो) ग्रियसन के अनुसार स० शम, डा० पी० सी० के अनुसार सिएन-स्याम एव डा० बानीकान्त के मनुसार ताई व भाषा की चाम् धातु से इस का सम्बध है । इसका प्राचीन उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनत्साग ने किया है । उसने लिखा है कि काम रूप की भाषा मध्यदेशीया से भिन्न है । इसके बोलने वाला की जनसख्या १९६१ मे ६८०३४६५ है । इसकी बोलिया अधिक नही है - गारो मरवा म्याग इसकी बोलियाँ है । आसामी साहित्यकारो मे पीताम्बर, शकर' देव, माधवदेव आदि प्रमुख है ।

पुरी आदि इसकी अन्य उपबोलियां है ।

बागरू

दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब के करनाल रोहतक हिसार पटियाला नाभा तथा दिल्ली राज्य के आसपास बोली जाती है । बांगरू जाटू, हरियानी आदि इसके अन्य नाम है । बागर (जमीन का वह ऊंचा भाग जो बाढ़ आदि में न डूबे) क्षेत्र की भाषा होने के कारण ही इसे बागरू कहते है । ग्रियर्सन के अनुसार इसके बोलने वालो की जनसंख्या लगभग ८ लाख साढ़ पचहत्तर हजार से कुछ ऊपर है । हरियानी, जाटू, चमरवा बागड़ी आदि इसकी उपबोलियां है । साहित्यिक दृष्टि से इसकी कोई विशेष रचना लब्ध नही होती ।

कौरवी–

इसका परिनिष्ठित रूप बिजनौर में पाया जाता है । इसके अतिरिक्त यह रामपुर मुरादाबाद, मेरठ, मुजफ्फरनगर सहारनपुर देहरादून के मैदानी भाग, अम्बाला के पूर्वी भाग, कलसिया एवं पटियाला के पूर्वी भाग में बोली जाती है । इसे ही चटर्जी न जनपदीय हिन्दुस्तानी तथा ग्रियर्सन हिन्दी आदि कहलाती है । पूर्वी-पश्चिमी कौरवी, पहाड़ताली, बिजनौरी इसकी प्रमुख उपबोलियां है ।

पूर्वी हिन्दी

इसके अन्तर्गत मुख्यतः अवधी छत्तीसगढ़ी एवं बघेली आती है। ग्रियर्सन बघेली को अवधि का ही रूपान्तर मानते है । ग्रियर्सन के अनुसार पूर्वी हिन्दी भाषी लोगों की संख्या दो करोड़ पैंतालीस लाख, साढ़े ग्यारह हजार से कुछ ऊपर है । यह उत्तर प्रदेश में लखनऊ उन्नाव रायबरेली, सीतापुर खीरी फैजाबाद गोंडा बहराइच सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी कानपुर फतेहपुर इलाहाबाद जौनपुर मिर्जापुर, मध्यप्रदेश में रीवां [illegible] जबलपुर, मांडला बालाघाट रायपुर बिलास, [illegible] है । [illegible] में अवधि [illegible] है जिसमें कि विश्व प्रसिद्ध रामचरितमानस भी रचित है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पश्चिमी हिंदी एव राजस्थानी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से ही हुआ है।

० ६ हिन्दी एव राजस्थानी तुलनात्मक विश्लेषण—

हिंदी एव राजस्थानी मे निम्न अंतर है—

(१) राजस्थानी भाषा मे छांदस एव पालि भाषा की भाति ळ ध्वनि है पर हिंदी मे लौकिक सस्कृत की भाति 'ळ' ध्वनि नही है।

(२) शौरसेनी अपभ्रंश उकार वहुला भाषा थी, राजस्थानी मे उकार गुणीय रूप मे परिवर्तित हुआ है अत राजस्थानी ओकारांत वहुला भाषा है एव हिंदी मे अंत्य उकार लुप्त हुआ है अथवा आकार मे परिवर्तित हुआ है। हिंदी आकारांत बहुला भाषा है, यथा—स० घोटक प्रा० घाडअ, अप० घाडउ राज० घोडो, हि० घोडा।

राजस्थानी मे व्रज की भाति सस्कृत के विभक्ति युक्त कारकीय रूप अब भी अवशिष्ट है, यथा घरे जाउ, घरे है। हिंदी मे ऐसे प्रयोग नही हैं।

राजस्थानी मे 'नै' कर्म कारक परसग है जबकि हिंदी मे ने' कर्त्ताकारक परसग है। करण-अपादान राज० सू, सें हि० से, सप्रदान-सम्बध राजस्थान, री, र, का, को के हि० का की के है।

(५) राज० मे शौरसेनी अप० का उ० पु० ए० ब० का हउ>हू रूप प्रयुक्त होता है जबकि हि० 'मै'।

(६) राज० मे वतमान भवि एव आज्ञार्थ काल मे सस्कृत के इन्ही कालो के अवशिष्ट वा विकसित रूप प्रयुक्त होते है, यथा—स० लट् लकार (वतमान काल) स० पठति प्रा० अप० पढइ राज० पढ, लृट्लकार (भविष्यत् काल) स० पठिष्यति अप० पढिसइ राज०

पढसी ग्रादि । हिंदी मे ऐसे रूप प्रयुक्त नहीं होते ।

इन प्रमुख ग्रंतरो के ग्रतिरिक्त, हिंदी एव राज० मे ग्रौर भी छोट-मोटे ग्रंतर है पर इसका ग्रभिप्राय यह नही कि ये दोनो भिन्न-२ भाषाए हैं ।

वस्तुत राजस्थानी पश्चिमी हिंदी की ही एक शाखा है जो ग्रपना क्षेत्रीय प्रभाव लिए हुए है ।

० ७ लिपि—

हिंदी एव राजस्थानी दोना मे ही नागरी लिपि का प्रयोग होता है । राज० की मारवाडी शाखा मे महाजन लोग महाजनी या वाणियावाटी लिपि का प्रयोग करते हैं इसमे मात्राए नही होती । यह भी धीरे-धीरे लुप्त हो रही है ।

'हिन्दी ध्वनियों का वैज्ञानिक इतिहास'

१ ० भाषिक क्षेत्र म वागयत्र से निसत, श्रोता द्वारा श्रुत एव लिपिबद्ध
[illegible] वण ही ध्वनि[1] है ।

प्रयोगाह परिनिष्ठित हिन्दी भाषा म निम्नलिखित ध्वनिया है —

र ध्वनिया अ, आ इ ई, उ, ऊ ए, ऐ एँ, ओ, औ, आ, (ऋ)

जन ध्वनिया क, ख ग, घ् ङ

च् छ ज झ ञ,

ट ठ ड, ढ ण्

त् थ द्, ध्, न्

प् फ ब् भ्, म्,

य, व्, र्, ल्

ड ढ,

स, ष (ष) ह

उपयुक्त सभी ध्वनिया हिन्दी भाषा म प्रयुक्त होती है । इन ध्वनियों के

क आचाय पाणिनि न ध्वनि का स्वरूप इस प्रकार प्रतिपादित किया है —
[illegible]मा बुद्धया समेत्यर्थान् मनोयुङ्क्ते विवक्षया मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्र जनयति
[illegible]रम् सौदीर्यो मूर्धन्यभिहितो वक्त्रमापद्य मारुत वर्णाञ्जनयते तथा विभाग
[illegible] चधा स्मृत पाणिनीय शिक्षा ६ ७ ९

ख अभिनवगुप्तपादाचाय न वयाकरणो द्वारा प्रतिपादित ध्वनि स्वरूप को इस
[illegible]रा अभि यक्त किया है —
[illegible]यर्माहि विद्वासो वयाकरणा व्याकरण मूलत्वात् सवविद्यानाम त च श्रूयमाणेषु
[illegible]णेषु ध्वनिरिति यवहरन्ति ध्वन्यालोक १।१३

प्रतिग्वित क ख ग, ज फ ध्वनिया भी प्रयुक्त होती है । म इन्हें हिन्दी भाषा की ध्वनिया मानने के पक्ष म नही हू क्योकि इन ध्वनियो का प्रयोग उर्दू फारसी शिक्षित लोग ही करते हैं या इन लोगो से प्रभावित हिन्दी भाषी लोग। ल, ढ ध्वनियो का प्रयोग राजस्थानी के प्रभाव के कारण कुछ लोग हिन्दी भाषा म करते हैं । ऋ ध्वनि का उच्चारण यद्यपि अपने मूल रूप मे नही है (ऋटुरषाणा मूर्धा) तथापि परिनिष्ठित हिन्दी म इसका प्रयोग होता है। मूर्धन्य ष का प्रयोग भी उच्चारण की दृष्टि से हिन्दी म नही होता फिर भी साहित्य म अल्प मात्रा मे इसका प्रयोग होता है । यहा यह विशेष ध्यातव्य है कि वदिक काल म ही 'ष' का उच्चारण 'ख' वत होता था एव आज भी परम्परागत शिक्षित वदिक मन्त्रपाठी ष का उच्चारण 'ख' ही करते हैं पर परिनिष्ठित हिन्दी मे यह 'ष' रूप म ही उच्चरित होता है 'ख' वत नही ।

१ १ स्वर ध्वनिया

—वदिक काल म कुल कितनी ध्वनिया थी इस सबध म भारतीय एव पाश्चात्य भाषाविद एकमत नही है। मरडानल वदिक काल म कुल ५२ ध्वनिया (१३ स्वर ३८ व्यजन एव एक अनुस्वार) मानते हैं । डॉ सुनीति कुमार चटर्जी ने ५३ डॉ धीरेन्द्र वर्मा ने ५२ एव डॉ भोलानाथ ने ५६ वदिक ध्वनिया स्वीकार की है । मेरे मत म उपर्युक्त मन्तव्य सगत नही हैं क्योकि ये मत वदिक कालीन वयाकरणिक प्रातिशाख्य एव शिक्षा ग्रन्थो के प्रमाणो के प्रतिकूल हैं । प्रातिशाख्यो एव शिक्षा ग्रन्थों म कहीं पर वदिक ध्वनिया की सख्या अडसठ एव कहीं पर चौसठ बताई गई है ।[1] इनम प्रथम नौ शुद्ध स्वर बताए गये हैं ।[2]

वदिक एव लौकिक संस्कृत काल म कुल ९ मूल स्वर थे। प्रातिशाख्यो एव पाणिनि के माहेश्वर सूत्रो म इनका उल्लेख मिलता है ।[3] पाणिकाल म

१ एव शिक्षास्वपि क्वचित् क्वचित् लोकवद् साधारणा उपदेशा भवन्ति 'अष्टषष्टि पठन्त्येके चतुषष्टिमथापरे तत्तरीय प्रातिशाख्य ११ पर

२ अथ नवादित समानाक्षराणि

३ क वही वही

ख अइउण् ऋलृक् एओड् ऐऔच्
अष्टाध्यायी माहेश्वर सूत्राणि

दस मूल स्वर थे।[1] प्राकृत काल म ऐ एव औ स्वर ध्वनियां नही रहो। ऐ का ए ने औ का ओ ने स्थान ले लिया।[2] अपभ्रंश काल म भी यही स्थिति रही।

हिन्दी भाषा म कुल १२ मूल स्वर ध्वनिया है जिनकी तालिका पहले दी जा चुकी है।

सस्कृतज्ञो ने स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण मात्राकाल (ह्रस्व, दीर्घ प्लुत) उदात्त अनुदात्त, स्वरित, उच्चारण स्थान एव अनुनासिकता व अननुनासिकता के आधार पर किया। म भा आ भा काल मे भाषाविदोने उदात्त, अनुदात्त एव स्वरित पद्धति को त्याग दिया।

हिन्दी भाषा म मुख द्वार के अधिक या कम खुलने, जिह्वा के अग्र मध्य या पश्च भाग के विभिन्न उच्चारणावयवो के छूने के आधार पर स्वर - ध्वनियो को चार भागो मे विभक्त किया गया है-- १ सवृत २ अर्ध सवृत ३ अर्ध विवृत ४ विवृत। यहा इन स्वर ध्वनियो का वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है—

अ ऐतिहासिक क्रम– सस्कृत भाषाविदो ने उच्चारण - स्थान की दृष्टि से इस वर्ण को कण्ठ्य एव यत्न की दृष्टि से विवृत माना।[3] मात्रा काल (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत)[4] कण्ठ के ऊपर नीचे एव दोनो के बीच के उच्चारण (उदात्त अनुदात्त एव स्वरित)[5] एव अनुनासिकता[6] के आधार पर इसके अठारह भेद किये। म भा आ भा काल म भी इस स्वर ध्वनि की यही स्थिति रही पर वर्गीकरण की क्लिष्ट प्रणाली को त्याग दिया गया।

लक्षण– हिन्दी भाषा म यह वर्ण ध्वनि अर्ध विवृत, मध्य एव ह्रस्व है। इसके उच्चारण म जिह्वा का मध्य भाग कुछ ऊपर उठता है एव मुख द्वार आधे से अधिक खुलता है। हिन्दी भाषा म इसका दीर्घ भेद नही होता। इसके मुख्यत दो भद है– १ अनुनासिक २ अननुनासिक।

---

१ दसान्दो सरा ११ पालि महाव्याकरण भिक्षु जगदीश काश्यप

२ एतान्त औतओत, प्राकृत प्रकाश, वररुचि

१/३६ १/४१

३-अकुहविसर्जनीयाना कण्ठ विवृतम् स्वराणाम् १/१/६ ४ ऊकालोऽ– ज्भस्वदीर्घ प्लुत – १/२/२६ ५ उच्चैरुदात्त, नीचैरनुदात्त, समाहार स्वरित १/२/२६ ६ मुखनासिकावचनो अनुनासिका १/१/२८ अष्टाध्यायी

उ एव वि– हिन्दी भाषा म इस वर्ण ध्वनि का उद्भव और विकास संस्कृत के अ (संयुक्त वर्णों से पूर्ववर्ती) आ एव अक अत [1] अन्त्य वर्णी शब्दो से हुआ है। अ– स कम म भा आ भा कम्म हि काम स अश्रु म भा आ भा अस्म असू हि आसू आ–स द्वाविंशति म भा आ भा बावीस हि बाईस अ अक अत म भा आ भा अअ हि आ, म घोटक म भा आ भा घोडअ हि घोडा

अ हिन्दी भाषा मे इसका प्रयोग शब्दादि, मध्य एव अन्त्य मे स्वतत्र रूपेण एव स यजन सवत्र होता है। शब्द मध्य मे इसके स्वतत्र प्रयोग म व श्रुति का आगम भी लक्षित होता है–

आदि	मध्य	अन्त्य
आज	जुआरी (जुवारी)	कुआ (वा)
आश्चय	कुआडा (वा)	बूआ

इ– ऐ क प्रा भा आ भा काल म सस्कृत वयाकरणा ने इसे मूल नौ स्वरा म परिगणित किया (अइउण मा सू) एव मात्राकाल उदात्त अनुदात्त, स्वरित एव अनुनासिकता–अननुनासिकता की दृष्टि से इसके अठारह भेद किये। उच्चारणस्थान की दृष्टि से पाणिनि न इसे तालव्य एव बाह्य यत्न की दृष्टि से विवृत माना [2] म भा आ भा म भाषाविदो न सस्कृतनो का ही अनुसरण किया।

ल– हिन्दी भाषा मे यह सवत्र अग्र ह्रस्व मूल स्वर है। इसके उच्चारण म जिह्वा का अग्र भाग उठता है एव होठ मुखद्वार के दोनो ओर फल जाते हैं। अनुनासिकता एव अननुनासिकता के आधार पर इसके दो भेद हैं।

---

१ प्राकृत काल म शब्द मध्यग अयुक्त अल्प प्राण ध्वनिया लुप्त हो गई थी (क ग च ज त द प यवा प्राय लोप प्रा प्र वररुचि) अक अत अन्त्यवर्णी शब्दो म क त का लोप होन पर 'अअ स्थिति रही एव हिन्दी म अअ–आ म परिवर्तित हुआ।

२ इचुयशाना तालु विवृतम स्वराणाम् १/१/९ वार्तिक

उ एव वि— हिन्दी भाषा म इस ध्वनि का उदभव एव विकास सस्कृत क अ, इ, ई तथा ऋ ध्वनियो से हुआ है। यहा यह विशेष उल्लेख्य है कि सस्कृ काल मे गुण[1] (इ > ए) सम्प्रसारण[2] (य > इ) की प्रवत्ति विद्यमान थी। म भा आ भा काल मे भी यह प्रवत्ति थी। हिन्दी भाषा म अद्यावधिपय त यह प्रवत्ति विद्यमान है। 'इ' का परिवतन कही ए म कहीं य मे एव कहीं ए का इ मे व कही य व इ मे परिवतन होता है। अ, स अम्लिका म भा आ भा इमलिआ हि इमली, इ, स किरण हि किरन ई स दीपावली म भा आ भा दीवाअली हि दिवाली, ए स एकत्र म भा आ भा एकट्ठ हि इक्ठ्ठा, ऋ स मृत्तिका म भा आ भा मिट्टिआ हि मिट्टी

प्र इस ध्वनि का प्रयोग स्वतत्र रूपेण शब्दादि मे एव सव्यजन आदि मध्य एव अन्त्य मे होता है। शब्दान्त मे तत्सम शब्दो मे ही इसका प्रयोग होता है तदभव शब्दो म इसका प्रयोग अत्यल्प या नही के तुल्य होता है—

आदि	मध्य	अन्त्य
इलायची	इतिहास	पाणि (हाथ)
इमली	दक्षिणी	मुनि

ई- ऐ म — प्रा भा आ भा काल मे भाषाविदो ने इसे 'इ' का दीघ रूप ही माना एव 'इ' के अठारह भेदो के अन्तगत ही इसे परिगणित किया। म भा आ भा काल मे पालि वयाकरणो ने इसे दस मूल स्वरों में परिगणित किया एव इसे दीघ स्वर *माना*[3]। *प्रा नव अप काल म भी यही स्थिति रही।*

ल— हिन्दी भाषा मे यह सवृत, अग्र एव दीघ मूल स्वर है। इसके उच्चारण म जिह्वा का अग्रभाग इ के उच्चारण से कुछ अधिक उठता है एव कठोर तालव्य के अति निकट पहुच जाता है तथा होठ दोनो ओर फल जाते हैं।

उ एव वि — हिन्दी भाषा म इसका उदभव एव विकास सस्कृत के इ, ई ऋ वर्गो एव ईकारान्त प्रत्ययान्त शब्दों से हुआ है — इ स — इन्धन म भा आ भा इधण हि ईधन स इक्षु म भा आ भा इक्खु हि ईख स तीक्ष्ण म भा आ भा तिक्ख हि तीखा ऋ स ततीया म भा आ भा तइज्ज तिइज्ज हि तीज

---

१ २ अदेङ गुण १/१/२ इग्यण सम्प्रसारणम् १/१/४५

३ दसादोसरा १ १ परोदीघो १ ८ पालि महाव्याकरण।

इक्षु स होलिका म भा आ भा होलिआ हि होली स अम्लिका म भा आ भा इमलिआ हि इमली।

प्र — हिन्दी भाषा म इस ध्वनि का प्रयोग स्वतन्त्र रूपेण एव सव्यजन शब्दादि मध्य एव अन्त्य मे होना है—

आदि	मध्य	अन्त्य
ईख	पीठ	भाई
ईधन	भीख	पराई

उ ऐ क — प्रा भा आ भा काल मे सस्कृतज्ञो ने इस ध्वनि को मूल स्वर (अइउण मा सूत्र) माना एव अ, इ की भाति इसके अठारह भेद किये तथा उच्चारण स्थान की दृष्टि से इसे ओष्ठ्य एव बाह्य यत्न की दृष्टि से विवृत माना।[1] म, भा आ भा काल म सस्कृतज्ञो के मतानुरूप ही इस ध्वनि की स्थिति मानी गई।

ल हिन्दी भाषा मे यह सवृत, पश्च, वर्तुलाकार, ह्रस्व मूल स्वर है। इसके उच्चारण मे जिह्वा का पश्च भाग उठता है एव होठ मुखविवर के पास गोलाकार हो जाते हैं।

उ एव वि हिन्दी भाषा मे इस ध्वनि का उद्भव एव विकास सस्कृत के उ, ऊ ओ वर्णो से हुआ है। यहां यह विशेष उल्लेखनीय है कि प्रा भा आ भा काल से ही इ > ए एव उ > ओ म परिवर्तित होता था। स्थानभेद से कहीं इ>ए कहीं पर ए इ, उ ओ, ओ उ का उच्चारण होता है। इसी प्रकार य-इ-ए, इ य -ए व-उ-ओ, उ-व ओ म भी उच्चारित होता है (उदाहरणतया इलाहाबाद का रहने वाला यह को एह बोलेगा) पाणिनि न इस प्रवृत्ति को गुण एव सम्प्रसारण की सज्ञा दी है[2]। हिन्दी भाषा म यह प्रवृत्ति आज भी लक्षित होती है। स कुम्भकार म भा आ भा कुम्हार हि कुम्हार ऊ स कूप म भा आ भा कूव हि कुआ ओ स लोहकार म भा आ भा लोहार हि लुहार

---

१ उपूपध्मानीयानामोष्ठौ १/१/९ वार्तिक विवृतम् स्वरणाम् वही

२ अदेङ गुण इग्यण सम्प्रसारणम १/१/२, १/१/४५

प्र इस ध्वनि का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से शब्दादि में एव सन्यजन शब्दादि, मध्य एव अन्त्य मे होता है। शब्दान्त मे अधिकाशत तत्सम शब्दावली मे ही इस के प्रयोग की प्रवत्ति लक्षित होती है—

आदि	मध्य	अन्त्य
उपकार	मुकुट	मत्यु
उदय	महुआ	पशु

ऊ ऐ क्र— प्रा भा आ भा काल मे सस्कतज्ञो ने इस ध्वनि को 'उ' का ही दीघ रूप स्वीकार किया एव इसे भी ओष्ठ्य व विवत माना। म भा आ भा काल म पालि वयाकरणो ने इस मूल दीघ स्वर माना। प्रा एव अप काल मे भी यही स्थिति रही।

ल हिन्दी भाषा म यह मवत पश्च वतुलाकार दीघ मूल स्वर है। इसके उच्चारण म जिह्वा का पश्च भाग उ की अपेक्षा कुछ अधिक उठता है तथा होठ पूणतया गोलाकार हो जाते हैं। सस्कत भाषा म उ ऊ को प वग की भाति ओष्ठ्य कहा गया है परन्तु हिन्दी मे पवग एव उ ऊ क्रमश द्वयोष्ठ्य एव ओष्ठ्य है। उ ऊ के उच्चारण म होठ गोलाकार होते है जबकि पवर्ग के उच्चारण म दोनों होठ परस्पर टकराते है।

उ एव वि इस ध्वनि का उद्‌भव एव विकास सस्कत के उ ऊ ऋ ओ औ वर्णो से हुआ है— उ– स उष्ट्र म भा आ भा उट्ट हि ऊट, ऊ स ऊर्ण म भा आ भा उण्ण हि ऊन ऋ स वद्धक म भा आ भा वुड्ढअ हि बुड्ढा औ स पौष म भा आ भा पुस्स हि पूस।

प्र इस ध्वनि का प्रयोग स्वतन्त्र रूपेण शब्दादि मे एव सन्यजन आदि मध्य एव अन्त्य म होता है—

आदि	मध्य	अन्त्य
ऊन	कूडा	आलू
ऊर्जा	जूआ	भालू

ए ऐ क्र प्रा भा आ भा काल में यह ध्वनि सन्ध्यक्षर के अन्तगत परिगणित की गई। पाणिनि ने एओङ माहेश्वर सूत्र म इसका उल्लेख किया है। इस स्वर के मात्रा काल (दीघ-प्लुत), उत्तादि एव अनुनासिकता

अननुनासिकता के आधार पर इसके मूल बारह अच भेद किये गये क्योंकि इसका ह्रस्व रूप नहीं था। उच्चारण स्थान एव बाह्य यत्न की दृष्टि से इस ध्वनि को क्रमश कण्ठतालु एव विवत माना।[1] म भा आ भा काल में इसे मूल स्वर ही स्वीकार किया गया परन्तु इस काल म इसका ह्रस्व रूप भी स्वीकार किया गया। पालि भाषाविदो ने दस मूल स्वरो म इसे माना एव ऍ को इसका ह्रस्व रूप माना। पालि वयाकरणाचाय मोग्गलान ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है' सयुक्त अक्षर से पूव आने वाले ए तथा ओ ह्रस्व (ऍ ऑ) होतेहैं।[2] प्राकृत एव अपभ्रश म भी इस ध्वनि की यही स्थिति रही।

ल हिन्दी भाषा म यह अघ सवत, अग्र, विस्ततातार दीघ मूल स्वर है। इसके उच्चारण म जिह्वा का अग्रभाग ऊचा उठता है एव होठ दोनो ओर 'ई' क उच्चारण से अधिक फल जाते है।

उ एव वि हिन्दी भाषा म इस वण का उदभव एव विकास सस्कृत के अ इ ऋ वर्गो एव अति अत वाले शब्दो से हुआ है यथा अ - ए स कन्दुक म भा आ भा गेंदुअ हि गद स शय्या म भा आ भा सेज्जा हि सेज (यहा यह उल्लेख्य है कि प्राकृत काल म य स पूववर्ती अ ध्वनि 'ए' म परिवर्तित हो गई थी। इस प्रवति का उल्लेख वररुचि ने 'एशय्यादिपु' सूत्र मे किया है। कालान्तर म यह प्रवृत्ति और बढी एव हिन्दी म अनक वण अ स ए म परिवर्तित हो गये। इ — ए इ का ए म परिवतन सस्कृत काल म ही प्रारभ हो गया था। पाणिनि ने इस प्रवत्ति को गुण कहा। हिन्दी भाषा मे यह प्रवत्ति आज भी प्रचुरता स विद्यमान है। सस्कृत के अनक इ युक्त शब्दो का हिन्दी म 'ए' मे परिवतन हुआ है यथा स छिद्र म भा आ भा छिदद हि, छेद स बिल्व म भा आ भा बिल्ल हि बल ऐ - ए स तल म भा आ भा तेल्ल हि तेल (प्राकृत काल म ऐ ध्वनि ए म परिवर्तित हो गई थी। वररुचि ने 'एतएत' (१/३५) सूत्र म इस प्रवत्ति का उल्लेख किया है) ऋ ए स गह हि गेह स अति म भा आ भा अइ हि ए स नवति म भा आ भा नव्वए नव्वई हि नव्व

---

१ ऐदतो, कण्ठतालु १/१/६ वार्तिक

२ दसादो सरा १/२

प्र हिन्दी भाषा म इसका प्रयोग स्वतन्त्र रूप से शब्दादि में एव सयजन आदि मध्य एव अन्त्य म होता है

आदि	मध्य	अन्त्य
एक	विवक	घोडे
एकाकी	रखेल	गधे

ऐ– ए ऋ प्रा भा आ भा काल म सस्कतना न इसे सन्ध्यक्षर (आ+इ) माना। पाणिनि न माहेश्वर सूत्रो म (ऐ औच) इसका उल्लेख किया है। पाणिनि ने ए की भाति इसका उच्च रण स्थान कण्ठतालु एव यत्न विवत माना (ऐदनो कण्ठतालु १/१/८) म भा आ भा काल म यह स्वर नही रहा। इसके स्थान पर ए प्रयुक्त होन लगा। पालि वयाकरणो म दस मूल स्वरो म इसकी गणना नही की है। प्रा काल म वररुचि न एतएत सूत्र म इसी तथ्य की पुष्टि की। अपभ्रश काल म भी यह स्वर नही था।

ल हिन्दी भाषा म यह अध सवत अग्र मूल स्वर है। इसके उच्चारण म जिह्वा का अग्र भाग ए की अपेक्षा अधिक उठता है एव होठ भी ‘ए का अपेक्षा मुखद्वार के दोना ओर अधिक फल जाते है।

उ एव वि – इसका उद्भव एव विकास सस्कत के इ ई ए एव अइ म हुआ है इ ई म ऐन म भा आ भा ऐन्स्मि नि ऐसा ए स चत्र म भा आ भा चइत्त नि चन अई आई म याहग म भा आ भा जानिस्म जाइस्स हि जमा

प्र हिन्दी भाषा म स्वतन्त्र रूपण इस वण का प्रयोग शब्दादि म एव मध्य जन शब्दादि एव मध्य म होता है। अन्त्य म क शब्द को छोडकर अन्यत्र प्रयोग नही होता।

आदि	मध्य	अन्त्य
एम	विपला	क

ए — ऐ ऋ — प्रा भा आ भा काल म सस्कतज्ञों न ए ए के दीघ एव प्लुत भेद ही स्वीकार किय। म भा आ भा काल म पालि भाषाविदो न इस मूल रूप स्वरो में परिगणित किया एव इस ए का ह्रस्व रूप माना। प्रा

अप काल म भी यह ह्रस्व स्वर था। हिन्दी भाषा में यह स्वर अंग्रेजी के Cat (कैट) Rat (रैट) शब्दों में ऐं ध्वनि की भांति उच्चारित होता है।

लक्षण हिन्दी भाषा म यह वर्ण ध्वनि अग्र अर्द्ध विवत एवं ह्रस्व है। इसके उच्चारण में जह्वा का अग्र भाग उठता है एवं होठ मुख द्वार के दोनों ओर ए के उच्चारण की अपेक्षा अधिक फैलते हैं। अ की अपेक्षा इसका उच्चारण म मुख विवर अधिक खुलता है एवं होठ अधिक फैलजाते हैं।

उ एव वि हिन्दी भाषा म इस ध्वनि का विकास संस्कृत के ऐ अई, आइ अय, आदि से हुआ है यथा म खदिर म भा भा खइर - मैर आदि।

प्र स्वतन्त्ररूप स शब्दादि में एव व्यंजनाधीन होकर इस वर्ण का प्रयोग शब्दादि में ही होता है - एगावन, पैर आदि।

ऐ - ए न वैदिक एव लौकिक संस्कृत काल म इसे संयुक्त स्वर माना गया। लौकिक संस्कृत काल म आचार्य पाणिनि ने इसे दीर्घ मूल स्वर (ए आइ) माना एव अचों के अन्तर्गत इसके बारह भेद किए। उच्चारण स्थान एव प्रयत्न की दृष्टि से इसे कण्ठोष्ठ्य एव विवत माना।[1] म भा भा काल म यह वर्ण मूल स्वर के अन्तर्गत ही परिगणित किया गया। पालि भाषाविदों ने इसे इस प्रधान स्वरों म परिगणित किया। प्रा एव अप म भी यही स्थिति रही। हिन्दी भाषा म यह मूल स्वर है।

लक्षण हिन्दी भाषा म यह वर्ण अर्द्ध संवृत पश्च वर्तुलाकार दीर्घ मूल स्वर है। इसके उच्चारण म जिह्वा का पश्च भाग ऊपर उठता है एवं होठ गोलाकार हो जाते हैं।

उ एव वि क्रम इस वर्ण का उद्भव एवं विकास म के उ ऊ आ औ एवं अउ वर्णों से हुआ है यथा उ - म कुक्षि म भा भा कुक्खि, हि कोख, ऊ म मूल्य म भा भा मुल्ल हि - मोल ओ म ओष्ठ म भा भा ओट्ठ हि होठ औ म मौक्तिक म भा भा मोत्तिअ हि मोती गोरी गोरा - गोरी अव से अवश्याय म भा भा ओस्सा हि ओस

---

1 ओदौतौ कण्ठोष्ठ्यम् १/१/६ वार्तिक

प्रयोग— हि॒न्दी भाषा म इसका प्रयोग स्वतत्र रूप से शब्दादि म एव व्यजन सहित शब्द के आदि, मध्य एव अन्त्य म होता है यथा

आदि	मध्य	अन्त्य
आज	तोल	माधो
ओस	मोल	रासो

औ ऐ क वदिक काल म इसे सयुक्त वण (आ+उ) माना गया। लौकिक सस्कत काल म इसे मूल दीध एव सयुक्त स्वर माना गया। आचाय पाणिनि ने ऐ औच सूत्र देकर इसे मूल स्वर बताया एव मात्रा काल (दीध प्लुल), उदात्त, अनुदात्त एव स्वरित तथा अनुनासिकता एव अननुनासिकता के आधार पर इसके बारह भेद किए एव उच्चारण स्थान एव प्रयत्न की दृष्टि से इसे ओ की भाति कण्ठोष्ठय एव विवत माना।[1] म भा आ भा काल म यह मूल स्वर नही रहा इसका पयवसान ओ म होगया। पालि वैयाकरणो ने इसे दस प्रधान स्वरो मे परिगणित नहीं किया।[2] वररुचि ने औ को ओ म परिणित बताया।[3] अप काल म भी यही स्थिति रही। हिन्दी भाषा म यह मूलस्वर ही है यद्यपि कुछ हिन्दी भाषाविदो ने इसे सयुक्त, कुछ ने मूल एव कुछ ने सयुक्त एव मूल माना है।

लक्षण-- हिन्दी भाषा म यह वण ध्वनि अध विवत पश्च दीध है। इसके उच्चारण मे जिह्वा का पश्च भाग उठता है एव मुख द्वार खुलकर होठ आपस म टकराते है। इस दृष्टि से इसका उच्चारण आज भी कण्ठोष्ठ्य ही है

उ एव वि क्रम हिन्दी भाषा म इस वण का उ एव विकास सस्कत के उ ऊ ओ एव औ से हुआ है यथा औ स गौ म भा आ गव गो हि गौ स अप, अव स सपत्नी म भा आ सवत्त, सउत्त हि सौत

प्रयोग — हिन्दी भाषा म इसका प्रयोग स्वतः है। तत्सम शब्दो मे स्वतत्र रूप से एव व्यजनाधीन होकर इसका प्रयोग शब्दादि एव मध्य म होता है तद्भव शब्दो मे शब्दादि म ही इसका प्रयोगाधिक्य है

---

१ ओऔनो कण्ठोष्ठ्यम १/६ वार्तिक

२ वही पालि महाव्याकरण / द्रष्टव्य पूव पष्ठ का फुटनोट

३ औत ओत् वररुचि प्राकत प्रकाश १/४१

आदि	मध्य	अंत्य
ओर	ओर	गो
औरत	वोर	–

—ओ – प्र-वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत मे इसका उल्लेख नही मिलता। आचार्य पाणिनि ने 'ओ' को दीर्घ मूल स्वर ही माना है। म भा आ भा काल मे 'ओ' का ह्रस्व रूप ओ माना गया। पालि वैयाकरणो ने इसका उल्लेख किया है।[1] अप भ्रंश काल मे भी यही स्थिति रही। हिन्दी भाषा मे यह विकसित मूल स्वर है।

हिन्दी भाषा मे यह वर्ण ध्वनि अर्ध विवृत, पश्च स्वर है। इसके उच्चारण मे जिह्वा का पश्च भाग उठता है एवं मुख द्वार अ के उच्चारण से अधिक खुलता है एवं होठ अर्ध गोलाकार हो जाते है।

उ एवं वि — हिन्दी भाषा मे इसका उद्भव एवं विकास स ओ ओ अप अव मे हुआ है - स औ म भा आ भा पौर हि पौर इउ स जतुगृह म भा आ भा जउधर, जउहर हि जौहर

स्वतंत्र रूपेण एवं व्यंजनाधीन होकर इस ध्वनि का प्रयोग शब्दादि मे ही होता है।

— हिन्दी भाषा म उपर्युक्त सभी स्वर ध्वनियो के अनुनासिक एवं अननुनासिक—दो भेद हैं।

सुविधा हेतु स्पष्टता हेतु एवं ऋजुता हेतु हम उपर्युक्त स्वर ध्वनियो को ऐतिहासिक काल क्रमानुसार तालिका रूप म प्रस्तुत कर रहे है —

१ प्रा भा आ भा काल

सस्कृत स्वर ध्वनिया

मात्राकाल अनुनासिकता एवं उदात्तादि के आधार पर अच् (स्वर) भेद—

---

१ पालि महाव्याकरण मोग्गलान प-/१

	ह्रस्व भेद		दीर्घ भेद		प्लुत भेद	
	अ इ उ ऋ ल अइउण ऋ लृ क		अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ एओङ ऐऔच		अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ	
१	उदात्त	अनुदात्त	उदात्त	अनुदात्त	उदात्त	अनुदात्त
२	उदात्त	अननुदात्त	उदात्त	अननुदात्त	उदात्त	अननुदात्त
३	अनुदात्त	अनुदात्त	अनुदात्त	अनुदात्त	अनुदात्त	अनुदात्त
४	अनुदात्त	अननुदात्त	अनुदात्त	अननुदात्त	अनुदात्त	अननुदात्त
५	स्वरित	अनुदात्त	स्वरित	अनुदात्त	स्वरित	अनुदात्त
६	स्वरित	अननुदात्त	स्वरित	अननुदात्त	स्वरित	अननुदात्त

यत्न के आधार पर अच (स्वर) भेद—

विवत	सवत
अ इ उ ऋ ल ए ओ ऐ औ	ह्रस्व (अ) प्रयोग के आधार पर

म भा भा भा भान

पालि - प्राकृत मपभ्रंश स्वर ध्वनियाँ

म भा भा भा काल म उपयुक्त दुरूह अच् (स्वर) वर्गीकरण नहीं रहा। ए 'ओ' के ह्रस्व रूप भी मान गये। ए' औ' ध्वनियाँ नहीं रही।

मा भा मा भा भान

हिन्दी

१ १ १ विशिष्ट स्वर परिवर्तन नियम—

भारतीय आर्य भाषाओं में काल विशेषानुरूप स्वर परिवर्तन के विशिष्ट नियम रहे हैं। उदाहरणतया संस्कृत काल में इ उ ऋ लृ का क्रमशः ए ओ अर अल ए, ओ ऋ का क्रमशः ए ओ आर में परिवर्तन विशेष परिस्थितियों में होना लक्षित होता है। मध्य आर्य भा काल में भी स्वरों में नियमतः परिवर्तन हुआ। भारतीय आर्य भाषाओं की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि उनमें स्वरों का परिवर्तन स्वरों में ही हुआ। हेमचन्द्र ने 'स्व राणां स्वराः प्रायोपभ्रंशे' सूत्र में इसका उल्लेख किया है। हिन्दी भाषा में भी कुछ स्वरों का नियमतः परिवर्तन हुआ है। यहाँ हम उनका उल्लेख कर रहे हैं—

१ क्षतिपूरक दीर्घीकरण नियम—

संस्कृत भाषा के संयुक्त व्यंजन म भा आ काल में द्वित्व में परिवर्तित हुए। हिन्दी भाषा में द्वित्व वर्णों में एक ही वर्ण रहा एवं उस लुप्त वर्ण की क्षति पूर्ति हेतु पूर्व ह्रस्व स्वर दीर्घ हो गया अ—आ स कर्म म भा आ भा कम्म हि काम म अद्य म भा आ भा अज्ज हि आज इ—ई स इक्षु म भा आ भा इक्खु हि ईख उ—ऊ स दुग्ध म भा आ भा दुद्ध हि दूध

१ हेमचन्द्र ४/ ३९

२ सयुक्त स्वरों का मूल स्वरो म परिवतन–

म भा ग्रा भा काल में सस्कत के ग्रसयुक्त ाब्द मध्यग क, ग च, ज त द, प, य व प्राय लुप्त हो गये थे। एव 'ग्र' ग्रवशिष्ट बचा । परिणामत ग्रनेक स्वर पास पास ग्रागये एव हिन्दी भाषा मे स्वर सयोग एव सयुक्त स्वर मूल स्वर में परिवर्तित हो गये यथा– ग्रई, ग्राई –ए ऐ ग्रउ ग्राऊ –ग्रो ,ग्रौ ग्रय–ए ग्रव–ग्रो।

१ १२ स्वर संयोग–

सस्कत भाषा म स्वर सयोग की प्रवृत्ति नही थी। म भा ग्रा भा काल मे शब्द मध्यग ग्रसयुक्त ग्रल्पप्राण ध्वनियो के लुप्त होने पर स्वर सयोग का विशेष प्रवति दृष्टिगत होती है। हिन्दी भाषा मे भी स्वर सयोग विशेष रूपेण दृष्टिगत होता है। हिन्दी भाषा म दो एव तीन स्वर-सयोगो का बाहुल्य है एव ग्रपवादत चार स्वर-सयोग भी उपलब्ध होत हैं। हिन्दी भाषा मे उपलब्ध स्वर सयोगो को तालिका रूप मे हम यहा प्रस्तुत कर रहे हैं–

स्वर - सयोग तालिका

	ग्र	ग्रा	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ग्रो	ग्रौ
ग्र	×				X			×	Y	×
ग्र	×				×			×		×
इ	×		Y	X	X	X		×		×
ई	×		X	X	X	X		×		×
उ	×				×	X		×	\	×
ऊ	×		×		×	×		×	×	×
ए	×		×		×	≻	×	×		X
ऐ	×		×	×	X	×	×	×		≺
ग्रो	×									
ग्रौ	×		×	×	×		×	×		

उपयुक्त तालिका के आधार पर हिन्दी भाषा म स्वर सयोग के सम्ब ध म निम्नलिखित नियम निर्धारित किय जा सकत हैं —

१ ह्रस्व स्वरो (अ+अ उ+उ इ+इ) का सयोग नही होता ।

२ ह्रस्व+दीर्घ (इ+ई उ+ऊ) स्वरो का सयोग नही होता । अपवादत अ+आ/गआ—गया उदाहरण उपलब्ध होता है ।

३ दो स्वरो का सयोग शब्द की प्रत्यक स्थिति म होता है परन्तु तीन स्वरो का सयोग शब्द मध्य म ही होता है ।

उपयुक्त तालिकानुरूप स्वर सयोगो के उदाहरण इस प्रकार हैं — अआ गआ—गया अउ-गउ अए गए आआ आया आई—भाई आऊ खाऊ आए-लाए आओ-गाओ इआ दिआ इए दिए इओ जिओ उआ-कछआ उई सुई उए छुए कछुवे एआ मेआ — मेवा एई-भई एओ मेओ ओआ खोआ ओई कोई आए धोए ।

१ २ व्यजन ध्वनिया

ए त प्रा भा आ भा काल म कुल कितनी व्यजन ध्वनिया थी निर्णयात्मक रूप से नही कहा जा सकता । सभी अद्यावधि के शोध क आधार पर वदिक काल म क्षत्राय भेदो सहित कुल ४९ यजन ध्वनिया थी परन्तु मक डानल क अनुसार ३८ एव डा० भोलानाथ के अनुसार कुल ४१ व्यजन ध्वनिया वदिक काल म थी । मेरी मा यता का आधार ना वानिक प्रामाणिक याकरणिक ग्र थ तत्तरीय प्रातिशाख्य है । उसम गइसठ वा चौसठ वदिक ध्वनियो का उल्लेख है ।[1] यदि नौ मूल स्वरो ४ सयुक्त स्वरो निगृहीत (अनुस्वार) एव विसग को निकाल दिया जाय तो ४९ व्यजन ध्वनिया ही अवशिष्ट रहती हैं । लौकिक सस्कृत के साहित्यिक रूप म ल लह ढ ढह यजन ध्वनिया नहीं थी यद्यपि यावहारिक सस्कृत मे ये व्यजन अवश्य थे क्योकि पालि काल म इन ध्वनियो का प्राचुर्य है एव अद्यावधि भी राजस्थानी म य ध्वनिया बहुलता से प्रयुक्त होती हैं । लौकिक सस्कृत काल म आचार्य पाणिनि के अनुसार २५ स्पश (पच वग) ४ उष्म (स श ष ह) दो जिह्वामूलीय (क ख) दो उपध्मानीय (प फ) चार अ तस्थ (य व र ल) कुल ३७ व्यजन ध्वनिया थी । पालि काल म ल लह ढ ढह यजन ध्वनिया भी थी । पालि भाषाविदो ने कुल

---

१ द्रष्टव्य स्वर ध्वनिया की पादटिप्पणी

ध्वनियों की संख्या ४३ एवं व्यजनों की संख्या ३३ बताई ।[1] म भा आ भा काल मे प्रा एव अप काल मे भी इतनी ही व्यजन ध्वनियां थी । हिन्दी भाषा मे कुल ३५ व्यजन ध्वनियां है जिनकी सूची पहले दी जा चुकी है । यहां इन व्यंजन ध्वनियों का वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है—
कोमल तालव्य स्पर्श क ख ग घ ङ क-ऐ क प्रा भा आ भा काल मे संस्कृत भाषाविदो ने इस व्यजन का उच्चारण स्थान कण्ठय एव आभ्यन्तर यत्न स्पष्ट माना[2] एव बाह्य यत्न के आधार पर इस व्यजन को विवार[3] श्वास[4] अघोष[5] अल्पप्राण[6] माना । म आ भा काल म पालि, प्रा० एव अप भाषाविदो ने संस्कृतज्ञो का ही अनुसरण किया । प्रा एव अप काल मे शब्द मध्य मे इस व्यजन का प्रयोग नही होता था ।

स हिन्दी भाषा मे यह व्यजन कोमल तालव्य अघोष अल्पप्राण स्पर्श है । इसके उच्चारण म जिह्वा का पश्च भाग कोमल तालव्य का स्पर्श करता है ।
उ: एव वि — हिन्दी भाषा मे इसका उद्भव एव विकास संस्कृत के क, स्क, एव अन्त्य क् युक्त संयुक्त व्यजनो से हुआ है — क्— आदि स कण म भा

१ अआदयोतितालीस वर्णा १।१ कादयो व्यजना १।६
२ अकुहविसर्जनीयाना कण्ठ । तत्र स्पष्ट स्पर्शाना । कादयोमावसाना स्पर्शा १।१।६।
३ विवार— खरो विवारा - खर वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर तथा श ष् स् का विवार प्रयत्न है १।१।६ वार्तिक । — जिसके उच्चारण म स्वरतन्त्री का मुह खुला रहता है उनका प्रयत्न संस्कृतज्ञो के अनुसार विवार है ।
४ श्वास — श्वास वर्णो के उच्चारण म वायु स्वरयन्त्री मे झकार किये बिना ही बाहर आती हैं ।
५ अघोष — अघोष वर्गों के उच्चारण म गूज नहीं होती ।
६ अल्पप्राण — वर्गों के प्रथम, तृतीय पचम एव य, व, र, ल अल्पप्राण है । वर्गाणाप्रथमतृतीय पञ्चमायणश्चाल्पप्राणा — इन वर्णो के उच्चारण मे अल्प वायु का प्रयोग होता है ।

ग्रा भा कण्ण हि कान मध्य स मकटिका म भा ग्रा भा मक्कडिग्रा हि मक्डी ग्रन्य स ग्रक म भा ग्रा भा ग्रक्क हि ग्राक
प्र हिन्दी भाषा म इसका प्रयोग शब्दादि, मध्य एव ग्रन्त्य मे होता है —

ग्रादि	मध्य	ग्रन्त्य
कबूतर	तक्ली	नाक
ककडी	तक्दीर	पचक

ख— ऐ क्र — प्रा भा ग्रा भा काल मे यह व्यजन कण्ठ्य, विवार, श्वास ग्रघोष महाप्राण[1] स्पश था। म भा ग्रा भा काल मे भी इस ध्वनि की यही स्थिति रही। यहा यह उल्लेख्य है कि म भा ग्रा भा काल म शब्द मध्य म यह ध्वनि 'ह' मे परिवर्तित हो गई थी।[2]

ल हिन्दी भाषा म यह ध्वनि कोमल तालव्य ग्रघोष महाप्राण स्पश है।

उ एव वि — हिन्दी भाषा म इस ध्वनि का उदभव एव विकास सस्कत के ख, क्ष स्क ष्क क प वर्णो से हुग्रा है— ग्रादि-ख-स खट्वा म भा ग्रा भा खट्टा हि खाट क्ष स क्षेत्र म भा ग्रा भा खेत्त हि खेत स्क म स्कभ म भा ग्रा भा खम्भ हि खम क - स कपर म भा ग्रा भा खप्पर हि खप्पर प स पटराग हि खटराग - मध्य ष्क - स पुष्कर म भा ग्रा भा पुक्खर हि पोखर।

प्र इसका प्रयोग शब्दादि मध्य एव ग्रन्त्य म होता है—

ग्रादि	मध्य	ग्रन्त्य
खरबूजा	रखवाला	राख्
खाल	रखेल	ग्राख्

ग्— ऐ क्र प्रा भा ग्रा भा काल म इस व्यजन का उच्चारण स्थान

१ वर्गाणा द्वितीयचतुथ शलश्च महाप्राणा । महाप्राण— जिन वर्णो के उच्चारण में ग्रधिक वायु का उपयोग होता है महाप्राण कहलाते हैं । १।१।६
२ खघथधफभा ह २।२७ वररुचि प्राकृत प्रकास

कण्ठय आभ्यन्तर यत्न स्पष्ट, बाह्य यत्न सवार नाद घोष एव अल्प प्राण था। म भा भा काल म भी यही स्थिति रही।

ल हिन्दी भाषा म यह ध्वनि कोमल तालव्य घोष अल्पप्राण स्पश है।

उ एव वि – इस व्यजन का उदभव एव विकास सस्कृत के क ग् एव ग युक्त सयुक्त व्यजनो मे हुआ है। आदि क स कन्दुक म भा आ भा गेंदुअ हि गेंद ग् म गुजर म भा आ भा गुज्जर हि गूजर अ स ग्राम म भा आ भा गाव हि गाव मध्य म एकादश म भा आ भा एगारह हि ग्यारह म फाल्गुन म भा आ भा फग्गुण हि फागुन स गगर म भा आ भा गग्गर हि गागर अन्त्य - स अग्नि म भा आ भा अग्गि हि आग

प्र हिन्दी भाषा मे इसका प्रयोग शब्दादि मध्य एव अन्त्य मे होता है –

आदि	मध्य	अन्त्य
गधा	डगर	राग
गाव	मगरमच्छ	आग

घ् – ग्र प्रा भा आ भा काल मे सस्कृत भाषाविदो ने इस उच्चारण स्थान की दृष्टी मे कण्ठय बाह्य यत्न की दृष्टि स स्पष्ट आभ्य तर यत्न की दृष्टि से सवार नाद घोष महाप्राण माना। म भा आ भा काल मे भी यही स्थिति रही।

ल हिन्दी भाषा मे यह व्यजन कोमल तालव्य कण्ठय घोष महाप्राण स्पश है।

उ एव वि - इस व्यजन का उद्भव एव विकास सस्कृत के ग घ एव घ् युक्त सयुक्त वर्णो से हुआ है – आदि ग् स गृह म भा आ भा घर हि घर घ स घत म भा आ भा घिअ हि घी घ्र स घ्राणिका म भा आ भा घाणिआ हि घाणी—घानी मध्य स सघन म भा आ भा सहन हि सघन अन्त्य स व्याघ्र म भा आ भा वग्घ हि बाघ

प्र हिन्दी भाषा म इसका प्रयोग शब्दादि मध्य एव अन्त्य म होता है –

आदि	मध्य	अन्त्य
घर	सघन	बाघ
घातक	चिंघाड	जाघ

ङ् - ग्र प्रा भा आ भा काल म यह व्यजन कण्ठय सवार नाद घोष,

ल्पप्राण नासिक्य[1] स्पर्श था । म भा आ भा काल मे भी यही स्थिति
ही ।
हिन्दी भाषा मे यह व्यजन कण्ठ्य, कोमल तालव्य, घोष अल्पप्राण नासिक्य
पर्श है ।
उद्भव एव वि —हिन्दी भाषा मे इस व्यजन का उद्भव एव विकास सस्कृत के
न वर्णो से हुआ है—स वाङ्मय हि वाङ्मय स नग्न म भा आ भा
नग्ग हि नगा—नङ्गा
प्रयोग की दृष्टि से सस्कृत काल मे भी इसका अल्प प्रयोग था । शब्द मध्य
ही इसका प्रचलन था । कुछ अपवादो को छोडकर सस्कृत में भी शब्दादि
एव अन्त्य म इसके उदाहरण उपलब्ध नही होते । परिनिष्ठित हिन्दी भाषा मे भी
सम श ब्दावली मे ही शब्द मध्य म इसका प्रयोग उपल ध होता है ।
स्पर्श-सघर्षी तालव्य - च - छ - ज - झ ञ्—च्—ऐ क - प्रा भा आ भा
काल म इस व्यजन का उच्चारण स्थान तालव्य[2], आभ्यन्तर यत्न स्पष्ट, बाह्य
यत्न विवार, श्वास, अघोष अल्पप्राण था । म भा आ भा काल में भी यही
स्थिति थी ।
ल हिन्दी भाषा में यह व्यजन स्पर्श-सघर्षी तालव्य अघोष अल्पप्राण है ।
इसके उच्चारण मे जिह्वा का अग्र भाग कठोर तालव्य का स्पर्श करता है एव
वायु कुछ घर्षण के साथ बाहर निकलती है ।
उ एव वि हिन्दी भाषा मे इस वर्ण का उद्भव और विकास सस्कृत के च
एव त्य सयुक्त वर्ण से हुआ है - आदि च स चित्रक म भा आ भा चित्तअ
हि चीता मध्य - अन्त्य त्य - स नृत्य म भा आ भा नच्च, णच्च हि नाच
कृत्यगृहिका म भा आ भा कच्चहरिआ हि कचहरी—
हिन्दी भाषा में इस व्यजन का प्रयोग शब्दादि मध्य एव अन्त्य मे होता है—

[1] नासिक्य मुखनासिकावचनोऽनुनासिक १।१।८
मुख एव नासिका दोनो के सयोग से बोला जाने वाला वर्ण अनुनासिक है ।
वमङणनाना नासिकाच ञ् म् ङ् ण् न् नासिक्य व्यजन हैं ।
[2] अगले पृष्ठ पर पाद टिप्पणी देखिये ।

आदि	मध्य	अन्त्य
चरखा	विचार	सोच
चोर	प्रचार	सच्

छ ऐ क- प्रा भा आ भा काल मे यह व्यजन तालव्य, स्पष्ट विवार, श्वास अघोष, महाप्राण स्पर्श था। म भा आ भा काल म सभवत यह व्यजन सघर्षी हो गया था, यद्यपि इसका शास्त्र प्रमाण उपलब्ध नही होता।

ख हिन्दी भाषा मे यह व्यजन स्पर्श सघर्षी तालव्य, अघोष महाप्राण। है इसके उच्चारण मे जिह वा कठोर तालव्य का स्पर्श करती है तब वायु घषण करती हुई 'च' की अपेक्षा अधिक परिमाण म बाहर निकलती है।

ग एव वि हिन्दी भाषा मे इस व्यजन का उदभव और विकास सस्कत के छ ष्, श्, क्ष, थ्य,[1] श्च त्स एव छ युक्त सयुक्त व्यजनो स हुआ है— आदि छ स छत्र म भा आ भा छत्तअ हि छाता, ष स षट म भा आ भा छह हि छह श स शकटक म भा आ भा छकडअ हि छकडा क्ष-स क्षुरक म भा आ भा छुरअ हि छुरा, मध्य श्च स वश्चिक म भा आ भा बिच्छुअ हि बिच्छू त्स्य-स मत्स्य म भा आ भा मच्छ हि मछ+ली अन्त्य च्छ स पुच्छ म भा आ भा पुच्छ हि पूछ्।

घ हिन्दी भाषा मे इसका प्रयोग शब्दादि, मध्य एव अन्त्य मे होता है—

आदि	मध्य	अन्त्य
छवि	बिच्छू	पूछ
छकडा	बछडा	मूछ

---

२ इचुयशाना तालु १।१।८ वार्तिक

म भा आ भा काल म त्य थ्य, द्य, ध्य सयुक्त वर्ण का परिवर्तन चू छ्ज ज्झ मे हो गया था। वररुचि ने प्राकृत प्रकाश म त्य थ्य द्य ध्या च छ जा ३।१८' सूत्र मे इस प्रवृत्ति का उल्लेख किया है। हिन्दी म च्च' द्वित्व भग्न होने एक ही ज् अवशिष्ट रहा।

ज ने क—प्रा भा आ भा काल म यह व्यजन तालव्य, स्पष्ट सवार, नाद, घोष अल्पप्राण था। म भा आ भा मे इस व्यजन की यही स्थिति रही। ल हिन्दी भाषा मे यह व्यजन स्पश-सघर्षी तालव्य, घोष अल्पप्राण है। इसके उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग कठोर तालव्य का स्पश करता है एव वायु सवत घषण करती हुई बाहर निकल जाती है।

उ एव वि हिन्दी भाषा म इस व्यजन का उदभव एव विकास सस्कृत क न य एव द्य स हुआ है– आदि ज् म जिह्वा म भा आ भा जिन्भा, जीहो हि जीभ य¹ स यव म भा आ भा जव हि जौ द्य² म द्यूत म भा आ भा जूअ हि जूआ मध्य द्य म विद्युत म भा आ भा विज्जु हि बिजली अन्त्य म लज्जा म भा आ भा लज्जा हि लाज

प्र हिन्दी भाषा मे इस वण का प्रयोग शब्दादि मध्य एव अन्त्य म होता है—

आदि	मध्य	अन्त्य
जगत	रजत	खाज्
जगदीश	विजय	लाज

भ् ए क - प्रा भा आ भा काल म यह व्यजन तालव्य स्पष्ट सवार नाद घोष, महाप्राण था। म भा आ भा काल म भी इसकी यही स्थिति थी।

न हिन्दी भाषा म यह व्यजन स्पश-सघर्षी तालव्य घोष महाप्राण है। इसके उच्चारण मे जिह्वा का अग्र भाग कठोर तालव्य का स्पश करता है एव ज की अपेक्षा वायु अधिक घषण करती हुई मुखद्वार स बाहर निकल जाती है।

१ म भा आ भा म सस्कृत क शब्दादि म यकार को जकार हो गया था। वररुचि न 'आदर्योज' २।३२ सूत्र म इसका उल्लख किया है

२ म भा आ भा काल म द्य ज म परिवर्तित हो गया था देखिए पूव की पाद टिप्पणी।

उ एव वि हिन्दी भाषा म इस व्यजन का उद्भव एव विकास सस्कृत के झ एव ध्य सयुक्त वर्णों से हुआ है । कुछ भाषाविदों का मन्तव्य है कि सस्कृत काल मे यह ध्वनि मूल रूप म अत्यल्प थी प्राकृत प्रभाव से सस्कृत मे झ युक्त वण आए। मेरी मान्यता में यह विचारधारा सगत नही। वदिक एव लौकिक सस्कृत मे इस व्यजन के अनक उदाहरण मिलते है यथा झटिति, झकार, झाझा, झिल्ली (झींगुर दीपक वर्तिका) म भा आ भा काल म इस वण के अधिक शब्द मिलने का मूलकारण ध्य सयुक्त वण का बलाघात के कारण 'झ' म परिवर्तित होना है। आदि भ स झभा म भा आ भा झभा हि झभा, ध्य - स सध्या म भा या भा सझा हि साझ स वन्ध्या न भा आ भा वभा हि वाझ

प्र हिन्दी भाषा मे इस व्यजन का प्रयोग शब्दादि मध्य एव अन्त्य में होता है। परिमाणत अन्य व्यजनो की अपेक्षा झ युक्त वण कम हैं।

आदि	मध्य	अन्त्य
झालर	झाझर	बाझ
झकार	झोझा	साझ

ञ्– ऐ क – प्रा भा काल म यह व्यजन ताल य घोष, स्पष्ट नासिक्य अल्पप्राण था। म भा आ भा काल म भी इसकी यही स्थिति थी।

ल हिन्दी भाषा मे यह व्यजन तालव्य घोष अल्पप्राण नासिक्य स्पश है।

उ एव वि हिन्दी भाषा में इस व्यजन का उद्भव एव विकास सस्कृत के 'ञ एव न वर्णों से हुआ है।

प्र इस व्यजन का प्रयोग सस्कृत काल म हो शब्द मध्यग था। म भा आ भ काल मे यह अधिकाश शब्दो म अनुस्वार में परिवर्तित हो गया। हिन्दी भाषा मे यह व्यजन तत्सम शब्दावली मे ही प्रयुक्त होता है यथा पाञ्चजन्य प्राञ्जल।

मूर्धन्य व्यजन— ट–ठ–ड् ढ् ण्

ट्— ऐ क —प्रा भा ग्रा भा काल म यह व्यजन उच्चारण स्थान की दृष्टि से मूर्धन्य,[1] ग्राभ्यन्तर यत्न की दृष्टि से स्पृष्ट, बाह्य यत्न की दृष्टि से विवार श्वास अघोष अल्पप्राण था। म भा ग्रा भा काल में भी यही स्थिति रही।

ल—हिन्दी भाषा म यह यजन मूर्धन्य अघोष, अल्पप्राण स्पर्श है। इसके उच्चारण म जिह्वा प्रतिवेष्ठित होकर मूर्धा का स्पर्श करती है।

उ एव वि—हिन्दी भाषा म इस वर्ण का उद्भव एव विकास सस्कृत के ट त एव त्+र (त्र) वर्णों से हुआ है। कुछ भाषाविदो की मान्यता है कि वैदिक काल में मूर्धन्य ध्वनिया नही थी। ग्रार्यो के द्रविडो के सम्पर्क मे ग्राने से सस्कृत मे ये ध्वनिया ग्राई। पर यह धारणा सगत नही। वदिक सहिताग्रों मे इनके उदाहरण मिलते हैं एव प्रातिशाख्यों में इनका उल्लेख मिलता है।

ग्रादि ट—स टिट्टिभ म भा ग्रा भा टिट्टिह हि टिड्डी मध्य स कटक म भा ग्रा भा कडग्र कटग्र हि काटा त—स कर्तारिका म भा ग्रा भा कटारिग्रा हि कटारी स मत्तिका म भा ग्रा भा मिट्टिग्रा हि मिट्टी ग्रन्त्य स त्रुट म भा ग्रा भा टुट्ट हि टूट।

प्र हिन्दी भाषा में इसका प्रयोग शब्दादि मध्य एव ग्रन्त्य म होता है—

ग्रादि	मध्य	ग्रन्त्य
टीला	काटा	लूट
टिड्डा	ग्राटा	पेट

ठ— ए क — प्रा भा ग्रा भा काल म यह व्यजन मूर्धन्य स्पृष्ट विवार श्वास ग्रघोष महाप्राण था। म भा ग्रा भा काल म भी यही स्थिति रही।

ल हिन्दी भाषा म यह व्यजन मूर्धन्य ग्रघोष महाप्राण है। इसके उच्चारण म जिह्वा कुछ मुडकर कठोर तालु य का स्पर्श करती है एव ट की ग्रपेक्षा ग्रधिक वायु बाहर निकलती है।

---

१ ऋटुरषाणां मूर्धा १।१।८। वार्तिक - ऋ टवर्ग, र् एव ष का मूर्धा स्थान है।

उ एव वि — हिंदी भाषा म इस व्यजन का उदभव एव विकास सस्कत ठ स्थ ष्ट ष्ट एव थ वर्णो से हुआ है आदि–स स्थग म भा आ ठग हि ठ मध्य ष्टौ–स यष्टि म भा आ भा लठठी हि लाठी ष्ठ– स अगुष्ठ म भ आ भा अगुठठ हि अगूठा अन्त्य थ स ग्रथि म भा आ भा गण्ठि हि गोठ ठ स कण्ठ म भा आ भा कण्ठ हि कठ

प्र हिन्दी भाषा मे इसका प्रयोग श दादि मध्य एव अन्त्य मे होता है—

आदि	मध्य	अन्त्य
ठाकुर	पठान	पाठ
ठडा	पठार	ठाठ

ड ऐ क्र—प्रा भा आ भा काल म यह व्यजन मूध य, स्पष्ट सवार नाद घोष अल्पप्राण था। म भा काल मे भी इसकी यही स्थिति रही

ल हिन्दी भाषा मे यह व्यजन मूध य घोष अल्पप्राण है। इसके उच्चारण में जिह्वा परिवेष्टित होकर कठोर ताल य का स्पश करती है एव ट की अपेक्षा वायु कम परिमाण म बाहर निकलती है

उ एव वि — हिंदी भाषा म इसका उदभव एव विकास सस्क के ड ट द वर्णो से हुआ है आदि ड म डाकिनी म भा आ भा डाइन हि डायन द स दभ म भा आ भा डम्भ हि डाभ स निडर म भा आ भा निडर हि निडर स ट[2] स कटाह म भा आ भा कडाह हि कडाह अन्त्य स दण्डक म भा आ भा डडअ हि डडा

प्र हिन्दी भाषा मे इसका प्रयोग शब्दादि, मध्य एव अन्त्य मे होता है

आदि	मध्य	अन्त्य
डमरू	निडर	डाड
डाकू	अडिग	खड

१ म भा आ भा काल म शब्द मध्यग ष्ट सयुक्त वण ठ मे परिवर्तित हो गया था। वररुचि ने ष्टस्य ठ ३।११ सूत्र म इस प्रवति का उल्लेख किया है।

२ म भा आ भा काल म शब्द मध्यग ट ड म परिवर्तित हो गया था वररुचि ने टोड' २।२१ सूत्र म इसका उल्लेख किया है।

ढ - ऐ क्रो - सस्कत काल में यह व्यजन मूध य, स्पष्ट सवार नाद, घोष, महा,
प्राण था। म भा भा भा काल में भी यही स्थिति रही।
ल हिन्दी भाषा म यह व्यजन मूर्धन्य घोष महाप्राण स्पश है। इसके उच्चा
रण में जिह्वा परिवेष्ठित होकर मूर्धा का स्पश करती है।
उ एव वि — हिन्दी भाषा में इसका उदभव एव विकास सस्कत के ढ ठ,
थ ध द्ध वर्णो स हुआ है - आदि ढ स ढाल हि ढाल थ - स शिथिल म भा
भा भा सिढिल, रिल्ल हि ढील / आ मध्य, थ स प्रथलतीय, म भा भा भा
अन्ढतिय, प्रढढइअ हि अढाई, द्ध - स वद्ध म भा भा भा बुढढम हि बुढढा
अन्त्य ठ[1] स पठ म भा भा भा पढ हि पढ
प्र हिन्दी भाषा म इस व्यजन का प्रयोग शब्दादि, मध्य एव अन्त्य मे होता
है—

आदि	मध्य	अन्त्य
ढक्कन	दाढ़ी	बाढ़
ढाल	बढ़ब	डेढ़

ण् — ऐ क्र प्रा भा भा भा काल मे यह व्यजन मूर्धन्य स्पष्ट, सवार, नाद,
घोष अल्पप्राण नासिक्य स्पश था। म भा भा भा काल मे भी - यही स्थिति
रही।
ल हिन्दी भाषा म यह व्यजन मूर्धन्य घोष, अल्पप्राण नासिक्य स्पश है।
डा वर्मा एव तिवाडी सयुक्त रूप म इस ध्वनि का न् की सध्वनि एव भोलानाथ
इसे सयुक्त रूप म न् की सध्वनि एव स्वतत्र रूप म ड़ या इसक समीप मानत है पर
मेरी मान्यता म सयुक्त रूप म यह न् की सध्वनि न होकर ण् की ही सध्वनि है।
उदाहरणतया शान्ति एव अण्डा शब्दो का उच्चारण कर इस तथ्य की पुष्टि की
जा सकती है। स्वतत्र रूप म यह व्यजन ड़ क समीप न होकर ध्वनिग्रामिक
अस्तित्व रखता है।

---

1 प्राकृत काल म अनादि 'ठ' ध्वनि ढ म परिवर्तित हो गई थी।
वररुचि न ठोऽढ २।२५ — सूत्र में इसका उल्लख किया है।

प्र हिन्दी भाषा मे ये दोनो व्यजन शब्दादि में प्रयुक्त नहीं होते। शब्द के मध्य एव अन्त्य मे ही प्रयुक्त होते है।

मध्य	अन्त्य
लडका	किवाड
बूढा	गढा

दन्त्य व्यजन– त्–थ–द्–ध्–न् त–ऐ न–प्रा भा प्रा भा काल में सस्कृत भाषाविदों ने इस उच्चारण स्थान की दृष्टि से दन्त्य,[1] प्राभ्यन्तर यत्न की दृष्टि से स्पृष्ट, बाह्य यत्न की दृष्टि से विवार, श्वास, अघोष अल्पप्राण स्पर्श माना। म भा प्रा भा काल में भी यही स्थिति रही।

त हिन्दी भाषा म यह व्यजन दन्त्य, अघोष अल्पप्राण स्पर्श है। इसके उच्चारण म जिह्वा का अग्रभाग ऊपरी दांतों के भीतरी भाग का स्पर्श करता है।

उ एव वि —इस व्यजन का उद्भव एव विकास सस्कृत के त्–त्र वर्णो स हुआ है—आदि त् स तल म भा प्रा भा तेल हि तेल, स तीक्ष्ण म भा प्रा भा तिक्ख हि तीखा त्र स त्रयोदश म भा प्रा भा तेरह हि तेरह मध्य त्य स आदित्यवार म भा प्रा भा आइत्तवार हि इतवार अन्त्य म पुत्र म भा प्रा भा पुत्त हि पूत

प्र हिन्दी भाषा मे इसका प्रयोग शब्दादि मध्य एव अन्त्य में होता है—

आदि	मध्य	अन्त्य
तोता	इतवार	रात
तालाब	पतवार	बात

थ–ऐ न–प्रा भा प्रा भा काल म यह व्यजन दन्त्य, स्पृष्ट विवार श्वास अघोष महाप्राण स्पर्श था। म भा प्रा भा काल म भी यही स्थिति रही।

---

1 लृतुलसाना दन्ता अर्थात ल तवर्ग न एव स का दन्त्य स्थान है। वार्तिक ११।१६

ल हिन्दी भाषा मे यह व्यजन दन्त्य, अघोष, महाप्राण स्पर्श है।

उ एव वि—हिन्दी भाषा मे इस व्यजन का उदभव एव विकास सस्कृत के थ्, स्त,[1] स्थ वर्णो से हुआ है। आदि-स्थ—स स्थाल स्थाली म भा आ भा थाल, थाली हि थाल, थाली मध्य स्त—स हस्ती म भा आ भा हत्थी हि हाथी स प्रस्तर म भा आ भा पत्थर हि पत्थर अन्त्य म चतुर्थी म भा आ भा चउत्थ हि चौथ् / ई / आ। स पथ म भा आ भा पथ हि पथ।

प्र सस्कृत काल मे शब्दादि मे इसका प्रयोग अत्यल्प परिमाण मे उपलब्ध होता है। सस्कृत कोशकार वामन शिवराम आप्टे ने थ्' से आरम्भ होने वाले केवल सात ही शब्दों के उदाहरण दिए हैं। म भा आ भ काल में भी यही स्थिति रही। 'प्राकृत भाषाओ का रूप दर्शन' शीर्षक पुस्तक के लेखक आचार्य नरेन्द्र नाथ ने भी शब्द रूप सिद्धि मे केवल तीन ही 'थ' आदि वाले शब्दो की रूप सिद्धि बताई है। हिन्दी भाषा में सस्कृत एव म भा आ भा की अपेक्षा थ' आदि वाले शब्द अधिक मिलते हैं। इसका मूल कारण स्त 'स्थ का बलाघात के कारण 'थ में परिवर्तित होना है। शब्द मध्य एव अन्त्य मे बहुलता से इसके उदाहरण उपलब्ध होते हैं —

आदि	मध्य	अन्त्य
थाला	पत्थर	पथ
थकान	कथन	हाथ

द—ऐ क — सस्कृत काल मे यह व्यजन दन्त्य, स्पर्श सघोष नाद घोष अल्पप्राण था। म भा आ भा काल मे भी यही स्थिति रही।

ल हिन्दी भाषा मे यह व्यजन दन्त्य घोष अल्पप्राण स्पर्श है। इसके उच्चारण में जिह्वा का अग्र भाग ऊपरी दातो के पश्च भाग का स्पर्श करता है एव वायु थ' की अपेक्षा अल्प परिमाण मे बाहर निकलती है।

उ एव वि हिन्दी भाषा मे इस व्यजन का उदभव एव विकास सस्कृत के सयुक्त व असयुक्त द वर्ण से हुआ[3] — आदि—द स दर्दुर म भा आ भा दद्दुर हि दादुर मध्य स भाद्रपद म भा आ भा भाद्दवअ हि भादो अन्त्य— स चन्द्र म भा आ भा चन्द हि चाद

1 म भा आ भा काल मे स्त सयुक्त वर्ण बलाघात के कारण थ मे बदल गया था। वररुचि ने स्तस्य थ 3।13 सूत्र मे इसका उल्लेख किया है।

प्र हिन्दी भाषा में इसका प्रयोग शब्दादि मध्य एवं अन्त्य में होता है ।

आदि	मध्य	अन्त्य
देवता	दादुर	चांद
दाल	सादर	नींद

ध— ऐ म —प्रा भा आ भा काल में यह व्यंजन दन्त्य स्पष्ट, सघोष नाद घोष महाप्राण स्पर्श था । म भा आ भा काल में भी यही स्थिति रही ।

ल हिन्दी भाषा में यह व्यंजन दन्त्य घोष महाप्राण स्पर्श है ।

उ एवं वि — हिन्दी भाषा में इस व्यंजन का उदभव एवं विकास संस्कृत के असंयुक्त व संयुक्त ध व्यंजन से हुआ है आदि 'ध' स धनिक म भा आ भा धनिअ हि धनी मध्य—स अधक म भा आ भा अद्धअ हि आधा, स ग्रध्र म भा आ भा गिद्ध हि गीध ।

प्र हिन्दी भाषा में इसका प्रयोग शब्दादि, मध्य एवं अन्त्य में होता है—

आदि	मध्य	अन्त्य
धम	बधाई	दूध
धरनी	साधन	गीध

न— ऐ म प्रा भा आ भा काल में यह व्यंजन दन्त्य, स्पष्ट, सघोष, नाद घोष अल्पप्राण नासिक्य स्पर्श था । म भा आ भा काल में भी यही स्थिति रहा ।

ल हिन्दी भाषा में यह व्यंजन दन्त्य घोष, अल्पप्राण, नासिक्य स्पर्श है । इसके उच्चारण में जिह्वा का अग्र भाग ऊपरी दांतों के पश्च भाग का स्पर्श करता है एवं वायु मुख एवं नासिका के माध्यम से बाहर निकल जाती है ।

उ एवं वि इस व्यंजन का उदभव एवं विकास संस्कृत के न ण[1] ज्ञ वर्णों से हुआ है — आदि न स नारिकेल म भा आ भा णारिएल हि नारियल

---

१ प्राकृत काल में न ध्वनि ण् में परिवर्तित हो गई थी । वररुचि के अनुसार 'नोण सवत्र' अर्थात 'न सवत्र ण में परिवर्तित होता है । हिन्दी में ण पुन 'न' में परिवर्तित हुआ है ।

स नृत्य, म भा आ भा णच्च हि नाच, न' स ज्ञातिगह म भा आ भा णाइहर हि नहर मध्य स, चणक म भा, आ भा चणम्र हि चना अन्त्य — स कर्ण म, भा, आ भा कण्ण हि कान

प्र हि दी भाषा म इसका प्रयोग शब्दादि ' मध्य ऐव अन्त्य मे होता है—

आदि	मध्य	अन्त्य
नैहर	सुनार	पान
नदी	चना	कान

ह' — प्रा भा आ भा काल मे भाषाविदों ने इस व्यजन का उल्लख नही किया है। म भा आ भा काल मे शब्द मध्य म यद्यपि इसका प्रयोग बाहुल्य है पर भाषाशास्त्रीय ग्र थो मे स्वतत्र ध्वनिग्राम के रूप में इसका उल्लेख उपलब्ध नही होता।

ल हि दी भाषा मे यह व्यजन वर्त्स्य घोष महाप्राण स्पश है। वस्तु स्थिति मे यह व्यजन न का महाप्राण ध्वनिग्रामिक रूप है।

उ एव वि हिन्दी भाषा म इस व्यजन का उदभव एव विकास सस्कृत के 'ष्ण' सयुक्त व्यजन से हुआ है स कष्ण म भा आ भा कण्ह हि कान्ह।

प्र हि दी भाषा में इसका प्रयोग शब्द मध्य एव अन्त्य मे होता है—

मध्य	अन्त्य
उन्ह	चिन्ह

ओष्ठय स्पश प् फ ब भ म

प्— ऐ, क प्रा भा आ भा काल मे यह व्यजन ओष्ठय स्पष्ट, विवार श्वास अघोष अल्पप्राण स्पश था। म भा आ भा काल में भी यही स्थिति रही

ल हिन्दी भाषा मे यह व्यजन ओष्ठय अघोष अल्पप्राण स्पश है। इसके उच्चारण म दोनों होठ परस्पर टकराते हैं वायु का गतिरोध होता है एव वायु पुन बाहर निकलती है।

उ एव वि   हि दी भापा म इस व्यजन का उद्‌भव एव विकास असयुक्त एव सयुक्त 'प एव 'त्म' सयुक्त व्यजन स हुआ है—'प्' आदि स पपटिका म भा आ भा पप्पडिआ हि पपडी प मध्य स कपूर म भा आ भा कप्पूर हि कपूर प्प स पिप्पल म भा आ भा पिप्पल हि पीपल, त्म स आत्मन् म भा आ   भा अप्पण हि   अपना/अत्य आ म म भा आ भा अप्प हि आप स सप म भा आ भा सप्प हि साप

अ हिन्दी भापा मे इसका प्रयोग शब्दादि, मध्य एव अत्य म होता है—

आदि	मध्य	अत्य
पापन्	पपीह	ताप
पान	पापल	पाप्

फ – ऐ त – प्रा भा आ भा काल म यह व्यजन ओष्ठय [1] स्पृष्ट विवार, श्वास अघोष महाप्राण स्पश था। म भा आ भा काल म भी यही स्थिति रहा।

त हिन्दी भापा म यह व्यजन ओष्ठ्य अघोष महाप्राण स्पश है । इसके उच्चारण म मुखावयव की स्थिति प वत ही रहती है पर वायु 'प' की अपक्षा अधिक परिमाण म निसत होता है ।

उ   एव वि – हिन्दी भापा मे इसका उदभव एव विकास सस्कत क अस-युक्त एव सयुक्त फ, प एव प्प से हुआ है प आदि स परशु म भा आ भा फरसु हि फरसा फ स फाल्गुन म भा आ भा फग्गुण हि फागुन मध्य स सफल म भा आ भा सभल, सहल हि सफल अत्य ष्प म वाष्प म भा आ भा   बप्फ हि भाप् ।

व - ऐ त प्रा भा आ भा काल मे यह व्यजन ओष्ठ्य, स्पष्ट सवार नाद घोप अल्पप्राण स्पश था । म भा आ भा काल म भी यही स्थिति रही ।

ल   हिन्दी भापा म यह व्यजन ओष्ठ्य घोप अल्पप्राण स्पश है। इसके उच्चारण म जिह्वा की स्थिति प वत ही रहती है

---

१   उ पू प ध्मानीयानामोष्ठौ - उ पवग उपध्मानीय
   (ᳵप, ᳵफ) का ओष्ठय उच्चारण स्थान है।

र   हिन्दी भाषा मे यह व्यंजन ओष्ठ्य, घोष, अल्पप्राण नासिक्य
पन है। इसके उच्चारण मे दोना होठ परस्पर टकराते है एव वायु मुह व
नासिका के माध्यम से बाहर निकल जाती है।

उ एव वि — हिन्दी भाषा म इस व्यजन का उदभव एव विकास
मयुक्त एव सयुक्त म् व्यजन से हुआ है आदि-म मक्षिका म भा आ भा
मक्खिआ हि मक्खी स श्मसान म भा आ भा ममान हि ममान मध्य—
जम्बूफल म भा आ भा जम्बुल हि जामुन अन्त्य स वम म भा आ भा
कम्म हि काम

प्र हिन्दी भाषा म इसका प्रयोग शब्दादि मध्य एव अन्त्य मे होताहै

आदि	मध्य	अन्त्य
मदद	कुमारी	काम
मध्य	चमार	दाम

म्ह ए क प्रा भा भा काल म इस व्यजन का उल्लेख नहीं मिलता।
म भा भा काल म यद्यपि इसका पयोग बहुलता स मिलता है पर भाषाविदा
न इसका स्वतन्त्र ध्वनिग्रामिक रूप स्वीकार नहीं किया है।

ल हिन्दी भाषा म यह व्यजन ओष्ठ्य घोष महाप्राण नासिक्य व्यजन
है। यह म का महाप्राण रूप है

उ एव वि इस ध्वनि का उदभव एव विकास सस्कृत के ष्म, स्म,
म्भ वर्णो से हुआ है यथा ष्म स कुष्माडक म भा भा कुम्हडअ हि कुम्हडा
म्भ स कुम्भकार म भा भा कुम्हार हि कुम्हार

प्रयोग इस व्यजन का प्रयोग परिनिष्ठित हिन्दी म शब्द के मध्य म
होता है आदि एव अ त म नहा

तुम्हारा

कुम्हार

पार्श्विक—ल रह

ल् प्रा भा भा काल म सस्कृत भाषाविदाने ल को दन्त्य, स्पष्ट सघोष
नाद घोष, अल्पप्राण स्पर्श माना है। म भा भा काल म भी यही
स्थिति है।

ल हिंदी भाषा म यह व्यजन वत्स्य, पार्श्विक, घोष अल्पप्राण स्पर्श है इसके उच्चारण मे जिह्वा की नोक ऊपरी ममूडा को छूती है एव वायु जिह्वा के पार्श्व भाग से निकल जाती है

उद्‌भव एव विकास— हिंदी भाषा मे इस व्यजन का विकास संस्कृत ल्‌ र्‌ य से हुआ है, यथा ल— म लग्न म भा भा लग्ग हिन्दी लाग र स हरिद्रा म म भा हलिद्दा हि हल्दी य स० यष्टिका, म भा भा लट्ठिआ हि लाठी

प्रयोग— हिन्दी भाषा म इस व्यजन का प्रयोग शब्द के आदि मध्य एव अन्त्य मे होता है यथ—

आदि	मध्य	अन्त्य
लड्डू	बालम	कान
लकडी	बालक	विशाल

ल्ह—यह ल का महाप्राण रूप है। संस्कृत एव प्राकृत के भाषा शास्त्रीय ग्रथो म इसका उल्लेख उपलब्ध नही होता पर प्रयोग प्रा का म बहुलता म उपलब्ध होता है। हिन्दी भाषा मे यह व्यजन वत्स्य घोष, महाप्राण पार्श्विक स्पर्श है।

हिन्दी भाषा म इसका प्रयोग केवल शब्द के मध्य मे ही होता है।

चूल्हा दूल्हा मल्हार, दुल्हन,

लुण्ठित व्यजन र

र प्रा भा आ भा म यह व्यजन मूर्धन्य ईषत्स्पृष्ट सवार नाद घोष अल्पप्राण स्पर्श था। म भा भा काल म यही स्थिति रही

ल हिन्दी भाषा में यह व्यजन वर्त्स्य लुण्ठित घोष अल्पप्राण स्पर्श है। इसके उच्चारण म जिह्वा की नोक ऊपरी मसूडो का स्पर्श करती है एव एक कम्पन सा उत्पन्न होता है इसलिए कुछ भाषाविद इसे प्रकम्पी भी कहते है

स्व— प्र स्वामी म भा भा सावौं हि० साईं । दय स श्यामलक म भा भा सावमय हि० सांवला ।

प्र हिन्दी भाषा में इसका प्रयोग शब्द के आदि मध्य अन्त्य में होता है यथा—

आदि	मध्य	अन्त्य
साप	असर	सास
सेज, सेठ	कसौटी	घूस,

(न्) प्रा भा भा काल में यह ध्वनि तालव्य ईषदविवृत उष्म, विवार श्वास अघोष स्पश थी । म भा भा काल में यह ध्वनि नहीं रही 'स' में परिणित हो गई ।

स हिन्दी भाषा में यह व्यजन उष्म, सघर्षी, तालव्य, अघोष स्पश है । इसके उच्चारण में जिह्वा के दोनो पाश्व उठ जात ह एव अग्रभाग तालव्य का स्पश करता है तथा वायु सघष करती हुई निकलती है ।

उ एव वि— हिन्दी भाषा म इसका उद्भव एव विकास स श् से ही हुआ है, यथा श स शिक्षा म भा भा, में सिक्खा हि० सिखा सीख ।

टिप्पणी— हिन्दी भाषा में 'श एव 'ष' ध्वनियो का प्रयोग केवल तत्सम शब्दावली में ही होता है । जन सामान्य द्वारा अशिक्षित लागों द्वारा किए गए हिन्दी भाषा के प्रयोग में स का ही उच्चारण किया जाता है । प्रयत्न करके 'श' का प्रयोग कुछ शिक्षित लोग अवश्य करत हैं । परिनिष्ठित हिन्दी में तथा साहित्यिक तत्सम शब्दावली मे 'श' 'ष' का प्रयोग होता है ।

('ह')ऐ क. प्रा भा भा भा काल मे सस्कृत भाषाशास्त्रियों ने इस वर्ण को कण्ठय[1] ईषदविवृत[2], उष्म[3] सवार, नाद[4], घोष, महाप्राण माना । म भा भा भा काल में भी यही स्थिति रही ।

---

१ म भा भा काल में मूर्धन्य एव तालव्य उष्म (श ष) दन्त्य 'स' में परिवर्तित हो गये थे शषो स वररुचि प्रा प्रकाश २/४३

१, २ ३ ४, की पाद टिप्पणी अगले पृष्ट पर देखें ।

स — हिन्दी भाषा में यह वर्ण स्वरयन्त्रमुखी, सघर्षी, घोष महाप्राण स्पर्श है। इसके उच्चारण में वायु वेगपूर्वक निकल जाती है। जिह्वा किसी का स्पर्श नहीं करती। संस्कृत वैयाकरणों ने ह एवं विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ्य ही माना। हिन्दी भाषाविदों में डा वर्मा व डा तिवारी ने ह' को घोष एवं विसर्ग को अघोष मानते हैं पर डा भोलानाथ वा कादिरी के अनुकरण पर विसर्ग को भी 'ह' के समान घोष मानते हैं पर हमारे विचार में हिन्दी में विसर्ग की घोष एवं अघोष दोनों स्थितियाँ हैं यदि विसर्ग घोष वर्णों से युक्त होगा तो वह घोष होगा एवं अघोष वर्णों से युक्त होगा तो वह अघोष होगा।

उ एवं वि हिन्दी भाषा म ह' वर्ण का उद्भव एवं विकास संस्कृत के ह 'श एवं मध्यकाल में लुप्त हुई महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर प्रयुक्त ह' से हुआ है यथा — ह स हस्त म भा आ हत्थ हिन्दी हाथ। श स द्वादश म भा आ बारह हिन्दी बारह महाप्राण थ स वधू म भा आ बहू हि बहू भ म आभीर म भा आ अहीर हि अहीर.

प्र हिन्दी भाषा म इसका प्रयोग शब्द के आदि, मध्य एवं अन्त्य में होता है—

आदि	मध्य	अन्त्य
हमारा	अहीर	दाह
हाथ	प्रहार	स्नेह

अन्तस्थ वर्ण य 'व

य— प्रा भा आ भा काल में संस्कृतज्ञों ने इसे तालव्य ईषत्स्पष्ट अन्तस्थ, सवार नाद, घोष, अल्पप्राण स्पर्श माना। म भा आ काल म भी यही स्थिति रही।

---

१ अकुहविसर्जनीयानां कण्ठ २ ईषद्विवृतमूष्माणाम् ३ शल उष्माण ४ हश सवारा नाद घोषाश्च।

एव मध्यकालीन भाषाओ (प्रा० प्रा० अप०) म उ ऊ सेसपंकित 'व लुप्त हुए शब्द म-यग क ग च ज त द प व य — ध्वनियो से हुआ है । उऊ+क—अ =व । उऊ+अ=व भारतीय प्रा० भा० की एव प्रमुख विशेषता है । सस्कृत काल में यह प्रवत्ति विद्यमान थी जिसका उल्लेख आचाय पाणिनि ने 'इकोय-णचि (अर्थात् इ उ, ऋ, लृ को य व र, ल आदेश होता है बाद म अच् हो तो) सूत्र म इय प्रवत्ति है । म०भा०आ०भा० काल मे भी यह क्रियमाण थी एव आज भी क्रियमाण है । डा० धीरेन्द्र वर्मा ने दन्त्योष्ट्य 'व को हिन्दी की नव विकसित ध्वनि माना है जबकि सस्कृत काल मे ही यह दन्त्योष्ठय थी जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है । डा० भोलानाथ ने सस्कृत काल में 'व के तीन रूप स्वीकार किए है पर इसका व्याकरणिक ग्रन्थो एव० अन्य साहित्यिक ग्रन्थो मे उल्लेख उपलब्ध नही होना ।

प्रयोग— हिन्दी एव राजस्थानी भाषा मे इसका प्रयोग शब्द के आदि मध्य एव अन्त्य मे होता है—

	आदि	मध्य	अन्त्य
हिन्दी	वायु	सावन	गौरव
राज०	वास	बावन	भुखाव, झुकाव

सुविधा स्पष्टता एव ऋजुता हेतु उपयुक्त व्यजन ध्वनियों को भाषिक काल क्रमानुसार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्रा० भा० आ० भा० काल सस्कृत—

उच्चारण स्थान—

कण्ठ्य क ख ग घ ङ ह् विसग ( )
तालव्य च छ ज् झ् ञ् य श्

मूर्धन्य ट् ठ् ढ ड ण र ष
दन्त्य त् थ् द ध् न ल् स्
ओष्ठ्य प् फ ब् भ् म् ᳲप ᳲफ
दन्तोष्ठ्य व
नासिक्य अनुस्वार
जिह्वा मूलीय ᳲक ᳲख

आभ्यन्तर यत्न
स्पृष्ट क् से म् तक पच्चीस व्यंजन (पंच वर्ग)
ईषद् स्पृष्ट य् व् र् ल्
ईषद विवृत श ष् स् ह

बाह्य यत्न—
विवारश्वास अघोष क् ख् च् छ् ट् ठ् त् थ् फ फ् श ष स
संवार नाद घोष ग् घ् ङ् ज् भ् ञ् ड् ढ् ण् द् ध् न ब भ् म् य् व् र् ल्
अल्पप्राण क् ग् ङ् च् ज् ञ् ट् ड् ण् त् द् न् प् ब् म् य् व् र् ल्
महाप्राण ख् घ् छ् झ् ठ ढ थ् ध फ् भ् श् ष् स् ह

म० भा० आ० भा० काल—

म० भा० आ० भा० काल (पा० प्रा० अप०) में उपयुक्त व्यंजन ध्वनियों में विसर्ग, श् ᳲप फ् ᳲ क् ᳲख् व्यंजन नहीं रहे। शेष व्यंजन संस्कृत वत ही थे।

आ० भा० आ० भा० काल— हिन्दी

अगले पृष्ठ पर देखें

राजस्थानी भाषा में निम्न व्यंजन ध्वनियों के अतिरिक्त ळ ध्वनि विशिष्ट है जो उत्क्षिप्त है।

हिन्दी व्यंजन ध्वनियाँ

वर्गीकरण

उच्चारण स्थान	स्पर्श				स्पर्श संघर्षी				नासिक्य		संघर्षी				पार्श्विक		लुण्ठित		उत्क्षिप्त		अर्धस्वर
	अघोष		सघोष		अघोष		सघोष		सघोष		अघोष		सघोष		सघोष		सघोष		सघोष		सघोष
	अल्प प्राण	महा प्राण	अल्प प्राण	महा प्राण	अल्प प्राण	महा प्राण	अल्प प्राण	महा प्राण	अल्प प्राण	महा प्राण	अल्प प्राण	महा प्राण	अल्प प्राण	महा प्राण	अल्प प्राण	महा प्राण	अल्प प्राण	महा प्राण	अल्प प्राण	महा प्राण	
काकल्य														ह्							
कोमल तालव्य	क	ख्	ग	घ					ङ												
तालु वर्त्स्य					च	छ	ज्	झ्	ञ		श्										
मूर्धन्य	ट	ठ	ड	ढ					ण		ष								ड़	ढ़	
वर्त्स्य									न	न्ह	स				ल	ल्ह	र	र्ह्			
दन्त्य	त्	थ्	द्	ध																	
दन्तोष्ठ्य											फ़										व
ओष्ठ्य	प्	फ	ब	भ्					म्	म्ह											
तालव्य																					

१२२ विशिष्ट व्यजन परिवर्तन नियम—

हिन्दी भाषा कुछ व्यजनो म का परिवतन नियमत हुआ है। यहाँ प्रमुख परिवतनों का उल्लेख किया जा रहा हैं—

(१) महाप्राण ध्वनियों (ख् घ् थ् ध फ् भ्) के ह म परिवर्तन का नियम हि दी भाषा में यह प्रवत्ति परम्परागत रूपण आई है। सस्कृत काल में ही इस प्रवृत्ति का सूत्रपात हो गया था यथा—वैम्कि इह स० इध। पालि काल में इस प्रवृत्ति का पल्लवन हुआ भू आदि धातुओ क रूप 'होति प्रयुक्त होने लगे। प्राकृत प्रा० काल में ह प्रवत्ति पूणत विकसित हुई एव नियम का रूप धारण कर लिया परिणामत वररुचि को लिखना पड़ा—ख घ थ ध फ भी ह। यहा हिन्दी में इस प्रवति के कुछ उदाहरण इस प्रकार है—ख—ह मुख >मुह घ—ह प्राघुण—पाहुना थ—ह कथ कह ध—ह दधि>दही कटकफल—कटहल। २ घोषीकरण नियम स० के अघोष अल्प प्राण स्पश घोष अल्पप्राण मे परिवर्तित होकर आए हैं। क>ग ककरा—कगन च>ज ट>ड, कीट—कीडा प>व गोपेद्र>गोव द। (३) अनुनासिक ध्वनि नियम 'म>व में परिवर्तित होकर हिन्दी से आगत हुआ है यथा—आमलक—आवला यह प्रवत्ति प्राकृत की प्रधान विशेषता है। वररुचि ने लिखा भी है 'मोव अर्थात् म को व आदेश। हिन्दी मे प्राकृत से ही यह प्रवत्ति आगत हुई है। ण>न सस्कृत की न ध्वनि प्रा० काल में 'ण में परिवर्तित हो गई थी। प्राकृत काल में 'न सवत्र ण मे परिवर्तित हो गया। वररुचि ने इसका उल्लेख भी किया है— नोण सवत्र अर्थात् न सवत्र ण' होता है। हिन्दी मे पुन ण—न म परिवर्तित हुआ है यथा—स० नग्न प्रा० णग्गो हि० नगा। इनके अतिरिक्त भी हिन्दी में कुछ यजन परिवर्तित हुए हैं पर वहें नियम की सज्ञा नहीं दी जा सकती।

द्वितीय अध्याय

संज्ञा प्रकरण

२० हिंदी भाषा में संज्ञा पदों की रचना प्रातिपदिक अंश एवं लिंग वचन-कारक सम्बन्धदर्शी 'सुप्' प्रत्ययों के योग से होती है। एतदर्थ इस अध्याय में अन्तर्गत प्रातिपदिक, लिंग, वचन एवं कारक पर विचार किया जायेगा।

२१ प्रातिपदिक — प्रत्येक पद में समरूप में प्रयुक्त शब्दांश ही प्रातिपदिक है। संस्कृत-वैयाकरण आचार्य पाणिनि ने प्रातिपदिक के स्वरूप प्रतिपादनार्थ लिखा 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'[1] अर्थात् अर्थयुक्त अधातु, अप्रत्यय शब्दांश ही प्रातिपदिक है। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार वाक्यान्तर्गत 'अपदं न प्रयुञ्जीत' अर्थात् पद संज्ञा से रहित शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए। पदों के उन्होंने दो भेद किए—सुबन्त और तिङन्त (सुप्तिङन्तम् पदम्)। संस्कृत काल में सुप् विभक्ति लगने से पूर्व शब्दांशों की प्रातिपदिक संज्ञा होती थी एवं सुप् विभक्ति लगकर ही प्रातिपदिक अंश पद संज्ञक होकर वाक्यान्तर्गत प्रयुक्त होता था। कृदन्त तद्धितान्त एवं समास को भी प्रातिपदिक संज्ञा होकर विभक्ति योग से पद संज्ञा होती थी।[2] पालि प्राकृत

---

१ अष्टाध्यायी १/२/४५

२ कृत्तद्धितसमासाश्च । अष्टाध्यायी १/२/४६

एव अपभ्रंश काल में भी यही पद-प्रक्रिया थी । हिंदी भाषा में भी यह वैयाकरणिक परम्परा अक्षुण्ण होते हुए भी संस्कृतवत् जटिल नहीं है । हिन्दी भाषा में प्रत्येक शब्द का साधक आधारभूत अंश ही प्रातिपदिक है एव पद संज्ञा के लिए शून्य विभक्ति की भी कल्पना की गई है ।

संस्कृत काल में प्रातिपदिक के दो भेद थे—स्वरांत एव व्यंजनांत म० भा० आ० भा० काल में केवल स्वरांत प्रातिपदिक ही रहे । हिन्दी भाषा में संस्कृतवत् स्वरांत एव व्यंजनान्त दोनों ही प्रकार के प्रातिपदिक हैं—

७११ स्वरांत प्रातिपदिक

अकारान्त — राज्य भाग्य तत्व
आकारान्त — घोड़ा राजा (पु०) ममता माता (स्त्री)
इ— — पति कवि (पु०) रीति, नीति (स्त्री)
(अधिकांश तत्सम शब्दावली में ही इकरान्त शब्द मिलते हैं) ।
ई— — पानी दही (पु०) रानी, गोभी (स्त्री०)
उ— — पशु, शिशु हिमांशु (पु०) वस्तु ऋतु (स्त्री०)
ऊ— — भालू भालू (पु०) बहू, लू (स्त्री०)
ए— — पाण्डे दुबे (पु०) (स्त्री०) अप्राप्य
ऐ— — कै (वमन) (Vomitting) (स्त्री०)
ओ— — रासो (हिंदी साहित्य में प्रचलित राजस्थानी शब्द । इसके अतिरिक्त ओकारान्त शब्द अप्राप्य है)
औ— — जौ सौ (पु०) मौ गौ (स्त्री०)

स्वरान्त प्रातिपदिकों में आकारान्त ईकारान्त अकारान्त व उकारान्त शब्दों का ही बाहुल्य है । अकारान्त प्रातिपदिकों में अ संयुक्त वर्णों में ही स्पष्ट रूपण श्रुत होता है अन्यत्र नहीं । उकारान्त प्रातिपदिक अधिकांशत तत्सम है । एकारान्त ओकारान्त एव औकारान्त प्रातिपदिकों के

केवल 'ब' शब्द ही उपलब्ध होता है ।

२ १ २ व्यजनान्त प्रातिपदिक–हिन्दी भाषा म ङकारात, ञकारांत एव ढकारात प्रातिपदिक उपलब्ध नही होते । घकारात ढकारान्त एव भकारान्त प्रातिपदिक अत्यल्प परिमाण म है यथा – बाढ गढ साभ बाभ जाय । शेष सभी व्यजनान्त प्रातिपदिक उपलब्ध होते है ।

२२ लिंग—लिंग शब्द का अभिधेयार्थ है—चिह्न । भाषिक क्षेत्र म लिंग शब्द पुसत्व या स्त्रीत्व का द्योतक है । यदि हम भा० आ० भा० के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमे विदित होगा कि इनम लिंग–विधान प्रकम एव रूढ दोनो ही रूपो म उपलब्ध है । वैदिक काल म रूढ लिंग–विधान परम्परा का ही आश्रय लिया गया था पर उस समय लैगिक विधान अनि दुरूह एव अव्यवस्थित था । इस काल म अनेको नपुसक लिंग शब्द पुलिंग म प्रयुक्त होते थ । इसकी पुष्टि महाभाष्यकार की इन पक्तियो से होती है "छन्दसि नपुसकस्य पुवद्भावो वक्तव्य इति महाभाष्य' कहने का अभिप्राय है इस काल म लैगिक व्यत्यय परम्परा थी । लौकिक सस्कृत काल म आचाय पाणिनि ने अपने लिंगानुशासन शीर्षक ग्रथ म वैदिक कालीन लिंग–व्यत्यय प्रक्रिया को सुव्यवस्थित किया । इससे लिंग विधान प्रक्रिया तो सुव्यवस्थित हुई पर वह अति दुरूह हो गई । परिणामत जन सामान्य इस दुरूह तथा वैयाकरणिक लिंग परम्परा का निर्वाह नही कर सका । पालि काल म वैदिक काल की भाति लिंग–व्यत्यय प्रक्रिया हो रही । सस्कृत के अनेक नपुसक लिंग शब्द पालि म पुल्लिग म भी प्रयुक्त होते थ । यथा फला फलानि नेना रूप । प्राकृत एव अपभ्रश काल म भी यही स्थिति रही । परिणामत हेमचन्द्र को लिखना पडा । लिंगमतन्त्रम् । हिन्दी भाषा मे लिंग विधान सुव्यवस्थित एव ऋजु है । इसके मुख्यत दो कारण है— प्रथम कारण तो हिन्दी भाषा म दो ही लिंग है—पुल्लिग एव स्त्रीलिंग । दूसरा कारण हिन्दी भाषा म लिंग व्यत्यय परम्परा नही है । प्राचीन एव मध्य कालीन भारतीय

भाषा के शब्द मूलता एवं पुरुषता के आधार पर पु० या स्त्री० म निर्धारित हो गये है। फिर भी हिन्दी भाषा पर यह आरोप है कि इसका लिंग व्यवस्था दुरूह एवं अव्यवस्थित है। मेरी मान्यता में यह धारणा भ्रान्त है एवं हिन्दी भाषा के ज्ञान के अभाव की सूचक है। इसी सन्दर्भ में मैं एक सुझाव प्रस्तुत करना चाहूँगा। यदि सभी शब्दों का निम्न प्रकारेण वर्गीकरण कर लिया जाय तो किसी प्रकार की लैंगिक दुरूहता एवं अव्यवस्था नहीं होगा—

१ नियतलिंगी शब्द—

क– केवल पुल्लिंग में प्रयुक्त शब्द यथा मच्छर आदि। ख– केवल स्त्रीलिंग में प्रयुक्त शब्द यथा चील आदि।

२ उभय लिंगी शब्द—

पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग दोनों में प्रयुक्त होने वाले शब्द।

उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में लिंग व्यवस्था रूपात्मक स्थिति पर भी अवलम्बित है। उपर्युक्त तथ्यों का ज्ञान होने पर किसी प्रकार की लैंगिक दुरूहता नहीं रहेगी।

२३ स्त्री प्रत्यय

ए० क० जिन प्रत्ययों के योग से पुल्लिंग शब्दों का स्त्रीलिंग में परिवर्तित किया जाता है उन्हें स्त्री प्रत्यय कहते हैं। प्रा० भा० आ० भा० काल में मुख्यतः टाप डाप चाप (आ) ङीप ङीष ङीन् (ई) ऊङ् (ऊ) ति स्त्री प्रत्यय थे। पालि भाषा में कुल सात स्त्री प्रत्यय (आ) ङा (ई) इनी, नी आनी ऊ ति थे। प्राकृत एवं अपभ्रंश काल में मुख्यतः आ ई णी आणी स्त्री प्रत्यय थे। हिन्दी भाषा में निम्नलिखित सात स्त्री प्रत्यय हैं— आ–ई–आनी–नी–इन–आइन–इया। इनका उद्भव एवं विकास क्रम इस

उ० एव वि०—आ—हिन्दी भाषा म इस प्रत्यय का उद्भव एव विकास सस्कृत क टाप (आ) प्रत्यय से हुआ है । सस्कृत काल म यह प्रत्यय अकारान्त शब्दों के साथ प्रयुक्त होता था ।[1] पालि[2] प्राकृत एव अपभ्रंश काल म भी यही स्थिति रही । हिन्दी भाषा म भी यह प्रत्यय अकारान्त शब्दो के साथ मनागत होकरस्त्री० शब्दो का निमाण करता है । यथा पु० महान्त स्त्री० महान्ता पु० प्रधानाचाय स्त्री० प्रधानाचार्या ।

–ई–ए०क्र० हिन्दी भाषा म इस प्रत्यय का उद्भव एव विकास सस्कृत क ङीप प्रत्यय स हुआ है । सस्कृत काल म यह प्रत्यय टित् ढ (एय) अण अञ द्वयसच दघ्नञ मात्रच तयप ठक, ठञ कञ क्वरप प्रत्ययान्त शब्दो एव ह्रस्व अकारान्त शब्दो क साथ प्रयुक्त होता था ।[3] पालि काल म यह प्रत्यय अकारान्त शब्दो एव द आदि शब्दो के साथ प्रयुक्त होता था ।[4] प्राकृत एव अप० काल म भी यही स्थिति थी । हिन्दी भाषा मे यह प्रत्यय अकारान्त एव आकारान्त शब्दो के साथ प्रयुक्त होकर स्त्रीलिंग शब्दो का निमाण करता है यथा– पु० कुमार स्त्री० कुमारी पु० सुन्दर स्त्री० सुन्दरी पु० घोडा स्त्री० घोडी, पु० लडका स्त्री० लडकी ।

आनी—हिन्दी भाषा म इस प्रत्यय का उद्भव एव विकास सस्कृत क ङीप प्रत्यय से हुआ है । सस्कृत म यह प्रत्यय इन्द्रादि देव वाचक शब्दो के साथ प्रयुक्त होता था एव प्रत्यय स पूर्व आनुक् (आ) का आगम होता था । यथा—भव+आनुक् (आ)+ङीप (ई) भवानी । म० भा० आ० का०

---

१ अजाद्यतष्टाप ४/१/४ अष्टाध्यायी
२ इत्थियमत्वा ३/२, पालि महाव्याकरण
³ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ४/१/१५ अष्टाध्यायी ।
४ नदादितो वा २३/२६ पालि महाव्याकरण ।

मान म आनुक्+डीष् नाना नमितरर एर हा रूप धारण नर लिया—आनी। हिन्दी भाषा म भी यह प्रत्यय इसी रूप म प्रयुक्त हाता है। मस्कृत काल म यह प्रत्यय स्त्री अथ म (इन्द्रस्य स्त्री इन्द्र की स्त्री–इन्द्राणी) महत्व या अधिकता व अथ म (हिमानी–अधिक बफ) खराब अथ म (यवानी–खराब जौ) लिपि अथ म (यवनानी यवन लिपि) प्रयुक्त होता था। कालान्तर म अथ सकाच हुआ। पालि काल म ही यह प्रत्यय केवल स्त्री अथ म ही प्रयुक्त हान लगा[1] यथा—मातुल–मातुलानी। प्राकृत एव अपभ्रंशकाल म भी यही परम्परा रही। हिन्दी भाषा मे भी यह प्रत्यय स्त्री अथ म ही प्रयुक्त हाता है यथा—देवर–देवरानी, सेठ–सेठानी।

नी -प्रा० भा० आ काल म इस प्रत्यय का उल्लेख उपलब्ध नही हाता। म० भा० आ० भा० काल म इस प्रत्यय का उल्लेख उपलब्ध हाता है। पालि काल म यह प्रत्यय इ उ एव अकारान्त शब्दा क साथ प्रयुक्त हाता था।[2] यथा— पु० भिक्खु स्त्री० भिक्खुनी। प्रा० एव अप० काल म भी यह प्रत्यय इसी रूप म प्रयुक्त हाता था। हिन्दी भाषा म यह प्रत्यय अकारान्त शब्दा क साथ प्रयुक्त हाता है यथा—मार–मोरनी नार–नारनी आदि। इस प्रत्यय का आदि स्रोत मस्कृत के आनी इन प्रत्ययान्त शब्द एव म० भा० आ० भा० क इनी (इणी) प्रत्ययान्त शब्द है।

इन— मस्कृत काल म इस प्रत्यय का उल्लेख उपलब्ध नही हाता। म० भा आ० भा० काल म इनी प्रत्यय डी(ई) क स्थान पर विकल्प स प्रयुक्त होता था।[3]

प्रा० अप० काल म भी यही स्थिति रही। हिन्दी तक आते–आते अन्त्य–ई का लाप हाकर- इन् प्रत्यय अवशिष्ट रहा। हिन्दी भाषा म यह

---

१ मातुलादित्वो आनी अभिधाय / २ पालि महा व्याकरण।

२ उवण्णेहि ?/ ० वही

३ यवस्त्रादिना इनी च /२८ वही

प्रयय ईकारात शब्द के साथ प्रयुक्त होता है— यथा—पुजारा-पुजारिन माली-मालिन।

आइन—प्रा० एव म० भा० आ० भा काल म इस प्रत्यय का उल्लेख उपलब्ध नही होता। हिन्दी भाषा म यह प्रत्यय-इन् का ही विकसित रूप है यथा पु० पण्डित स्त्री पण्डितादन।

इया—प्रा० एव म० भा० आ० भा० काल म इस प्रत्यय का उल्लेख उपलब्ध नही होता। हिन्दी भाषा म यह प्रत्यय आकारान्त शब्दों के साथ प्रयुक्त होता है। यथा—बुढ्ढा-बुढिया। इसके अतिरिक्त यह प्रत्यय लघुता दुलार आदि अर्थों को भी व्यक्त करता है [यथा— चूहा-चुहिया, बेटा-बिटिया।

डा० भोलानाथ तिवाडी ने 'आ' को पुल्लिंग-प्रत्यय माना है। उनकी यह मान्यता सवथा भ्रान्तिपूर्ण है। कदाचित् उन्होंने आकारान्त शब्दों को ही 'आ' पुल्लिंग प्रत्यय मान लिया है। मेरा विनम्र सुझाव है कि उन्हें अपनी यह भूल सुधार लेनी चाहिए।

२८ वचन— नामपदों एव सर्वनाम-पदों के एकत्व एव अनेकत्व का बोध वचन से होता है। प्रा० भा० आ० भा० काल म तीन वचन थे— १ एक वचन २ द्विवचन ३ बहुवचन। म० भा० आ० भा० काल म द्विवचन लुप्त हो गया। पालि काल म ही द्विवचन के रूप बहुवचन म प्रयुक्त होने लग थे यथा स० द्वि व फले ब० व० फलानि पालि ब० व० फल फलानि। प्राकृत एव अपभ्रंश काल म भी दो ही वचन थे। म० भा० आ० भा० की भांति हिन्दी भाषा म भी दो ही वचन है—एक वचन एव बहुवचन। हिन्दी भाषा म वचन साधक प्रत्यय निम्नलिखित हैं— १-० २-ए ३-ए ४-आ ५-आ ६-याँ

अकारान्त एव व्यजनान्त पु० शब्दों के मूल रूप एक वचन एव ब० व० म शून्य एव विकारी ब० व० म आ प्रत्यय का योग होता है यथा

	मूल रूप		विकारी रूप	
	एक व०	ब० व०	एक व०	ब० व
अकारान्त शब्द	राज्य	राज्य	राज्य	राज्या
व्यंजनान्त शब्द	चावल	चावल	चावल	चावला

स्त्रीलिंग व्यंजनान्त शब्दों के एक व० मूल रूप में शून्य एवं ब० व० में -ए प्रत्यय का योग होता है। स्त्रीलिंग ब० व० विकारी शब्दों में -आ प्रत्यय का योग होता है यथा रात, रातें राता।

आकारान्त पु० एवं स्त्री० शब्दों के मूल रूप एक वचन में शून्य प्रत्यय का योग होता है एवं पु० ब० व० में -ए तथा स्त्री० ब० व० में -ए प्रत्यय का योग होता है यथा— पु० घोडा घोडे स्त्री० माला मालाए। आकारान्त पु० शब्दों के विकारी एक वचन के रूपों में -ए एवं स्त्री० में शून्य प्रत्यय का योग होता है। ब० व० विकारी पु० एवं स्त्री० शब्दों में 'आ' का योग होता है—यथा घोडे घोडा माला मालाआ। इ, ई उ ऊ ए ओ, एवं औकारान्त पु० एवं स्त्री० शब्दों के मूल रूप एक वचन में शून्य प्रत्यय का योग होता है तथा इ ईकारान्त मूल रूप बहु वचन में -आ, उ, ऊकारान्त मूल रूप बहु वचन स्त्री० में ए एकारान्त एवं ओकारान्त पु० मू० रूप बहु वचन में -शून्य तथा आकारान्त स्त्री० मूल रूप बहु वचन में -ए प्रत्यय का योग होता है। इ ई उ ऊ, ए आ ओकारान्त विकारी बहु वचन के रूपों में आ प्रत्यय का योग होता है। इन सभी प्रत्ययों का उद्भव एवं विकास तथा उदाहरण आदि कारक दीपक के अन्तर्गत प्रस्तुत किये जायेंगे।

२। कारक—कारक शब्द कृ धातु में ण्वुल प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अभिप्राय है— करने वाला किसी भी क्रिया का कर्त्ता ही कारक होता है। इसलिये कहा गया है— क्रियान्वित कारक अर्थात् क्रिया से अन्वित शब्द ही कारक है।

वदिक मस्कृत कालम एक ही गब्द क कारकीय रूपा की मख्या तीन वचना आठ विभक्तियों म २६ एव २८ क बीच थी। लौकिक सस्कृत काल म भी गब्द क कारकीय रूपा का मख्या २४ थी। कम कम गब्दा की रूप मख्या ६ थी। म० आ० भा० काल म द्विवचन लुप्त हो गया और एक ही गब्द क रूपा की कुल सख्या १६ हो रही। हिन्दी भाषा तक आत-आत गब्द रूपा की मख्या अत्यल्प हो गई। हिन्दी भाषा में मूल एव विकारी रूपा के आधार पर एक गब्द के तीन या चार रूप हो गए।

उपर्युक्त ऐतिहासिक क्रम पर यदि दृष्टिपात करे तो हमें विदित होगा कि जहाँ वैदिक काल म कारकीय रूपा की मख्या २६ या २८ थी वहा हिन्दी एव राज तक आत-आत तीन या चार हो रहा। इसके मुख्यत निम्नलिखित कारण है—

१ वदिक काल म ही कारकीय रूपा का व्यत्यय प्रारम्भ हो गया था। चतुर्थी एव षष्ठी विभक्ति का व्यत्यय होता था। महाभाष्यकार ने लिखा है—व्यत्ययो बहुलम् १/१/८४ योग विभाग कर्तव्य । छ सि विषय सर्वे विषया भवन्तीति। सुपा व्यत्यय । तिङा व्यत्यय । वर्ण व्यत्यय। लिंग व्यत्यय । पुरुष व्यत्यय । काल व्यत्यय । आत्मनेपद व्यत्यय । परस्मैपद व्यत्यय इति। यह व्यत्यय प्रक्रिया रुकी नहीं यद्यपि आचार्य पाणिनि ने इस रोकने का प्रयास किया। म०भा०आ०भा० काल म भी यह व्यत्यय प्रक्रिया अनवरत रही। परिणामत अनेक कारकीय रूप इस व्यत्यय प्रक्रिया म लुप्त हो गये।

कारकीय रूपा की न्यूनता का दूसरा कारण रूप ह्रास प्रक्रिया थी। द्विवचन के रूप पालिकाल म ही लुप्त हो गये थे। प्राकृत काल म करण अपादान एव अधिकरण के रूपो का सम्मिश्रण प्रारम्भ हो गया था। अपभ्रश तक मुख्यत कारकीय रूपा के तीन वर्ग थे कर्ता कर्म-सबोधन २ करण अपादान अधिकरण ३ सबध-सम्प्रदान। इस ह्रास प्रक्रिया के फलस्वरूप हिन्दी तक आते आते गब्दो के मुख्यत तीन या चार रूप ही रहे। हिन्दी एव राज भाषा म सम्बन्ध कारकीय रूपा एव कारकीय रूपा के निर्माणकारी विभक्ति प्रत्यय का स्वरूप इस प्रकार है—

स्वरांत प्रातिपदिक

			मूल रूप				विकारी रूप			
			कारकीय रूप		प्रत्यय		कारकीयरूप		प्रत्यय	
			एक वचन	बहु वचन	एक व०	ब०व०	एक व०	ब० व०	एक व	ब० व०
आकारांत	पुंलिंग	घोडा	घोडा	घोडे	।०।	।ए।	घोडे	घोडो	।ए।	।ओ।
	स्त्रीलिंग	माला	माला	मालाए	।०।	।ए।	माला	मालाओ	।०।	।ओ।
इकारांत										
	पुल्लिंग	कवि	कवि	कवि	।०।	।०।	कवि	कवियो	।०।	।ओ।
	स्त्री०	नीति	नीति	नीतियां	।०।	।आं।	नीति	नीतियो	।०।	।ओ।
ईकारान्त										
	पुल्लिंग	हाथी	हाथी	हाथी	।०।	।०।	हाथी	हाथियो	।०।	।ओं।
	स्त्रीलिंग	मक्खी	मक्खी	मक्खियां	।०।	।आं।	मक्खी	मक्खियो	।०।	।ओं।
उकारान्त										
	पुल्लिंग	पशु	पशु	पशु	।०।	।०।	पशु	पशुओ	।०।	।ओं।
	स्त्री०	ऋतु	ऋतु	ऋतुए	।०।	।ए।	ऋतु	ऋतुओ	।०।	।ओं।

पूर्व पृष्ठ की तालिका के आधार पर हिन्दी भाषा में निम्न निर्दिष्ट कारकीय रूपों के निर्माणकारी विभक्ति प्रत्यय उपलब्ध होते हैं—
० आ ए ए, ओ, इन प्रत्ययों का उद्भव एवं विकास क्रम इस प्रकार है—
२ ५ १ ० | ऐ० क्र०—इस विभक्ति प्रत्यय का उद्भव एवं विकास संस्कृत की प्रथमा विभक्ति के सु प्रत्यय से हुआ है। 'सु' प्रत्यय संस्कृत काल में विसर्ग ( ) में परिवर्तित होता था।[1] पालि एवं प्राकृत काल में सु प्रत्यय 'सि' में परिवर्तित हो गया।[2] व्याकरणिक प्रक्रिया से गुजर कर सि को 'ओ' आदेश होता था। अपभ्रंश काल में 'ओ' का परिवर्तन 'उ' हो गया होता था।[3] हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में पदान्त लोप वा अन्त्य ध्वनि लोप की प्रवृत्ति एवं सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण प्रत्यय उ का लोप हो गया। परिणामतः शून्य विभक्ति का विकास हुआ। यहाँ यह उल्लेख्य है कि व्याकरणिक परम्परा में सुप विभक्ति योग से पूर्व शब्द प्रातिपदिक अवस्था में रहता है। अतः शून्य विभक्ति प्रत्यय योग की कल्पना की गई है।

प्रयोग— हिन्दी भाषा में इस प्रत्यय का प्रयोग अविकारी कर्त्ताकारक एक वचन इ ई उ ऊ ए ओ एवं व्यंजनान्त अविकारी बहुवचन एवं व्यंजनान्त शब्दों के अविकारी कर्त्ताकारक एक वचन में होता है।
२ ५ २ आ ए ए० क्र०—हिन्दी भाषा में इन प्रत्ययों का उद्भव एवं विकास संस्कृत के न० पु० अकारान्त शब्दों के प्रथमा वचन एवं द्वितीय के बहु वचन के रूपों में प्रयुक्त जस शस (आनि) विभक्ति से हुआ है।

---

१ सु (स+उ) उपदेश अनुनासिक इत् १/३/२ सूत्र से उ का लोप ससजुषोरु सूत्र से स का रु एवं खरवसानयोर्विसर्जनीय सूत्र से र को विसर्ग होता है।

२ के सिस्सा २/११२/ पालि महाव्याकरण
व अतओ सो ५/१ प्राकृत प्रकाश वररुचि

३ स्यमोरस्योत् /४/३३१/हेमचन्द्र

पालि[1] एव प्राकृत[2] काल म आनि > आइ म परिवर्तित हुआ। अपभ्रंश काल म आइ > इ अइ म परिवर्तित हुआ। हिन्दी भाषा म जहा गुणीय प्रवृत्ति की प्रधानता थी वहा आइ अइ > ए म परिवर्तित हुआ एव जहा अन्त्य ध्वनि ह्रास की प्रवृत्ति प्रधान थी, वहा आइ, अइ > आं म विकसित हुआ। हिन्दी भाषा म –आ प्रत्यय का प्रयोग इ ईकारान्त स्त्री लिंग शब्दों के ब० व० अविकारी रूपों म होता है यथा नदियां।

। ए। प्रत्यय का प्रयोग शेष स्त्री लिंग शब्दों के अविकारी रूपों म होता है यथा बातें, लताए बहुए घटाए। यहा प्रश्न उपस्थित होता है संस्कृत की पु० विभक्ति प्रत्यय का योग हिन्दी म स्त्री० शब्दों के साथ क्यों होता है? इसका मुख्य कारण हिन्दी म नपु० का अभाव ही है। इसी कारण इस प्रत्यय का योग स्त्री० शब्दों के साथ होता है।

। –ए। ए०व०– हिन्दी भाषा म इस प्रत्यय के उद्भव एव विकास के सम्बन्ध म विवाद है। हार्नले व बीम्स के अनुसार यह विकारी एक वचन –ए ही है जिसका प्रयोग बहु व० म भी चल पड़ा है। डा० चटर्जी भी इसकी व्युत्पत्ति मानते है। डा० उदयनारायण इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध मानते है। डा० वर्मा भी इसकी व्युत्पत्ति के संदर्भ म मौन हैं। डा० भोलानाथ ने इसकी व्युत्पत्ति की पाच संभावनाए की है जिनम तर्क संगति की संभावना कम है। उन्ह जिन रूपों (संस्कृत, पालि प्राकृत, अपभ्रंश) म ए ए दिखाई दिया उसी से 'ए' की व्युत्पत्ति की संभावना कर दी। मेरे विचार म इस विभक्ति प्रत्यय का उद्भव एव विकास संस्कृत की तृतीया विभक्ति एक वचन 'टा' एव बहुवचन 'भ्यस्' से हुआ है। यद्यपि इस प्रत्ययान्त शब्दों एव कर्म वाच्य भाव वाच्य म तृतीया विभक्ति

---

1 पालि महाव्याकरण ४/१८ १६

2 प्राकृत प्रकाश ५/२६

गए उसी एव बहुवचन का प्रयोगाधिक्य था । रामायण म इसका प्रचुर प्रयाग द्रष्टव्य है । कालान्तर म यह प्रवृत्ति अधिक बढी । पालि म टा ना एव भ्याम् हि म परिवर्तित हुआ एव भ्यस् ण आदेश होता था ।[1] प्राकृत एव अप० काल म भी यही स्थिति रही ।[2]

हिन्दी भाषा म यह प्रत्यय आकारान्त शब्दो के विकारी एक वचन एव अविकारी बहु व० के कारकीय रूपो क साथ प्रयुक्त होता है यथा घोडे लडके आदि । आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो क विकारी एक वचन के रूपो के साथ इसका प्रयोग नही होता । अपवादस्वरूप 'राजा' शब्द के साथ भी यह प्रयुक्त नही होता ।

१—आ । आ ए० ब०—

१—आ । विभक्ति प्रत्यय का उद्भव एव विकास यथावधि पयन्त हिन्दी भाषाविदो न सस्कृत की षष्ठि विभक्ति रूप भ्याम् व –आनाम् स माना है । इसका विकास क्रम डा० भोलानाथ न इस प्रकार बताया है— घोटकानाम् > घोटकान > घोडआण > घोडअन > घोडवन घोडउन > घोडे । > घोडा । पर मेरी मान्यता म यह मत सगत नही । वस्तुत इसका विकास सस्कृत की द्वितीया विभक्ति एक व० अम् एव ब० व० आन् स हुआ है । जिन्ह क्रमश अम् एव आन् आदेश होता था । पालि काल म अम् –अ म आन् > ए म परिवर्तित हुआ ।[3] प्राकृत म अम् > अ[4] म एव अपभ्रश म अम् > उ म परिवर्तित हुआ ।[5] हिन्दी भाषा म ३ गुणीय प्रवृत्ति के कारण ओ एव अकारान्त अनुनासिकता का आगम हुआ है ।

---

१ क अतेन पानि महाव्याकरण २/२१०
  ख सुहि स्वस्स २/१०० वही
२ क प्राकृत प्रकाश ५/५ ख पट्टि ३३३
३ अतो यान २ ८२ पालि महाव्याकरण
४ प्राकृत प्रकाश ५ ८ अतो म
५ स्यमो स्यान । ८११ हमच द्र

राजस्थानी भाषा म श्रो विभक्ति प्रत्यय का विकास संस्कृत की सु विभक्ति से ही हुआ है । हिंदी म अपभ्रंश का सु लुप्त हो गया जब कि राजस्थानी म यह गुणीय रूप म परिवर्तित हो गया घाडउ > घाडा है।

२६—कारक चिन्ह —ऐ० प्र०—

प्रा० भा० श्रा० भा० ग्रन्थ मे जसा कि लिखा जा चुका है कि कारक रूपो की रचना सु श्रो नम आदि विभक्ति प्रत्ययो के योग से होती थी । उत्तरवर्ती लौकिक संस्कृत काल म विभक्त प्रत्यय पूर्णत अर्थाभिव्यक्ति म असमर्थ रहे । अत अर्थाभिव्यजन के लिए कुछ सहयोगी शब्द प्रयुक्त होने लगे यथा कायस्य कृते रामस्यार्थे अस्मात् कारणात् आदि । प्राकृत काल म यह प्रवृत्ति और बढी एव अपभ्रंश तक आत-आत यह प्रवृत्ति इतनी बढी कि हेमचन्द्र को ऐसे शब्दो की लम्बी सूची देनी पडी । साथ ही अपभ्रंश तक आत-आत प्रथमा एव द्वितीया विभक्तियाँ लुप्त भी हो गई थी ।[1] हिन्दी भाषा म ऐसे शब्दाश विकारी रूपो के साथ प्रयुक्त होते हैं ।

हिन्दी भाषा म इन शब्दाशो के नामकरण लिखने एव इतिहास के सम्बन्ध म पूर्णत विवाद है । कुछ भाषाविद संस्कृत की विभक्तियो की भाति इन्ह भी विभक्तियाँ कहते हैं कुछ भाषाविद इन्हें उपसर्ग परसर्ग कारक चिह्न कहते ह । मेरी मान्यता म इन्ह अनुसर्ग कहना ही संगत है क्योकि ये शब्दाश कारकीय रूपो के पश्चातवर्ती है । नामकरण की भाति इनके लिखने के सम्बन्ध म भी भाषाविदो म विवाद है । कुछ भाषाविद इन्ह कारकीय रूपो के साथ सटाकर लिखने के समर्थक है कुछ कारकीय रूपो म हटाकर एव कुछ सार्वनामिक रूपो के साथ सटाकर एव संज्ञा पदो आदि रूपो के साथ इन्ह हटाकर लिखने के समर्थक ह । हिन्दी भाषा की विशेषताओ एव भाषायी प्रचलन को ध्यान म रखते हुए मेरी मान्यता है कि इन्ह कारकीय रूपो से हटाकर लिखना ही संगत है क्योकि कारकीय

१ स्वयम् जम समानुक्रम हेमचन्द्र ।४/४।

स्था न विभक्ति प्रत्यया (-न ग्रा ग्र) ग्रा - का प्रयोग पूर्ववर्ती भाषाग्रा (संस्कृत पालि प्राकृत अपभ्रंश) की भांति सटाकर ही होता है । अनुसर्ग विभक्तियां नहीं हैं । अत इन्हें कारकीय रूपों से पृथक लिखना ही संगत है । हिन्दी भाषा में निम्नलिखित अनुसर्ग है—

ने को से ना की के म पर ह ।

२६१ —ने—

व्युत्पत्ति—ने- अनुसर्ग की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध म भाषाविदों म मतैक्य नहीं है । डा० सुनीतिकुमार सुकुमार सेन एव टर्नर ने इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत कर्ण से मानी है । डा० ग्रियर्सन स तन से बाम्स एव केलाग म लग्न से एव स्व० किशोरीदास वाजपेयी एन से इसकी व्युत्पत्ति मानते है । उक्त मतो म ने की व्युत्पत्ति की सम्भावना संस्कृत की करण कारक विभक्ति एन से ही है । इसके मुख्यत निम्नलिखित कारण है—

(१) संस्कृत म करण कारक का प्रयोग कर्ता कारक के रूप म कर्म वाच्य एव भाव वाच्य म होता था । प्राकृत एव अपभ्रंश काल म भी यह परम्परा अक्षुण्ण रही । इसी कारण हिन्दी भाषा म भी यह अनुसर्ग कर्मणि एव भाव म प्रयुक्त होता है ।

(२) संस्कृत काल म भूतकालिक क्त प्रत्ययान्त शब्दों के साथ भी करण कारक का कर्ताकारक के रूप म प्रयोग होता था । प्राकृत एव अप-भ्रंश म भी यह परम्परा अक्षुण्ण रहा । हिन्दी भाषा म भी यही विकसित परम्परा है स० रामेण पुस्तक पठितम् । हि० राम ने पुस्तक पढ़ी ।

इससे स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश तक आते-आते संस्कृत की प्रथमा एव द्वितीया की विभक्तियां लुप्त हो गई थी । इसलिए कर्म-भाव वाच्य रूपों एव क्त प्रत्ययान्त आदि तृतीया रूपों के साथ करण कारक का कर्ता कारक म प्रयोग बना और हिन्दी म भी यही परम्परा अक्षुण्ण रहा । इसकी व्युत्पत्ति या विकास क्रम इस प्रकार म है—

स० एन > एण > एन (वण व्यत्यय) न

स० नेन (सचानेन) > णेण > नेन >न।

डा० उदयनारायण एव डा० भालानाथ न इस मान्यता म मदिग्धता व्यक्त की है। डा० उदयनारायण तिवारी ने प्रथम तर्क दिया है कि ने विभक्ति प्रत्यय नही बल्कि परसग है इसलिए इसकी व्युत्पत्ति म को पर आदि की भाति किसी स्वतन्त्र शब्द स ढूढनी चाहिए। यह तक युक्तियुक्त नहीं है। प्रथम ता स्वय तिवारीजी ने किसी शब्दसे इसकी व्युत्पत्ति सिद्ध नही की है। कोई भाषा वज्ञानिक सिद्धात भी नही कि सभी शब्द एक ही व्युत्पत्ति परम्परा से सिद्ध हो।

दूसरा तक डा० उदयनारायण ने दिया है कि विभक्ति प्रत्यया को लघु रूप बनाने की प्रवति है एव अनुनासिक ध्वनियो की अनुस्वार मे परिवर्तित होन की प्रवति है यथा – बात रातें ए < आनि आदि। यह तर्क भी सगत नही क्याकि सस्कृत की अनुनासिक ध्वनिया परवर्ती भाषाओ म जहां अनुस्वार म परिवर्तित हुई है वहा न > ण म भी परिवर्तित हुआ है। वररुचि न इसका उल्लेख भी किया है।[1] हिदी मे पुन ण > न म परिवर्तित हुआ है अत एन > न नेन > ने की सभावनाए अधिक है।

तीसरा तक डा० तिवारी न दिया है कि न का प्रयाग प्राचीन नही है। यह तक सवथा असगत है। अन्य अनुसर्गों के समान ही इसका प्रचलन भी अपभ्रंश क परवर्ती काल से ही हुआ है।

अत ने की व्युत्पति सस्कृत एन नेन स मानना ही सगत है।

प्रयोग हिन्दी भाषा म इस अनुसग का प्रयोग सकमक धातुओ के भूतकालिक कृदन्तीय काला क साथ कमवाच्य एव भाव वाच्य म होता है यथा– राम न किताब पढी।

---

१ वररुचि प्राकृत प्रकाश नो ण सवत्र

रैनाग इसकी व्युत्पत्ति म सग स स्वीकार करत है । डा० सुनीतिकुमार स० सम-हि, डा० उदयनारायण स० सम-गन एव डा० भोलानाथ ने स० सम सग एव सुतो से मानी है । मेरे विचार मे इस अनुसग की व्युत्पत्ति सस्कृत के सह साकम् साम् समम् से माननी चाहिए क्योंकि सस्कृत काल म इन सहायक शब्दो के साथ करण-कारक (ततीय-विभक्ति) का प्रयोग होता था। इतना ही नही जहा सह आदि शब्द न भी हो पर साथ अर्थ की प्रतीति भी हो तो ततीया विभक्ति होती थी । इसका सकेत हम पाणिनि के वृद्धो यूना (१/२/६५) सूत्र द्वारा सह शब्द के बिना ही यूना म तृतीया होने मे मिलता है । पालि एव प्राकृत काल म यही परम्परा रही[1] अपभ्र श काल म ये शब्द सहुँ सउ आदि रूपो म उपलब्ध होते हैं ।[2] हिन्दी भाषा म इन्हीं शब्दो से इसकी व्युत्पत्ति स्वीकार करनी चाहिए । अब प्रश्न उठता है अपादान कारक म प्रयुक्त से का सम्बन्ध किससे स्वीकार करना चाहिये ? अपादान के से अनुसग का विकास सस्कृत की पचमी विभक्ति के 'भ्यस्' से हुआ है । प्राकृत काल म 'भ्यस्' का 'सुतो' आदेश होता था ।[3] अपभ्र श म सउ के रूप म यह शब्द उपलब्ध होता है । हिन्दी म यही से एव राजस्थानी म सू सें सेती के रूप म प्रयुक्त होता है ।

प्र०—हिन्दी भाषा म यह अनुसग करण कारक एव अपादान कारक के रूपो म प्रयुक्त होता है । राजस्थानी भाषा म यह अनुसग करण कारक एव अपादान कारक म क्रमी सू कहा से कही सती के रूप म प्रयुक्त होता है ।

सम्प्रदान—के लिये—व्युत्पत्ति—इस अनुसग की व्युत्पत्ति भाषा-

---

१ पालि महाव्याकरण सम्बन्ध ३/१६

२ जउ पयसन्ते सहुँ न गय न मुअ विओए तस्सु
लज्जिजइ सन्सडा हिम्न हि सुन्य पाणस्सु ।।

३ शान्ति सुमा प्राकृत प्रकाश ५/७

विभो न स० कृते, लग्न लब्ध एव प्रा० करण से मानी है। डा० भोलानाथ डा० उदयनारायण आदि भाषाविद सम्प्रदान के की व्युत्पत्ति स० कृत' से मानते हैं। इसका विकास क्रम डा० भोलानाथ के अनुसार इस प्रकार है—कृते, किते किदे, किए कए>के। परन्तु यह विकास क्रम कल्पित है। सम्प्रदान में प्रयुक्त के अनुसर्ग की व्युत्पत्ति अपभ्रंश काल में तादर्थ्य (चतुर्थ्यर्थ) कृते' के लिए प्रयुक्त केहि निपात से हुई है[1] यथा—

ढोल्ला एह परिहासडी अइभण भण कवणहि देसि
हउ झिज्जउ तउ केहि पिउ तुहु पुणु अन्नहि रेसि
(विट एष परिहास अयि भण कस्मिन देश
अहं क्षीण तव कृते प्रिय त्व पुन अन्यस्या कृते)

अर्थात्—हे दुल्हा बताओ यह परिहास किस देश में होता है। हे प्रिय मैं तुम्हारे लिये क्षीण होती हू और तुम किसी दूसरी के लिये। । यहा कृते के लिए केहि' का प्रयोग हुआ है एव इसी से के का विकास हुआ है अप० केहि>केइ>के। कहीं-कहीं कृते के स्थान पर करउ भी उपलब्ध होता है यथा तुम्हइ केरउ धणु (युष्माक कृते धनम् तुम लोगों के लिये धन)

राजस्थानी भाषा में र र अनुसर्ग सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त होते हैं। इनका विकास भी अपभ्रंश काल में तादर्थ्य में संस्कृत के कृत के स्थान पर प्रयुक्त रसि रसि निपात से हुआ है[2] यथा— अन्नहि रेसि। हिन्दी भाषा में सम्प्रदान कारक में के के साथ लिये भी प्रयुक्त होता है। इसकी व्युत्पत्ति हानले ने स० लब्ध से मानी है। डा० भोलानाथ एव

---

१ तादर्थ्ये केहि-तेहि-रेसि-रसि-तणेणा अर्थात् अपभ्रंश में तादर्थ्य जहा कहना हो वहाँ केहि तेहि तेहि रेसि और तणेण ये पाच निपात होते हैं—हेमचन्द्र | ४२५।

२ एव तेहि रेसिमावुदाहार्यो वहा

डा० उदयनारायण आदि भाषाविद लग्न से इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं यथा—स० लग्न प्रा० लग्ग लए हि–लिए। डा० भोलानाथ ने स० लगनस्मिन् से इसके विकास की अधिक सम्भावना की है पर यह केवल कल्पना है प्रमाण युक्त नहीं एव संस्कृत में ऐसी रूप–रचना सभव भी नहीं है। जब तक नये अनुसधान न हो जाय तब तक स० लग्न >लग्ग>लए>लिए ही विकास क्रम मान कर सतुष्ट होना चाहिये।

राजस्थानी भाषा मे 'रै' 'रे' के साथ–साथ सम्प्रदान कारक मे 'वास्ते खातर' आदि शब्दो का भी प्रयोग होता है।

२६५ सम्बन्ध कारक—का की का, व्युत्पत्ति—इन अनुसर्गों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे भाषाविदो मे मतैक्य नहीं है। पाश्चात्य भाषाविद् वेबर, पिशेल इनका विकास स० के 'कार्यम् से मानते हैं। हानले, बीम्स एव केलाग इसकी व्युत्पत्ति स० कृत (स० कृत प्रा० करिग्रो केरो, करा– का) से स्वीकार करते हैं। तसीतोरी संस्कृत कार्यक से इसकी व्युत्पत्ति मानते है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी स कृत (कृ>कड, का) से इसकी व्युत्पत्ति मानते है। डा० उदयनारायण तिवाडी ने संस्कृत की 'कृ' धातु से इसका सम्बन्ध जोडते हुये इसकी व्युत्पत्ति कृत>कग्र>को से बनाई है। डा० भोलानाथ ने बीम्स एव केलाग के मतो मे अपनी सहमति व्यक्त की है। मेरे विचार मे 'के' का विकास अपभ्रश काल मे सम्बन्ध ग्रथ मे प्रयुक्त 'केर' से[1] एव 'को' का विकास स० कृत > कग्र > को से हुआ है यथा—

गयउ सु केसरि पिग्रउ जलु निच्चिन्तइ हरिणाइ
जसु केरए हुँकारडएँ मुहहु पडन्ति तृणाइ

'की' का विकास हिन्दी की लिंग–निर्माण–प्रक्रियानुरूप 'का' मे स्त्रीवाची–ई प्रत्यय के योग से हुआ है।

---

१ सम्बन्धिणा केर तणौ अर्थात् सम्बन्धी के स्थान पर केर और तणा आदेश होता है।

राजस्थानी भाषा में सम्बन्ध कारक के लिए का की के के अति-रिक्त रा री, रे अनुसर्ग भी प्रयुक्त होते हैं। इनका विकास अपभ्रंश कालीन केरि केरि निपातों से ही हुआ है जिनका विवेचन सम्प्रदान कारक के अन्तर्गत किया जा चुका है। राजस्थानी एवं हिन्दी में सम्प्रदान कारक के रै आदि अनुसर्गों के साथ अरबी के खातिर वास्ते भी दि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

२६६ अधिकरण कारक—में, पर —व्युत्पत्ति— में अनुसर्ग की व्युत्पत्ति जुल्स ब्लाक अवेस्ता —मद एवं बाबू उदयनारायण स० स्मिन् प्रा० म्मि से मानते हैं पर ये व्युत्पत्तियां संदिग्ध हैं। स० की सप्तमी विभक्ति स्मिन् प्रा० में म्मि इ, हि रूपों में उपलब्ध होती है। अपभ्रंश में भी इन्हीं रूपों में उपलब्ध होती है।[1] हिन्दी भाषा तक आते-आते विभक्ति लोप की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। अतः स० की सप्तमी से 'में' की व्युत्पत्ति मानना असंगत है। डा० उदयनारायण एवं डा० भोलानाथ इसकी व्युत्पत्ति स० मध्य से स्वीकार करते हैं। डा० भोलानाथ के अनुसार इसका विकास क्रम इस प्रकार है—

स० मध्ये प्रा० मज्झे मज्झि > माँह मँ में। इस अनुसर्ग की व्युत्पत्ति मध्ये से ही स्वीकार करना संगत है। अपभ्रंश काल तक इसका प्रयोग अनुसर्ग के रूप में होना प्रारम्भ हो गया था यथा—जामहि विसमी कज्ज गइ जीवहिं मज्झे एइ।[2] युवराजों है माझ पविष्ठ। ऊपर पर की व्युत्पत्ति स० अव्यय उपरि (प्रा० उप्परि > ऊपर > पर) से हुई है। अपभ्रंश में अनुसर्ग के रूप में इसका प्रयोग लक्ष होता है यथा—मयिरु उप्परि तणु धरइ।[3]

---

१ हेमचन्द्र सिस्सुबोहि अपभ्रंश व्याकरण /३४७/
२ वही प० २००
३ वही प० ११

राजस्थानी भाषा में मे, मांय, माइ उपर, पर, माथै आदि अनुसग अधिकरण में प्रयुक्त होते हैं जिनका विकास मध्ये एव उपरि से ही हुआ है एव इनके ही रूपातर हैं ।

डा० उदयनारायण एव डा० भोलानाथ आदि भाषाविदो ने कुछ अव्यय शब्दो को क्रमश परसर्गीय शब्दावली एव परसगवत् प्रयुक्त शब्द कहा है । ऐसा मानना असगत है क्योकि आगे (स० अग्रे आर (प्रति) नीचे (नीचस) पास (समया, निकषा) पीछे (पश्चात्) बाहर (बहि) बीच (स० भ्यतरा) भीतर (स० आभ्यन्तर) साथ (साधम्) शब्द सस्कृत काल से ही अव्यय शब्द रूपो मे प्रयुक्त होते रहे हैं ।[1] पालि, प्राकृत एव अपभ्रश काल म भी ये अव्यय शब्द ही थे । हिन्दी भाषा मे भी ये शब्द अव्यय ही हैं । अत इन्हें परसग मानना असगत है । परसग सदैव विकारी रूपो के पश्चात् प्रयुक्त होते हैं एव स्वतन्त्र शब्द रूप मे कदापि अथ व्यक्त नहीं करते । उपयु क्त सभी शब्द स्वतन्त्र शब्द रूप मे प्रयुक्त होकर अर्थाभिव्यक्ति भी करते हैं । अत इन्हें परसगवत् कदापि नही मानना चाहिये ।

---

१ स्वरादि निपातम् अव्ययम् १/१/३६ अष्टाध्यायी ।
असख्यहि सब्बास मोग्गलान पालि महाव्याकरण ।

तृतीय अध्याय

सर्वनाम प्रकरण

३० सना रूपों के स्थानापन्न शब्द रूप सर्वनाम कहलाते हैं। आचार्य पाणिनी ने सर्व आदि शब्दों को सर्वनाम कहा है। संस्कृत काल में सामान्यतः प्रत्येक सार्वनामिक शब्द के तीन वचनों एवं सात विभक्तियों के आधार पर इक्कीस रूप थे। कुछ सर्वनामों के सिद्धान्ततः पुल्लिंग स्त्री० एवं नपुंसकलिंग में निरेसठ रूप होते थे यथा—सर्व शब्द। म० भा० आ० भा० काल में द्विवचन लुप्त हो गया अतः सर्वनामों की रूप संख्या कम हो गई। हिन्दी भाषा में मूल विकारी कर्म सम्बन्ध में प्रत्येक सार्वनामिक शब्द की अधिकतम रूप संख्या आठ है। कुछ सार्वनामिक शब्द ऐसे भी हैं जिनकी रूप संख्या न्यूनतम एक भी है। संस्कृत काल में अन्य पु० वाचक सर्वनामों में पुल्लिंग व स्त्रीलिंग के रूप भिन्न थे। म० भा० आ० भा० काल में भी यही स्थिति रही। हिन्दी भाषा में सार्वनामिक रूप पुल्लिंग एवं स्त्री० में समान ही हैं जिनके लिंग भेद की प्रतीति क्रियापदों के आधार पर होती है। परन्तु राजस्थानी भाषा में संस्कृत की भांति अन्य पु० पुल्लिंग एवं स्त्री० में रूप भिन्न हैं।

हिन्दी भाषा के सार्वनामिक रूपों की एक ध्यातव्य विशेषता यह है कि सभी सार्वनामिक शब्दों का विकास संस्कृत से ही हुआ है। हिन्दी

भाषाओं मे सार्वनामिक रूपों का आगम नहीं हुआ है । हिन्दी भाषा के सम्बन्ध वाचक सार्वनामिक रूपों की एक उल्लेखनीय विशेषता है कि इनकी रूप रचना विशेषणवत् विशेष्यानुरूप परिवर्तित होती है यथा—हमारा घर, हमारी पुस्तक आदि । इन्हें यदि सार्वनामिक विशेषण या विशेषणवाची सर्वनाम कहें तो असंगत नहीं होगा ।

३ १ हिन्दी भाषा में उपलब्ध सार्वनामिक रूपों को रूप रचना एवं प्रयोग के आधार पर इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है ।

१ प्रथम वर्ग पुरुष वाचक सर्वनाम

		एक व॰	बहु व॰
क उत्तम पुरुष—	अविकारी कर्ता	मै	हम
	विकारी कर्ता	मैने	हमने
	विकारी रूप	मुझ	हम
	अविकारी कर्म	मुझे	हमें
	विकारी कर्म	मुझ को	हम को
	अविकारी सम्प्रदान	मेरे	हमारे
	विकारी सम्बन्ध	मेरा (पु॰)	हमारा (पु॰)
		मेरी (स्त्री)	हमारी (स्त्री)
		मेरे	हमारे
ख मध्यम पुरुष		एक व॰	बहु व॰
	अविकारी कर्ता	तू	तुम
	विकारी कर्ता	तूने (तुमने)	तुमने
	विकारी रूप	तुझ	तुम
	अविकारी कर्म	तुझे	तुम्हें
	विकारी कर्म	तुझको	तुमको

	अविकारी सम्प्रदान	तेरे	तुम्हारे
	विकारी सम्बन्ध	तेरा (पु०)	तुम्हारा (पु०)
		तेरी (स्त्री)	तुम्हारी (स्त्री)
		तेरे	तुम्हारे

२ द्वितीय वर्ग क अन्य पु० (संकेत वाचक) निकटवर्ती

		एक व०	बहु व०
	मूल रूप	यह	ये इन्होंने
	विकारी रूप	इस	इन
	मूल रूप कर्म	इसे	इन्हें
	दूरवर्ती		
	मूल रूप	वह	वे उन्होंने
	विकारी रूप	उस	उन
	मूल रूप	उसे	उन्हें
ख आदर वाचक एवं	निजवाचक कर्म		आप
ग प्रश्न वाचक	मूल रूप	कौन	क्या
	विकारी	किस	किन
	मूल रूप कर्म	किसे	किन्हें
		एक व०	बहु व०
ग सम्बन्ध वाचक	मूल रूप	जो	जिन्होंने
	विकारी रूप	जिस	जिन
	मूल रूप कर्म	जिसे	जिन्हें
घ अनिश्चय वाचक	अविकारी	कोई	कुछ
	विकारी	किसी	किन्हीं
ङ नित्य सम्बन्धी		सो	
च सर्ववाचक या साकल्य वाचक		सब	

तृतीय वर्ग सार्वनामिक समस्त पद—हुम—गुम आदि ।

राजस्थानी की सार्वनामिक रूप तालिका इस प्रकार है—

प्रथम वर्ग पुरुष वाचक सर्वनाम

		एक व०	बहु व०
क उत्तम पुरुष	अविकारी कर्ता	हूं मूं	म्हे
	विकारी कर्ता	×	×
	विकारी कर्म	मनै	म्हानै
	अविकारी करण एवं अपादान	म्हेंसूं	म्हांसूं
	अविकारी सम्प्रदान	म्हारै	म्होरै म्हारै
	विकारी सम्बन्ध	म्हारा (पु०) म्हारी (स्त्री०) म्हारा	म्हारा (पु०) म्होरी (स्त्री०) म्होरा म्हारा
	विकारी अधिकरण	म्हमे	म्होंमे
ख मध्यम पुरुष		एक व०	बहु व०
	अविकारी कर्ता	तू थू तें, थें	थे, थों
	विकारी कर्ता	×	×
	विकारी कर्म	तनै थनै	थोनै थानै
	विकारी करण— अपादान	थेंसूं म्हेंसूं	थोसूं थ्होंसूं
	अविकारी सम्प्रदान	थारै (पु०)	थोरै थारै
	विकारी सम्बन्ध	थारो थारा (पु०) थारी (स्त्री०)	थोरो (पु०) थारो थोरी (स्त्री०)
	विकारी अधिकरण	थेमे	थोमें थांमें

१ द्वितीय वर्ग क अन्य पुरुष (संकेत वाचक) निकटवर्ती

	एक व०	बहु व०
मूल रूप कर्ता (पु०)	यो, या (स्त्री०)	ए
विकारी रूप	ईये	इयों
विकारी रूप कर्म	ईनै, इयैन	इयोंनै
विकारी करण अपादान	ईसू इयेसू	इयोसू
अविकारी सम्प्रदान	ईरै, इयैर	इयोरै
विकारी सम्बन्ध	ईरो (पु०)	ईयोरो (पु०) ईयांरो
	ईरी (स्त्री)	ईयारी (स्त्री०)
	ईरा	ईयारा
विकारी अधिकरण	ईमे ईयेंमे	इयोम

ख अन्य पुरुष (संकेत वाचक) दूरवर्ती

	एक व०	बहु व०
मूल रूप कर्ता	वो (पु०) वा (स्त्री०)	वे, वो
विकारी रूप कर्म	वैनै	वोन
करण—अपादान	वेसू	वोसू,
सम्प्र०	वैर	वोर
पु० सम्बन्ध	वरो	वोरा वोरी
	वैरी वरा	
(अधिकरण)	वम	वामे

ग आदर वाचक एवं निश्चयवाचक—

मूल रूप — आप

घ प्रश्नवाचक मूल रूप — कुण — क्या

विकारी रूप — किण (कर्ता)

कॅन (कर्म) आदि

	एक व०	बहु व०
ङ सम्बन्ध वाचक मूल रूप	जो, अको	जवे
	जवी	जययो
च अनिश्चय वाचक	कोई	
छ सामस्य वाचक या सर्ववाचक		सब

३ ततीय वर्ग—सार्वनामिक समस्त पद–हू–नू–ओ–बा आदि ।

उपर्युक्त सभी सार्वनामिक रूपों का ऐतिहासिक विकास क्रम एवं प्रयोग-प्रक्रिया का वर्णनात्मक विश्लेषण इस प्रकार है—

३.१.१ पुरुषवाचक सर्वनाम—उत्तम पुरुष, 'मैं' ऐतिहासिक क्रम-संस्कृत काल में कर्तवाच्य उ० पु० एक वचन में 'अस्मद' शब्द का 'अहम्' रूप प्रयुक्त होता था । कर्मवाच्य एवं भाववाच्य तथा क्त आदि प्रत्ययान्त शब्दों में अस्मद शब्द का करण-कारक एक वचन का रूप मया प्रयुक्त होता था । प० कामताप्रसाद हिन्दी 'मैं' का उद्भव सं० 'अहम्' से मानते हैं परन्तु डा० बाम्स बेलाग, डा० चटर्जी, डा० वर्मा, डा० तिवारी आदि सभी भाषाविद इसका उद्भव करण कारक के रूप 'मया' से मानते हैं । डा० भोलानाथ ने इसका विकास क्रम इस प्रकार दिया है—

सं० मया>पा० मया० प्रा० मइ अप० मइ हि० मैं । वस्तुतः 'मैं' का उद्भव संस्कृत 'मया' से ही मानना संगत है क्योंकि इसका ऐतिहासिक विकास क्रम उपलब्ध है । दूसरा संस्कृत काल में कर्म एवं भाव वाच्य में प्रयुक्त करण-कारक का रूप हिन्दी भाषा में कर्तवाच्य में कर्त्ता कारक के रूप में प्रयुक्त होने लगा है । सं० मया पालि काल में मया, मे रूप में प्रयुक्त होता था । प्राकृत काल में यह मे, ममाइ रूप में प्रयुक्त होता था ।[1] अपभ्रंश काल में यह रूप मइ रूप में प्रयुक्त होने लगा था ।[2] यथा—मा

---

१ वररुचि प्राकृत प्रकाश आङि म ममाइ ६/४५

२ हेमचन्द्र अपभ्रंश व्याकरण टा ङ्यमा मइ | ३६६ |

मइ जाणिउ पिग्र विरहिग्रह कवि धर होइ विग्रालि स० — मया ज्ञात प्रिय विरहिताना कापि धरा भवति विकाले हिन्दी भाषा म यही मइ>मै रूप म प्रयुक्त होता है—स० मया पा० मया, म, प्रा म, ममाइ (करण) मइ मरा[1] (सप्तमी) अप० मइ हि० म ।

राजस्थानी भाषा म उ० पु० अविकारी कर्त्ताकारक एक वचन म 'हू' मू' रूप प्रयुक्त होते है । इन रूपा का विकास सस्कृत क अहम् सेही हुग्रा है । स० अहम् प्रा० अह प्रा० ह अह अहग्र * अप० हउ[2] राजस्थानी म यही हउ सधि नियमो से हू रूप म प्रयुक्त होता है ।
डा० श्याम सुन्दरदास ब्रज हौ राज० हू आदि का विकास इस प्रकार मानते हैं— स० ग्रहम्>प्रा० अम्हि अप० हउ हि हौ ह । अह से अम्हि मानना असगत है । क्याकि पालि एव प्राकृत दोनो म ही ग्रहम् का विकसित रूप ग्रह अहग्र ह विद्यमान है । अम्हि कर्त्ताकारक के रूप म कही उपलब्ध नही होता । हानले, पिशेल ने ग्रह के साथ क स्वार्थ प्रत्यय की कल्पना की ह । यह धारणा भी कल्पना मात्र है । डा० चटर्जी—डा० वर्मा भी इसी मान्यता के समर्थक है । पर डा० भोलानाथ ने इस भ्रात माना है । वस्तुत ब्रज हौ राज० हू के लिये अहक रूप की कल्पना निराधार है । सस्कृत ग्रहम् स अपभ्रश काल तक इसका पूर्ण विकसित रूप उपलब्ध होता है जिसका विकसित रूप ऊपर दिया जा चुका है । राजस्थानी म हउ हू है एव ब्रज म इसी का गुणीय रूप हौं है अत विदेशी मन्तव्य के अनुकरण पर निरर्थक कल्पना अवाछनीय है ।

प्रयोग—हिन्दी भाषा म मै का प्रयोग कर्त्ताकारक क मूल रूपा म होता है । इसके विकारी रूपा म न अनुसर्ग का प्रयोग भूतकालिक रूपा म होता है । राजस्थानी भाषा म उ० पु० कर्त्ता एक वचन का विकारी रूप नही है ।

---

३ वररुचि . प्राकृत प्रकाश डौच मइ मरा ६/४५

हम— इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वान मतैक्य नहीं है। हिन्दी व्याकरण के कामता प्रसाद गुरु ने अह प्रा० अम्हे हि० हम के रूप में इसका विकास मानते हैं। वैयाकरण होकर प्राकृत में अहम् का रूप अम्ह बताना चिन्त्य है एवं व्याकरणिक परम्परा के विरुद्ध है। प्राकृत में अहम्>हं अहं, अहम्म रूप में उपलब्ध होता है।[1] डा० सुनीतिकुमार, डा० धीरेन्द्र वर्मा वदिक अस्मे एवं डा० उदयनारायण अम्म' से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। वैदिक काल में 'अस्मे रूप अधिकरण बहु वचन में लब्ध होता है न कि प्रथमा बहु वचन में। डा० भोलानाथ के अनुसार वैदिक स० अस्म म० अम्म (कल्पित) पा० अम्हे अम्ह>हम के रूप में इसका विकास हुआ है। मेरे विचार में इस सर्वनाम का विकास संस्कृत के 'अस्मद् शब्द से हुआ है। वैदिक काल में 'अस्मद् का सप्तमी बहु वचन रूप 'अस्मे' था। लौकिक संस्कृत काल में 'अस्मे रूप लब्ध नहीं होता। पालि में अस्मद्' शब्द 'अम्ह के रूप में उपलब्ध होता है एवं द्वि०बहु वचन अस्मे' इसके अम्हे अम्हे रूप में लब्ध होते हैं।[2] अप० काल में प्रथमा एवं द्वितीया बहु वचन में इसका अम्हे, अम्हइं रूप लब्ध होता है।[3] हिन्दी भाषा में यही रूप हम, हम के रूप में प्रचलित हुआ है—अतः इसका विकास क्रम इस प्रकार है०—

वदिक स अस्म (अधिकरण बहु वचन) प्रा० अम्ह (प्र०द्वि०ब०व०) अप० अम्हे अम्हइं (प्र०द्वि०ब०वचन)हि हम हम। राजस्थानी भाषा में उ०

---

१ अस्मदोहमहमहम्म सौ 'वररुचि प्राकृत प्रकाश ६/४१

२ स म य म स्मा म्ह स्स २/२११ पालि महा व्याकरण
  ग अम्हे जस शसो वररुचि प्राकृत प्रकाश ६/४४

३ जस शसो रम्हे अम्हइं /३७६/ अपभ्रंश व्याकरण।
  अम्हे देक्खइ, अम्हइं देक्खइ

पु० बहु व० में म्हे' रूप प्रयुक्त होता है इसका विकास क्रम इस प्रकार है— वैदिक स० ग्रस्मे पा० ग्रम्हे प्रा० ग्रम्ह ग्रप० ग्रम्हे राज० म्हे (ग्राद्य स्वर लोप) हिंदी म ग्रम्हे ग्रम्हइ से हम, हम रूप विकसित होने का कारण ग्र' पर बल होने से ह का ग्रागम एव राजस्थानी से ग्रम्ह स म्हे' विकसित होने का कारण ग्रन्त्य ध्वनि पर बल होने से ग्रादि ध्वनि का लोप है।

डा० उदयनारायण तिवाडी ने हिन्दी हमें में ए का ग्रागम सस्कृत की करण-कारक की विभक्ति एन से माना यह सवथा ग्रसगत है क्योंकि इसका स्पष्ट पूव रूप 'ग्रम्हइ ग्रपभ्रश म लब्ध होता है यथा ग्रवम न सुग्रहिं सुन्च्छिग्रहिं जिव ग्रम्हइ तिव ते वि हिन्दी म यही ग्रम्ह" ग्र<ह एव म् ग्रइ>मे हम म परिवर्तित हुग्रा है। मुझ, व्युत्पत्ति इस सवनाम का व्युत्पत्ति के सम्बध म हानल की मा यता है कि यह स० मदीय' से विकसित हुग्रा हैं। पर यह धारणा सवथा ग्रसगत है। डा० उदयनारायण डा० भोलानाथ डा० वर्मा ग्रादि सभी भाषाविद इसकी व्युपति स० मह्यम (चतुर्थी ए० व०) से मानते है। डा० भोलानाथ ने इसका विकास इस प्रकार बताया है—स० मह्यम् पा० मय्ह प्रा० मज्झ ग्रप० मज्झ मज्झु हि० मुझ। मेरे विचार म इसका विकास क्रम इस प्रकार है— स० मह्यम् (सम्प्रदा ए० व०) पा० मय्ह (सम्प्रदान सम्बध ए० व०) प्रा० मज्झ (सम्बध एक व०) ग्रप० मज्झु हि० मुझ। इस सवनाम के कारकीय रूपा मे सर्वाधिक परिवतन हुग्रा है।

स० मह्यम पालि काल म सम्प्रदान एव सम्बध एक व० में प्रयुक्त होता था।[2] प्रा० में यह केवल सम्ब ध कारक म ही प्रयुक्त होता था।[1] ग्रप० काल म यह ग्रपादान एव सम्बध एक व० म मज्झु रूप मे प्रयुक्त होता था। हिन्दी भाषा म विपयय प्रक्रिया स मुझ रूप विकारी रूपों (मुझको मुझ से ग्रादि) एव सम्बध एक व० मे प्रयुक्त होता है यथा

१ म मम मह मज्झ इसि प्रा० प्रका वररुचि ६/५०
२ ग्रगले पृष्ठ की स० १ पाद टिप्पणी देखें।

'मुझ जसा विद्वान कौन होगा ?'[१]

मुझ—'मुझ म ए क आगम क सम्बध म भाषाविदो म मतक्य नहीं है। डा० वर्मा इसे विकारी 'ए' (लडके, घोडे) मानते हैं। पर यह मत नहीं क्योंकि सभा रूपा के विकारी 'ए का प्रयोग सवनामों म असगत ही नही भा० प्र० भा० की विशेषताओ क आधार पर असभव भी है। डा० भोला नाथ न संस्कृत कल्पित रूप मुम्हें प्रा० तुज्झे अप० तुज्झे से इसका विकास माना है पर यह कल्पना का आश्रय मात्र है। मेर विचार म मुझ म 'ए का आगम प्रा० अप० अस्मद् युष्मद् सवनामो क प्रथमा व द्वितीया बहु व० के रूपों में प्रयुक्त 'ए (तुम्हें अम्हे)[२] अद (तुम्हइ अम्हइ) > 'ए के साम्य पर ही हुआ है। 'मुझे शब्द भी हिंदी भाषा म कम' म ही प्रयुक्त होता है अत मत की पुष्टि हो जाती है।

मेरा व्युत्पत्ति—इस सवनाम की व्युत्पत्ति के सम्बध में भाषा-विदो म मतक्य नही है। बाप न मदीय सम्कृत-चीनी कोष (फा-यूत्स-मिङ) के अनुकरण पर (ममेर) डा० उदयनारायण डा० वर्मा पिशेल, केलाग आदि ने स० मम+केर (ममेर—मेर) से इसकी व्युत्पत्ति मानी है। डा० भोलानाथ तिवाडी ने इसका विकास क्रम इस प्रकार दिया है—

क स० मह्य +कृतक > मह्—केरक > मएरह > मेरा

ख स मम+कृतक > मम-करक > ममेरअ > मरा

मेरे विचार म डा० भोलानाथ द्वारा दत्त 'मेरा सर्वनाम का द्वितीय विकास क्रम अधिक उचित है।

राजस्थानी भाषा में मरा के स्थान पर सम्बध एक व० म म्हारो रूप प्रयुक्त होता है। उसका विकास क्रम इस प्रकार है—स० अस्मदीय अप० अम्हार रा० म्हार आ—अपभ्रश काल मे संस्कृत के 'ईय

---

१ मह्न मज्झु ङसि ङम्भ्याम् अप० व्याकरण /३७६/

२ अम्हे थोवा रिउ बहुअ कायर एम्ब भणन्ति

प्रत्यय को डार (श्रार) श्रादेश होता था।[1] इसी से सम्बन्ध कारक 'व
'र का विकास हुआ है। इन सर्वनाम रूपों का विशेषणवत् प्रयोग होता है
य विशेष्य के लिंग वचन के अनुसार परिवर्तित होते हैं यथा—मेरा, मेरी
मेरे। यहा यह उल्लेख्य है कि हिन्दी भाषा म मेरे रूप सम्प्रदान एव व० में
प्रयुक्त होता है। पालि काल म ही चतुर्थी षष्ठी के रूपो का समान प्रयोग
होना प्रारम्भ हो गया था। प्राकृत म तो चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी ही
प्रयुक्त होती थी।[2] श्रप० म भी षष्ठी विभक्ति चतुर्थी के स्थान पर प्रयुक्त
होती थी। हिन्दी भाषा मे मेरे सवनाम सम्बन्ध एव सम्प्रदान दोनो मे ही
प्रयुक्त होता है।

हमारा हमारे हमारी। इनका उद्भव एव विकास डा० उदय-
नारायण ने श्रस्म कर डा० वर्मा ने श्रम्ह-करको एव डा० भोलानाथ ने
श्रस्मद् या श्रस्मे—कायक > श्रम्ह-करश्रो > हम्म—श्ररश्रा हम्मारउ—हमारा
के रूप म इसका विकास माना है। मेरे विचार म इसका विकास क्रम इस
प्रकार है—

हमारा स० श्रम्मदीय श्रप० श्रम्हार हि० हमार—श्रा (पु०)। हमारे
स० श्रस्मदीयेन श्रप० श्रम्हारेण हि० हमारे राज० भाषा म सम्बन्ध बहु व०
म्हारा रूप प्रयुक्त होता है जिसका विकास क्रम श्रस्मद्— डार स ही है।

३ १ २ मध्यम पु० वाचक सवनाम 'तू' व्युत्पत्ति—

डा० सुनीतिकुमार हानले इसकी व्युत्पत्ति स० त्वम् से स्वीकार
करते हैं। डा० वर्मा स० त्वया एव डा० उदयनारायण वैदिक तु एव त्वम्
प्रा० तू से इसका सम्बन्ध जोडते हैं। तेसीतोरी स० कल्पित रूप त्व कम्
से इसका विकास मानते हैं। डा० भोलानाथ ने डा० सुनीतिकुमार एव हार्नले

---

१ युष्मदस्मदीस्य डार ४३४ हेमचन्द्र श्रप० व्याकरण

२ चतुर्थ्यां षष्ठी वररुचि प्रा० प्रकाश ६६४

ने मन में अपनी सहमति व्यक्त करते हुए इसका विकास क्रम इस प्रकार बताया है—सं० त्वम् > पा० त्व > तुव > प्रा० तु, तुव, तुह > अप० तुह, हि० तू, तू। उपयुक्त मतों में सगत मत त्वम् से सम्बन्धित व्युत्पत्ति से ही अधिक है क्योंकि सं० त्वम् प्र० एक वचन में प्रयुक्त होता था। पालि काल में यह त्व के रूप में प्रयुक्त होता था। प्रा० काल मे त, तुम (प्रथमा०एकव०) तु (द्वि० ए० व०) में प्रयुक्त होता था।[1] अप० काल में यह तुह (प्र० ए० व०) के रूप में प्रयुक्त होता था।

यथा— भमर मा रुणु झुणि रण्णडइ सा दिसि जोइ म रोइ

सा मालइ दस त रिम्र जसु तुहुँ मरइ विओइ।

हिंदी भाषा में उ+उ=ऊ संधि नियम एवं अन्त्य 'ह' का लोप होकर तू रूप बना है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है—सं० त्वम् पा० प्रा० त तुम (प्र० ए० व०) तु (द्वितीया द्वि० ए० व०) अप० तुहु 'हि तू। इस विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि 'तू' की व्युत्पत्ति डा० वर्मा द्वारा 'त्वया' से एवं तेसीतोरी द्वारा 'त्वकम्' से मानना सर्वथा गलत है।

राजस्थानी भाषा में 'तू' थू तं थं रूप म० पु० ए० व० में प्रयुक्त होते हैं। तू थू का निकास तो हिंदी की भांति 'त्वम्' से ही है। थू 'ह' के कारण तू' का महाप्राणीकृत रूप ही है। तें थें का विकास सं० त्वया (तृ० ए० व०) एवं त्वयि (सप्तमी ए० व०) से हुआ है। प्रा० काल में ये रूप तइ तए रूप में लब्ध होते हैं।[3] अप० काल में यह तइ

---

१ क युष्मदस्त तुम ६/२६ वररुचि
ख वही ६/२७ वही

२ युष्मद सो तुहुँ अप० व्याकरण ३६८

३ टा ङ्या स्तइ तए तुमए तुमे प्राकृत प्रकाश ६/३०

पइ रूप में नष्ट होता है ।[1] राजस्थानी में यह तइ (थ^∧ए) तें रूप में विकसित हुआ है एवं 'थें' इसका महाप्राणीकृत रूप है । राजस्थानी में इन रूपों के प्रयोग में भी भिन्नता है । तें थें रूप भूतकालिक 'क्त' प्रत्ययान्त रूपों के साथ ही प्रयुक्त होता है जो परम्परागत है एवं तू थू प्र० एक वचन अधिकारी रूप मे प्रयुक्त होता है ।

तुम—इसकी व्युत्पत्ति पिशेल ने स० के कल्पित रूप तुष्म से मानी है । डा० सुनीतिकुमार, डा० वर्मा, डा० उदयनारायण एवं डा० भोलानाथ ने इसी मत का अनुकरण किया है । हिन्दी वैयाकरण प० कामताप्रसाद स० त्वम् से ही इसे उद्भूत मानते हैं । डा० भोलानाथ ने संस्कृत एक वचन के त् से प्रारम्भ होने वाले रूपों का पालि काल में 'य' से प्रारम्भ होने वाले बहु० व० के रूपो पर प्रभाव बताया है एवं पिशेल की कल्पना (तुष्म) को निराधार बताया है पर साथ ही स्वयं डा० भोलानाथ ने इसका विकास क्रम इस प्रकार बताया है—वैदिक स० युष्मे>लौकिक स० युष्म>संस्कृत-पालि-अधिकारा तुम्ह पा० तुम्ह प्रा० तुम्हे अप० तुम्हे परवर्ती अप० तुम्ह हि० 'तुम' ।

मेरे विचार में तुष्म की कल्पना निराधार है । वैदिक काल में युष्मे शब्द सप्तमी ब० व० में प्रयुक्त होता था एवं व्यत्यय प्रक्रिया प्रबल थी परिणामत पालि कालतक युष्म तुम्ह द्वि व म प्रयुक्त होने लगा था । संस्कृत काल में य>त में परिवर्तन की प्रक्रिया संस्कृत काल में भी विद्यमान थी । जिसका संकेत पाणिनि ने त्वाहो सौ (७/२/९४) सूत्र म किया है । बहु व० के रूपो में य त में परिवर्तित नहीं होता था पालि काल तक य>त परिवर्तन प्रक्रिया बड़ी एवं संस्कृत युष्मद शब्द ही तुम्ह में बदल गया एवं इसका द्वि० ब० व० में तुम्हे का लोप होता है । यह एक प्रश्न और सामने आता है कि 'युष्मद् शब्द में त्' आगम कैसे हुआ । जबकि भारोपीय भाषाओं में इसका उल्लेख नहीं मिलता जैसा कि डा० भोलानाथ ने इसके उदाहरण दिए हैं ।

---

१ टा-इयमा पइ तई अप० व्याकरण /३७०

मेरे विचार में युष्मद् शब्द में 'त' का आगम अन्त्य 'द्' का प्रभाव है। संस्कृत काल में अन्त्य 'द्' 'त' में अनेक स्थलों पर परिवर्तित होता है। अतः त का आगम अन्त्य द् से मानना सगत होगा। प्रा० काल में प्र० ब० में तुम्हे रूप लब्ध होता है। अप० काल में तुम्हे प्र० ब० व० में तुम्हे तुम्हइं रूप में विकसित हुआ है। मेरे विचार में इस सर्वनाम के विकास की एक और संभावना है। प्राकृत काल में प्र० एक वचन में तुम एवं अपादान एक व० में तुमो, तुह तुम्ह, तुम्म व बहु व० में तुम्हा रूपों प्रचलन था।[1] 'तुम' का संबंध 'तुम तुम्ह 'तुम्म' से भी जोड़ा जा सकता है। यहां यह प्रश्न उठता है कि एक वचन का रूप तुम एवं अपादान एक वचन तुम्म, तुम्ह, तुम्हा रूपों का संबंध कर्ता एक वचन व बहु वचन से कैसे हो सकता है? हिन्दी तक रूप ह्रास परंपरा के कारण ऐसा संभव हो सकता है। इसमें हिन्दी भाषा में तुम एक वचन में भी प्रयुक्त होता है।

राजस्थानी भाषा में उ० पु० बहु० वचन में थे रूप प्रयुक्त होता है इसका विकास में युष्माभि (तृ० ब० वचन) प्रा० तुज्झेहि तुम्हेमि तुम्हेहि अप० तुम्हे राज० तुह तूह थूह थे के रूप में विकास हुआ है।

तुझ, तुझे—डा० वर्मा एवं डा० उदयनारायण इसका उद्भव सं० तुभ्यम्>प्रा० तुज्झ हि० तुझ मानते हैं। पिशेल ने मह्यम के आधार पर तह्यम् की कल्पना कर इसका विकास तुह्यम् से माना है। डा० भोलानाथ ने 'तुह्य' का कल्पित न मानकर वैदिक काल में प्रयुक्त माना है। मेरे विचार में सं० तुभ्यम् से ही इसका विकास हुआ है। वैदिक वैयाकरणिक पुस्तक एवं ऋग्वेद संहिता प्रयत्न पूर्वक ढूंढने पर भी मुझे तुह्यम उदाहरण नहीं मिला। बल्कि तुभ्य रूप ही मिला।[2] डा० भोलानाथ ने भी इसका

---

[1] जैसे—तुमा तुम्ह तुम्हइं अप० व्याकरण २६६
[2] अगले पृष्ठ की सं० १ पाद टिप्पणी देखें।

प्रमाण नही मिला । हा सस्कृत परवर्ती काल (पा० प्रा० अप०) मे 'भ>'ह मे परिवर्तन की प्रक्रिया प्रचुरता से मिलती है ।[1] अत प्रा० काल मे तुहय >तुज्भ हुआ होगा । प्रा० काल मे 'तुज्भ' अपादान एव सबध मे प्रयुक्त होने लगा ।[2] अप० मे यह अपादान एव सबध मे 'तुभ' रूप मे ही प्रयुक्त होता था ।[3] हिन्दी मे यही 'तुभ' शब्द 'तुभ जैसा विद्वान कौन होगा ?' आदि रूप मे प्रयुक्त होता है । तुभे का उद्भव स० तृतीया ब० वचन 'युष्माभि' से हुआ है प्रा० काल मे युष्माभि तुम्हि तुज्भेहि रूप मे विकसित हुआ । अप० मे यह तुम्हेहि तुज्भेहि (करण ब० व०) रूप मे प्राप्त होता है । हिन्दी मे यही तुभे कर्म रूप मे प्रयुक्त होता है । डा० वर्मा ने तुभे मे 'ए' का आगम विकारी ए (लडके घोडे) से माना है जो अत्यत चिन्त्य एव भ्रामक धारणा है । यह ऊपर के विकास क्रम से सिद्ध हो जाता है । डा० भोलानाथ ने इसका विकास प्रा० तुभे (कर्म ब० वचन) से माना है एव इसके वैदिक तुह्यो रूप की कल्पना की है । उन्होंने इसका विकास क्रम इस प्रकार किया है—स० तुह्यो (स० कल्पित) प्रा० तज्भे (कर्म) अप० तुज्भे हि० तुभे (कर्म) । मेरे विचार मे यह कल्पना मात्र है प्रमाण युक्त नही । प्रथम तो वैदिक एव लौकिक सस्कृत मे सप्रदान मे 'तुह्यो' रूप ही लब्ध नहीं होता दूसरा यदि 'तुह्यो' मान भी ले तो इससे तुज्भ रूप सभव

---

० द्रष्टव्य क A A Macdonall –

A Vedic Grammer for students

ख Ghate s lectures on Rigveds

१ सघधधभा ह वररुचि २/२७

२ ङसि ङस्भ्या तउ तुज्भ तुघ्र अप० व्याकरण ३७२

३ तुज्भे हि तुह्मेहि तुम्हहि भिसि ६/४४ प्रा० प्रकाश वररुचि

४ भिसा तम्हि अप० या० ३७१

नगी "समें जो 'ज झ है वह म् भ का विकास है। अत इसका उद्भव उपयुक्त विकासानुरूप ही मानना सगत है।

'तुम्ह' का विकास वनिक म० युग्म पा० तुम्ह प्रा० तुह्मे (प्र० ब०) अप० तुम्ह (प्र० द्वि० बहु) से मानना चाहिए। डा० वर्मा ने अप० 'तुम्हइ' से इसका विकास माना है। पर यह सगत नही बल्कि पूर्व विकास क्रम ही सगत है। राजस्थानी भाषा म कम कारक 'तने थन थानेरूप प्रयुक्त होते है। ने हिन्दी म कर्त्ता कारक का परसग है जबकि राजस्थानी म कम कारक का।

तुम्हारा—हिन्दी भाषा मे यह सार्वनामिक रूप सबध एक वचन मे प्रयुक्त होता है। इसकी व्युत्पत्ति भी भाषाविदो न मेरा की भांति युग्मदीय तम्हकरको युग्मकेर युष्मकायक, युष्मे+कायक् से मानी है। डा० भोलानाथ ने इसका विकास क्रम इस प्रकार बनाया है —

क युग्मकामक (स० कल्पित रूप)>तुम्हकारको>तुम्हारउ तुम्हारा

ख तुम्केरो>तुम्हएरा>तुम्हअरा>तुम्हारा। मरे विचार म इसका विकास स० युग्मदीय रूप से ही है क्योंकि स० ईय (सार्वनामिक अस्मद्‌-युग्मद मे) प्रत्यय का अप० म डार आदेश होकर तुम्हार' रूप सिद्ध होता था। इसी तुम्हार से तुम्हारा' रूप हिन्दी म प्रचलित हुआ है। यहा प्रश्न उपस्थित होता है डार' का विकास अप० म कम हुआ। मरे विचार म अप० म ड स्वार्थे प्रत्यय का बाहुल्य था। इसी के प्रभाव से डार विकसित हुआ होगा। हिन्दी स्त्री० सबध म तुम्हारी रूप हि० स्त्री० वा० प्र० ई० के योग स बनता है।

तेरे तुम्हारे— इन रूपो का विकास भी युग्मदीय+डार त० एक वचन त० युग्मदीयेन अप० तुहारएण[1] हि० तारे तेरे तुम्हारे आदि के रूप म हुआ है। राज० भाषा म थारे थांर रूप प्रयुक्त होत है। राजस्थानी

---

1 मदते काद तुहारेण ज मगना त मिनिजइ

भाषा में ये रूप संबंध एवं सम्प्रदान में प्रयुक्त होते हैं । वस्तुतः पालि में ही चतुर्थी 'षष्ठी का व्यत्यय प्रारंभ हो गया था । हिन्दी में भी ये रूप सम्प्रदान संबंध में प्रयुक्त होते हैं ।

३ १ ३ अन्य पु० (संकेत वाचक) निकटवर्ती यह—इसका उद्भव स० एतद्' सर्वनाम के प्र० वि० के एक वचन पु० रूप एष से हुआ है । स० एष पालि काल में 'एहो में परिवर्तित हुआ है । प्राकृत काल में 'एस में विकसित हुआ । अप० में यह सर्वनाम 'एहो के रूप में पालिवत् रहा । हिंदी भाषा में यह 'एह' 'यह' रूप में विकसित हुआ है । इलाहाबाद आदि क्षेत्रों में आज भी 'यह' उच्चरित न होकर एह' ही होता है ।

राज० भाषा० में अन्य पु० (संकेत वा०) पु० ए० व० में ओ (यो) स्त्री० लिं० में आ (या) रूप प्रयुक्त होते हैं । हिन्दी भाषा में जहां अन्य पु० सर्वनाम यह स्त्रीलिंग एवं पुल्लिंग में समान है वहां राजस्थानी में लिंग भेद है । इससे राजस्थानी भाषा में संस्कृत की अन्य पु० सर्वनाम की परम्परा अक्षुण्ण रहने का संकेत मिलता है । संस्कृत में भी इन सर्वनामिक रूपों में लिंग भेद था । इनका विकास क्रम इस प्रकार है —

ओ (यो) स० एष पा० एसो प्रा० एहो अप० एसो एहु रा० उउ ओ० (यो)
आ (या) स एषा पा० एसा प्रा० एस एसा[1] अप० एह रा० एअ आ (या)

ये—इसका उद्भव स० एतत् के पु० प्र० वि० बहु० व० के रूप एते' से हुआ है । एते पालि काल में एते' (प्र द्वि बहु व) ही रहा । प्रा काल में यह एते, एद रूप में विकसित हुआ । अप काल में यह 'एइ' (प्र द्वि ब वचन) रूप में प्रयुक्त होता था ।[2] यथा— एइ ति घोड़ा एह थलि' (३३०/४) हि भाषा में ऐइ>ए ये (श्रुत्यागम) रूप में प्रयुक्त होता है । डा सुनीतिकुमार ने इसकी व्युत्पत्ति स एतत् के करण कारक बहु व

---

१ एतद् सा वो स्व वा प्राकृत प्रकाश वररुचि ६/१६

२ ऐइर्जश्शसो अप० व्याकरण ३६२

प्रा० इस (नपु०) हि० इन। इन्ह में 'ह' का आगम 'तुम्ह' तुम्हह के सादृश्य पर हुआ है।

११४ अय पु० (संकेत वाचक) दूरवर्ती—वह

इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषाविदों में मतैक्य नहीं है। हिन्दी वैयाकरण प० कामताप्रसाद एवं प० किशोरीदास वाजपेयी इसका विकास स० वद् के प्रा० ए० व० रूप स' से मानते हैं। प० किशोरीदास के अनुसार इसका विकास-क्रम इस प्रकार है—स० स प्रा० सो>ओस (वर्ण-व्यत्यय)> ओह>वह।

वैयाकरणों की यह मान्यता सगत नहीं क्योंकि भा० आ० भा० की विशेषताओं के अनुरूप ऐसा वर्ण-व्यत्यय (सो>ओस) सम्भव नहीं। दूसरा पा० प्रा० एवं अपभ्रंश में इसका इस रूप में प्रयोग भी प्राप्त नहीं होता। ट्रम्प ने प्रा० इ से (स० मूल स्व) कैलाग ने इ (इम) के सादृश्य पर कल्पित उ (उम) कल्पित रूप से, डा० उदयनारायण ने स० असौ एव डा० सुनीतिकुमार व डा० भोलानाथ ने मूल भारतीय भाषा के अव रूप से इसका सम्बन्ध जोड़ा है। उक्त मतों में ट्रम्प एव कैलाग का मत सर्वथा त्याज्य है। डा० सुनीतिकुमार एवं डा० भोलानाथ के अनुसार इसका विकास क्रम इस प्रकार है—मूल अव> भारत-ईरानी मूल अव स० अव (प्रथमा एक व०)>पा० अवो>प्रा० वो> अप० वो ओ ओउ आ० प्राचीन हि० वहु हि=वह। डा० भोलानाथ आदि की यह मान्यता सगत नहीं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क हैं—प्रथम तो स० प्रा० अप० तक ऐसे रूप (अव, अवो आदि) उपलब्ध नहीं होते। स्वयं डा० तिवारी का कहना है कि पूरी स्थिति पर दृष्टि डालने पर ऐसा लगता है कि वैदिकी संस्कृत पालि प्राकृत में इसके प्रयोग साहित्य में प्रायः नहीं हुए किन्तु जन भाषा में वे न्यूनाधिक रूप में प्रयुक्त होते रहे। वदिक ग्रंथो के बाद अप० में इसके रूप दिखाई पड़ते हैं— ओइ। जइ पुच्छइ घर ता बड्डा घर आन्न।

भाषा म य रूप सबध एव सम्प्रदान म प्रयुक्त होते है। वस्तुत काल म ही चतुर्थी 'षष्ठी का व्यत्यय प्रारभ हो गया था। हिन्दी म भी य रूप सम्प्रदान सबध मे प्रयुक्त होते है।

३ १ ३ अन्य पु० (सकेत वाचक) निकटवर्ती यह—इसका उद्भव स० एतद् सवनाम के प्र० वि० के एक वचन पु० रूप एष से हुआ है। स० एष पालि काल म 'एहो म परिवर्तित हुआ है। प्राकृत काल मे 'एस म विकसित हुआ। अप० मे यह सवनाम 'एहो के रूप मे पालिवत् रहा। हिन्दी भाषा मे यह 'एह' 'यह' रूप म विकसित हुआ है। इलाहाबाद आदि क्षेत्रो म आज भी यह' उच्चरित न होकर एह' ही होता है।

राज० भाषा० म अन्य पु० (सकेत वा०) पु० ए० व० म ओ (यो) स्त्री० लि० में आ (या) रूप प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी भाषा म जहा अन्य पु० सर्वनाम यह स्त्रीलिंग एव पुल्लिग म समान है वहा राजस्थानी म लिंग भेद है। इससे राजस्थानी भाषा म सस्कृत की अन्य पु० सवनाम की परम्परा अक्षुण्ण रहने का सकेत मिलता है। सस्कृत म भी इन सर्वनामिक रूपो म लिंग भेद था। इनका विकास क्रम इस प्रकार है—

ओ (यो) स० एष पा एसा प्रा० एहो अप० एसो एहु रा० ऊउ आ० (यो)
आ (या) स एषा पा० एसा प्रा० एस एसो[1] अप० एह रा० एग्र आ (या)

ये—इसका उद्भव स० एतत् के पु० प्र० वि० बहु० व० के रूप एते' से हुआ है। एते पालि काल म एते' (प्र द्वि बहु व) ही रहा। प्रा काल म यह एत, एद रूप म विकसित हुआ। अप काल म यह 'एइ (प्र द्वि ब वचन) रूप म प्रयुक्त होता था। यथा— एइ ति घोड़ा एह थलि' (३३०/४) हि भाषा मे ऐइ>ए य (श्रु यागम) रूप म प्रयुक्त होता है। डा सुनीतिकुमार ने इसकी व्युत्पत्ति स एतत् के करण कारक बहु व

---

१ एतद् सा वो त्व वा प्राकृत प्रकाश वररुचि ६/१६
२ ऐइर्जस्शसो अप० व्याकरण ३६३

प्रा० इए (नपु०) हि० इन । इह में 'ह' का आगम 'तुम्ह' 'तुम्हह' के सादृश्य पर हुआ है ।

२.१४ अन्य पु० (संकेत वाचक) दूरवर्ती—वह

इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषाविदों में मतैक्य नहीं है। हिन्दी वैयाकरण पं० कामताप्रसाद एवं पं० किशोरीदास वाजपेयी इसका विकास सं० तद् के प्र० ए० के रूप 'स' से मानते हैं । पं० किशोरीदास के अनुसार इसका विकास-क्रम इस प्रकार है—सं० स प्रा० सो > ओस (वर्ण-व्यत्यय) > आह् > वह् ।

वैयाकरणों की यह मान्यता संगत नहीं क्योंकि भा० आ० भा० की विशेषताओं के अनुरूप ऐसा वर्ण-व्यत्यय (सो > ओस) सम्भव नहीं । दूसरा पा० प्रा० एवं अपभ्रंश में इसका इस रूप में प्रयोग भी लब्ध नहीं होता । ट्रंप ने प्रा० ह सें' (सं० मूल स्व) बलाग ने इ (इम) के सादृश्य पर कल्पित उ (उम) कल्पित रूप से, डा० उदयनारायण ने सं० असौ एवं डा० सुनीतिकुमार व डा० भोलानाथ ने मूल भारोपीय भाषा के अव रूप से इसका सम्बन्ध जोड़ा है । उक्त मतों में टम्प एवं बलाग का मत सर्वथा त्याज्य है । डा० सुनीतिकुमार एवं डा० भोलानाथ के अनुसार इसका विकास क्रम इस प्रकार है—मूल अव > भारत-इरानी मूल अव सं० अव (प्रथमा एक व०) > पा० अवो > प्रा० वो > अप० वा, ओ आउ ओइ प्राचीन हि० वहु हि०—वह । डा० भोलानाथ आदि की यह मान्यता संगत नहीं । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क हैं-प्रथम तो सं प्रा० अप० तक ऐसे रूप (अव, अवो आदि) उपलब्ध नहीं होते । स्वयं डा० तिवाड़ी का कहना है कि 'पूरी स्थिति पर दृष्टि डालने पर ऐसा लगता है कि वैदिकी संस्कृत पालि, प्राकृत में इनके प्रयोग साहित्य में प्राय नहीं हुए किन्तु जन भाषा में वे न्यूनाधिक रूप में प्रयुक्त होते रहे । वैदिक अवो के बाद अप० में इसके रूप दिखाई पड़ते हैं— ओह । जइ पुच्छइ घर तो वड्डा घर ओइ।

दूसरे वैदिक काल से स० पा० प्रा० तक ये रूप प्रयुक्त नहीं हुए एवं अप० में ओइ रूप में प्रयुक्त होने लग सर्वथा असंगत है। अप० आई सं० अमूनि प्रा० अमूइ अप० आइ का विकसित रूप है न कि अव का ओइ एवं इसका प्रयोग भी प्रा० अप० में प्रथमा बहुवचन में ही होता था।

तीसरे म० काल में उ, ऊ>आ >अव अथवा अव>'ओ में परिवर्तित होता था। मूल भारतीय का 'अव का पा० आदि तक 'अव रूप में ही चला आना सम्भव नहीं। मेरे विचार में इसका विकास क्रम सं० अदस (वह) के प्रथमा एक व० के रूप 'असौ से ही मानना उचित है। इसकी विकास परम्परा भी उपलब्ध है। स० असौ पा० काल में असु अमुको रूप में प्रयुक्त होता था। यथा—असु पुरिसो असु इत्थी। प्रा० काल में यह अह' रूप में प्रयुक्त होता था।[1] डा० भोलानाथ ने मान्यता व्यक्त की है कि प्राकृत में अह का प्रयोग भी संदिग्ध है। पर यह संगत नहीं क्योंकि प्राकृत भाषा एवं साहित्य में अह का प्रयोग स० अदस (वह) के स्थान पर प्रयुक्त होता था।[2] अप० काल में अह अहु प्र० एक वचन में प्रयुक्त होता था।

हिंदी में यही अहु >वहु > (उ के कारण व का आगम) वह रूप में प्रयुक्त होता है।

राजस्थानी भाषा में दूरवर्ती पु० ए० व० में वो' एवं स्त्री० में 'वा प्रयुक्त होता है। इनका विकास क्रम इस प्रकार है—

स० असौ पा० असु प्रा० अह अप० अहु वहु राज० वोट वउ> ओ) वो। स्त्री० में वा का प्रयोग अन्य पु० निकटवर्ती स्त्रीलिंग (आ) का प्रभाव है क्योंकि स० पा० प्रा० अप० में इन रूपों में (प्र० एक वचन) पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग में भेद लक्षित नहीं होता।

वे—इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषाविद् मतैक्य नहीं है। वैयाकरण

---

१ इदम् भी प्राकृत प्रकाश वररुचि

२ वही ३/२५ वही

बामताप्रसाद इसका सम्बन्ध म० म से ही जोड़ते हैं जो सर्वथा असंगत है क्योंकि स का विकसित रूप इस प्रकार है ।

स० स पा प्रा० अप० सो सु । अतः इससे वे की व्युत्पत्ति नहीं मानी जा सकती । डा० सुनीतिकुमार कल्पित रूप अव के करण कारक अवेहि से इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं । यह भी संगत नहीं क्योंकि म० पा० प्रा० अप० में ऐसा प्रयोग लक्ष ही नहीं होता । डा० वर्मा इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध मानकर मौन हो गये हैं । डा० उदयनारायण इसकी व्युत्पत्ति स० एभि प्रा० एहि अप० अहि द्वि० वचन से ही व का सम्बन्ध जोड़ते हैं । यह मान्यता भी असंगत है क्योंकि व्याकरणिक परम्पराओं में अइ>ए>ये सम्भव है व नहीं । दूसरा इ>ए>ये । उ>ओ>वा । भारतीय भाषाओं की परम्परा रही है अतः ए से य ही सम्भव है व नहीं । डा० भोलानाथ ने डा० चटर्जी के मत में अपनी सहमति व्यक्त की है एवं इसका विकास इस प्रकार बताया है म० अवभि>अवहि>अवइ>वऊ>व । साथ ही डा० भोलानाथ ने म० एत से हि० ये के साम्य पर वे घोड़े लड़के आदि के 'ए' के सम्पर्क से व की भी सम्भावना की है । ये मान्यताएं मात्र कल्पना प्रसूत एवं मस्तिष्क का व्यायाम मात्र है । पुष्ट प्रमाण युक्त नहीं । जैसा कि लिखा जा चुका है कि अव रूप का करण कारक अवभि स०, पा० प्रा० अप० में कहीं भी लक्ष नहीं होता । अतः केवल सम्भावना करना संगत नहीं । मेरे विचार में इसका विकास स० के अदस् (वह) सर्वनाम के प्र० ब० रूप अमूनि से हुआ है । अमूनि प्रा० काल में अमूइ रूप में प्रयुक्त होता था ।[1] अप० काल में असंयुक्त मध्यवर्ती म व में परिवर्तित हुआ एवं 'वऊ गुण में परिवर्तित होकर अऊइ> ओइ रूप में प्रयुक्त होने लगे ।[2] हि० भाषा में ओइ वोइ>वै, व (ये के साम्य पर) रूप विकसित हुआ है ।

---

१ देखिये—प्राकृत भाषाओं का रूप दर्शन नेमिचन्द्र पृ० १३९ ।

२ अगले पृष्ठ की पाद टिप्पणी संख्या २ देखिये ।

राजस्थानी भाषा में अ य पु० पुलिंग एवं स्त्रीलिंग बहुवचन मे 'वं' रूप प्रयुक्त होता है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है—स० अमूनि प्रा० अमूइ अप० ओइ रा० वोर वोइ वै व।

उस—इस सवनाम की व्युत्पत्ति भी विवादास्पद है। प० किशोरीदास इसकी व्युत्पत्ति स स से मानते हैं परयह सवथा असगत है क्योंकि स का विकास क्रम अपभ्रश काल पर्यन्त स सो>सु रूप म लब्ध है। केलाग इस' के सादृश्य पर उस । विकास मानते है। डा० वर्मा इसकी व्युत्पत्ति सदिग्ध मानते हैं। डा० श्यामसुन्दरदास न इसकी व्युत्पत्ति स० 'अमुष्य' से मानी है एव डा० भोलानाथ व डा० उदयनारायण ने इसी मत म अपनी सहमति व्यक्त की है। डा० श्यामसुन्दरदास न इसका विकास क्रम इस प्रकार बताया है—स० अमुष्य पा० अमुस्य प्रा० अमुस्म हि उस। मेरे विचार म भी स० अमुष्य (अदस षष्ठी एक वचन) से ही इसकी व्युत्पत्ति सभव है। पालि काल में अमुष्य का अमुस्स रूप चतुर्थी एव षष्ठी एक व० से प्रयुक्त होना एव अप० काल म अउस्स रूप लब्ध नही होता। इसका कारण उपभ्रश म तसु (स० तस्य) का अधिक प्रयोग ही हो सकता है। हिन्दी भाषा म अउस्स> उस रूप विकसित हुआ है। उसे म ए का आगम (अप० तुम्ह तुम्हइ आदि) सवनामों के सादृश्य पर ही हुआ है। राजस्थानी भाषा म वन वोन उवानें वात आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। इनम न अनुनय है एव शेष रूपो की व्युत्पत्ति दी जा चुकी है।

उन, उन्ह—उन सवनाम की व्युत्पत्ति के सम्बध म भाषावि० मतक्य नही है। वैयाकरण प० किशोरीदास इसम न का आगम स० के बहुवचनान्त रूप में प्रयुक्त न (रामान् सति भवति आदि) का प्रभाव मानत हैं। यह सवथा असगत है क्योंकि ऐसा प्रभाव विकास क्रम को देखते हुए सभव

---

२ क माउननासिको वो वा /३६७/ अप० व्याकरण
स प्रश्न पाद /३६४/ वही

नहीं। डा० वर्मा इसकी व्युत्पत्ति सदिग्ध मानकर मौन हो जाते हैं। डा० उदयनारायण ग्रमुष्याम् (ग्रदस सप्तमी एक वचन) से इसका सम्बध जोडत ह। उनके ग्रनुसार इसका विकास क्रम इस प्रकार ह—ग्रमुष्याम्▷ग्रमूनाम▷ ग्रमुण>उण्ह▷उन। डा० उदयनारायण का यह विचार सगत नही क्योंकि स्त्रीलिंग 'ग्रमुष्याम् से इसकी व्युत्पत्ति सम्भव नहीं एव इस रूप म प्राकृत ग्रपभ्रश म इसका प्रयोग भी उपलब्ध नही होता। डा० भोलानाथ ने स० ग्रमूना, ग्रमूनि ग्रमून, ग्रवाना (स० कल्पित रूप) से इसका सम्बन्ध जोड़ा है। जिन, तिन किन के सादृश्य पर भी 'उन का विकास मानते हैं। साथ ही भोलानाथ ग्रमून एव ग्रवाना से इसकी सर्वाधिक सम्भावना मानते हैं। उन्होंने ग्रमून एव ग्रवाना से उन' का विकास इस प्रकार बताया है—

स० ग्रमून (द्वि० ब० व०) प्रा ग्रमूणा > ग्रउण> उण्ह> उन

स० ग्रवाना> ग्रमुण> ग्रनुण> उण्ह> उन।

डा० भोलानाथ की मान्यताव सगत नही क्योंकि 'ग्रमून का लब्ध (भाषा और साहित्य म) विकसित रूप इस प्रकार है स० ग्रमून् पा० ग्रमूया प्रा० ग्रमूग्रा ग्रप० ग्रऊग्रा ऊग्रा। डा० तिवाडी द्वारा बताया गया विकास क्रम कल्पित' है। मेरे विचार म 'ग्रदस सर्वनाम क करण-कारक एक वचन के रूप ग्रमूना' स इसका सम्बन्ध जोडना सगत होगा। इसका विकास-क्रम इस प्रकार है—

स० ग्रमूना पा० ग्रमूना प्रा० ग्रउण ग्रप० उण हि उन। उन्ह म ह/ए का ग्रागम ग्रप० तुम्ह तुम्हइ ग्रादि सर्वनामो क सादृश्य पर हुग्रा है। राजस्थानी भाषा में उण का प्रयोग होता है। इसका विकास इस प्रकार ह— ग्रमूना पा० ग्रमूना प्रा० ग्रउण ग्रप० उण रा० उण। प्राकृत काल म ही न ध्वनि ण म परिवर्तित हो गई थी। ग्रप० म भी यही परम्परा रही। पर हिन्दी ग्रादि म पुन ण> न म परिवर्तित लक्षित होता है जबकि राजस्थानी ग्रादि म ण' ही रहता ह यथा हि० किन राज० किण

हि उन राज० उग आदि ।

उन्होने – इस सावनामिक रू में 'ने' तो स्पष्टत अनुसग ह एव 'उन्हो' उन का कम कारक रूप है । इस ओ का विकास सज्ञा विकारी बहु वचन रूप बालको घोडो के –ओ– के सादृश्य पर हुआ ह । जिसका विकास क्रम दिया जा चुका ह ।

३ १ ५ आदर वाचक एव निज वाचक आप, अपना अपने—

इन रूपो का सम्बध स० के 'आत्मन्' शब्द क रूपो से ह । स० काल में आत्मन् शब्द प्र० एक वचन म आत्मा रूप म प्रयुक्त होता था । पालि काल में आत्मा रूप अत्ता रूप म प्रयुक्त होता था । प्राकृत काल म अत्ता शब्द अत्पा रूप मे प्रयुक्त होता था । वररुचि ने इसका सकेत किया है।[1] यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता ह कि स आत्मा पा अत्ता तो सम्भव पर अत्ता से अप्पा रूप सभव नही उत्तर-स्वरूप कहा जा सकता है कि प्रा० काल म अनेका शब्द अशिक्षित लोगो द्वारा अशुद्ध रूप म प्रयुक्त होते थे एव प्रयोगाधिक्य से वे ही शुद्ध माने जाने लगे। अत्ता से अप्पा भी इसी का प्रभाव ह । अप० काल म अप्पु अप्प रूप विकसित हुए एव हिन्दी मे यही 'आप के रूप म प्रयुक्त होता ह । 'अपना का सम्बन्ध स० आत्मान (आत्मन् प्र० बहु वचन) से हैं । आत्मान शब्द प्राकृत काल म अप्पाणो रूप म प्रयुक्त होता था ।[2] अप० काल मे यह अप्पणु अप्पणा रूप म प्रयुक्त होता था यथा— जो गुण जोवइ अपपणा पयडा करउ परस्सु

दुरुडाँणे पडिउ खनु अप्पणु जणु मारेइ । हिन्दी म यह 'अपना रूप में प्रयुक्त होता है । अपने का सम्बध 'आ मना से ह । प्रा० काल म यह अपपणे रूप म प्रयुक्त होता था यथा—

---

१ आत्मनिप वररुचि ३/४२

२ आत्मानो अप्पाणो वा वर रुचि ५/४५

३ टाणा वररुचि ५/४२

यह रिउग्हिरे उरट्वइ अह अप्पणो नमन्ति (स० अय रिपु रुधिरेण अन्यानि अथ आत्मना न अमन्ति। हि० म यह अप्पणो>अपने रूप म प्रयुक्त होता है।

स्टीवन्सन इसकी व्युत्पत्ति द्रविड शब्द 'आव' से मानते हैं पर यह सर्वथा असगत है क्योंकि भारतीय भाषाओं मे प का व ता उपलब्ध होता है। व का 'प' नहीं। डा० भोलानाथ अर्थभेद के कारण आप' का सम्बन्ध स० आत्मा' (आत्मन्) से नहीं जोडते। उनका कथन है कि इसके साथ आदर का भाव नहीं है जिसके आधार पर आदरार्थी आपका इसके साथ सम्बद्ध किया जाय। ऐसी स्थिति म आत्मन को इसका स्रोत नहीं माना जा सकता। उन्होंने स० भवम् आप्त एव तेलगु अप्पा से इसका सम्बन्ध जोड़ा है। पर इसका तीनो से सम्बन्ध युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होता।

भवान से आप सर्वथा भ्रान्त है क्योंकि स० भ मध्य काल म ह म परिवर्तित हुआ है एव मध्यवर्ती य' लुप्त हुआ है। अत यह विकास असम्भव है। आप्त से आप मानना भी भ्रान्त है। आप्त' का अर्थ प्रामाणिक है फिर यह आदर म कैसे प्रयुक्त हुआ? असम्भव प्रतीत होता है। तेलगु अप्पा से हिन्दी आप सगत नहीं क्योंकि भारतीय भाषाओं म एक भी सर्वनाम विदेशी भाषाओं से आगत नहीं है। उनका सीधा सम्बन्ध सस्कृत से है। जहा तक अर्थ का सम्बन्ध है आप' आज भी हिन्दी म निज वाचक (स्व-वाचक) रूप म भी प्रयुक्त होता है यथा मैं अपने आप जाऊगा।

आप' का प्रयोग अपभ्रश काल तक निज वाचक रूप म ही होता था। प्रा० हिन्दी काल मे यह निज वाचक एव आदर वाचक दोनो ही रूपो म प्रयुक्त होने लगा।

राजस्थानी म आप अपणो आपणा आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। इनका सम्बन्ध भी स० आत्मन (आत्मा) एव आत्मान से है यथा—

---

१ पो व वररुचि

म० आत्मा पा० अत्ता प्रा० अप्पा अप० अप्प अप्पु रा० आप
स० आत्मानं प्रा० अप्पाणो अप० अप्पणु राज० अपणा आपणो।

३१६ प्रश्नवाचक - कौन'— इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे भाषाविदो मे मतैक्य नही है वैयाकरण प० कामताप्रसाद 'क' से इसका सम्बन्ध जोडते है। डा० श्यामसुन्दरदास भी इसी से इसका सम्बन्ध मानते हैं। पिशेल म० कुवपथ, कवाग्नि प्रा० कवटिठ्य के समान इसे बनाते हैं। हानले केवदु' से इसका सम्बन्ध मानते हैं। ट० चटर्जी डा० वर्मा एव डा० उदयनारायण स० को पुन >प्रा० को उण कउण, कउन>कौन के रूप मे इसका विकास मानते हैं। डा० भोलानाथ भी इसी विचार के समर्थक हैं। मेरे विचार मे इसका विकास अपभ्रंश के कवण' रूप से हुआ है। अपभ्रंश से पूर्व स० किम् के को के कैश आदि रूप प्रयुक्त होते थे। अपभ्रंश काल मे किम् के स्थान पर विकल्प से काई एव 'कवण' रूप प्रयुक्त होने थे। हेमचन्द्र ने इसका उल्लेख किया है— किम काई कवणौ वा (३६७ अप० व्याकरण) अर्थात् किम् के रूपो का प्रयोग था पर इनके स्थान पर कवण कवणेन आदि विभक्ति के अनुरूप भी दूसरे स्थान पर प्रयुक्त किये जाते थे यथा—

फोडेंति जे हिअडउ ताई पराई कवण घणा। किम् के रूप भी प्रयुक्त होते थे यथा— बिहि वि पयारेहि गइअ गण कि गज्जहि खल मह।' प्राचीन हिन्दी तक आते-आते जो रूप (कवण आदि) विकल्प से प्रयुक्त होते थे मुख्य रूप मे प्रयुक्त होने लगे एव किम् (क, का, किम्) के स्थान पर कवण ही प्रयुक्त होने लगा एव कवण से कउन>कौन विकसित हुआ है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि कवण का सम्बन्ध सस्कृत के किस रूप से जोडना चाहिए। नवीन शोध जब तक नही हो जाते तब तक हम को पुन' से ही इसका व्युत्पन्न समझकर सन्तुष्ट होना चाहिये।

राजस्थानी भाषा मे कुण कूण' रूप प्रयुक्त होता है। इसका विकास इस प्रकार है—प्रा० कवण>राज० कउण (अ+उ = उ)कुण, कूण।

-क्या—प० कामताप्रसाद सं० किम>प्रा०_किम् हि०-क्या रूप मे इसका विकास मानते हैं पर यह मान्यता असगत है एव भारतीय भाषाओ के ध्वनि परिवर्तन नियमो के अनुरूप नहीं है। डा० वर्मा इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध मानकर मौन हो जाते हैं। प्लाटस स० कीदृश से इसका सम्बन्ध जोडते हैं। डा० भोलानाथ ने स० कस्य से इसका सम्बन्ध जोडा है। उनके अनुसार इसका विकास क्रम इस प्रकार है—

सं० किस्य पा० किस्स प्रा० किस्स और किस्सा>कीआ>क्या

यह विकास क्रम भी सगत एव प्रमाण प्रसूत नही क्योकि सस्कृत कस्य (किम् षष्ठी एक वचन) प्राकृत काल मे कस्स कास रूप में प्रयुक्त होता था। विकल्प से किस्स, कीसे कीआ, कीए कीस, कीइ आदि रूप भी प्रचलित थे।[1] अप० काल मे कस्य कस्या (प्रा० कस्स, कस्सा) रूप क्रमश कासु कहे रूप म प्रयुक्त होते थे यथा—जीविउ कासु न वल्लहउ धणु पुणु कासु न इट्ठु' तथा कहे केरउ (कस्या कृते) पश्चिमी हिन्दी म यही कासु काहु रूप में विकसित हुआ है यथा—'काहु की अखियां रसीली मन भाइ अत कस्य' से इसका सम्बध नही जोडा जा सकता है।

मेरे विचार से इसका सम्बध स० किन्नु' किमु निपात से मानना चाहिए। प्राकृत काल मे ये निपात किणो, किमु रूप में प्रश्नवाचक अथ मे प्रयुक्त होता था।[2] अप० काल में यही किउ रूप मे प्रश्नवाचक अर्थ म प्रयुक्त होता था। हिन्दी मे यह किउ>क्यू, क्यों, क्या रूप मे विकसित हुआ है। राजस्थानी मे क्यू क्या रूप प्रचलित है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है सं० किन्नु किमु प्रा० किणो, किमु अप० किउ राज० क्यू क्यों।

---

१ क इदम्य कसा से ६/६ वररुचि

ख टाडस् डीनामिवेदवात ५/२२ वही

२ किणो प्रश्ने ९/९ वररुचि

किस, किसे— लगभग सभी विद्वान भाषाविद इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में एक मत है। बीम्स, कैलाग, डा० चटर्जी, डा० वर्मा डा० उदय नारायण आदि इसका सम्बन्ध सं० कस्य (किम् षष्ठी एक वचन) से जोड़ा है। डा० चटर्जी एवं डा० उदयनारायण ने इसका विकास क्रम इस प्रकार बताया है—सं० कस्य प्रा० किस्स (कस्स) हि० किस। डा० भोलानाथ ने भी इसी मत में सहमति व्यक्त की है पर वे मूल रूप सं० कस्य न मानकर किस्य मानते हैं। उन्होंने इसमें 'कस्य में) इ' का आगम मूल रूप किम् एवं कि-पुरुष किंशुक, किंकर आदि के आधार पर किम् के रूपों (इ युक्त रूपों का) का बाहुल्य माना है। मेरे विचार में ऐसी कल्पनाएं एवं सम्भावनाएं निरर्थक है। सं० कस्य प्रा० काल में कस्स कास रूप में प्रयुक्त होता था। विकल्प से किस्सा कीसै, कीसा कीए, कीस कीइ रूप भी प्रयुक्त होते थे। प्रा० एवं प्राकृत काल में रूपों में अ के स्थान पर 'इ' के आगम का प्रचार था। अतः इसका विकास क्रम सं० कस्य प्रा० कस्स कीस अप० कासु कीस हि० किस मानना संगत है। किसे में ए का आगम अप० तुम्हइ अम्हइ अइ> ए तुम्हे अम्हे-ए के सादृश्य पर हुआ है। राजस्थानी में यह रूप प्रयुक्त नहीं होता है।

किन— इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषाविदों में मतैक्य नहीं है। बीम्स एवं डा० वर्मा सं० केषां (किम् षष्ठी बहुवचन) के स्थान पर बालाकानाम् आदि के सादृश्य पर 'काना' रूप की कल्पना कर इसी से इस का विकास मानते हैं—सं० कानां>प्रा० केणां हि० किन्। डा० उदयनारायण ने सं० केषाम् प्रा० काण किण हि० किन माना है। डा० भोलानाथ सं० कल्पित रूप किषानाम् (केषाम् के स्थान पर) एवं केषानाम् (कल्पित रूप) पा० केशान प्रा० केण, केण अप० किण हि० किन के रूप में इसका विकास मानते हैं। मेरे विचार में उपर्युक्त मत संगत नहीं है। डा० वर्मा एवं बीम्स 'कानां' रूप की कल्पना करते है। ऐसे रूप कहीं लब्ध नहीं होते अतः निरर्थक

यत्ना मशाहनीय है। डा० उ यनारायण । केपाम् से इसे व्युत्पन्न मानना भी संगत नहीं क्योंकि प्राकृत काल में केपाम् का 'कति' रूप सम्प होता है न कि काण। डा० भोलानाथ ने भी सं० कल्पित रूप किपाणाम् एवं केयानाम् से इसकी व्युत्पत्ति बताई है। यह भी सर्वथा असंगत एवं प्रमाण रहित है। इस प्रकार तो किसी भी रूप की कल्पना की जा सकती है। मेरे विचार में इसका विकास संस्कृत किम् के तृतीया एक वचन के रूप 'केन' से हुआ है। सं० केन प्रा० काल में केण रूप में प्रयुक्त होता था। इसके स्थान पर विकल्प से किणा' रूप भी प्रयुक्त होता था। अप० काल में यह किणा>किण रूप में प्रयुक्त होता था। हिन्दी में किन>किन रूप में प्रयुक्त होता है। राजस्थानी में यह 'किण' रूप ही में प्रयुक्त होता है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है—सं० केन प्रा० केण, किणा अप० किण हि० किन राज० किण। किन्हें में ह/ए का आगम जैसाकि कि लिखा जा चुका है कि अप० काल का क्रम की विभक्ति अइ >ण (तुम्हइ, अम्हइ) ह (तुम्ह, अम्ह) के सादृश्य पर हुआ है।

३।३ सम्बन्ध वाचक सर्वनाम 'जो'—

इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे सभी भाषाविदो मे मतैक्य है। इसका विकास सं० य प्रा० काल मे जो रूप म परिवर्तित हो गया था।[1] यद्यपि वैदिक काल म भी यह प्रक्रिया थी पर इतनी विकसित नहीं थी। प्राकृत मे आकर नियम बन गई। अप० एवं हिन्दी में यह जो रूप मे ही प्रयुक्त होता है। हिन्दी में इस सर्वनाम में लिंग भेद नहीं है।

राजस्थानी भाषा म जको, जका, जकी, जो, ज्यारो ज्यांरी आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। इनका विकास भी सं० य से ही हुआ है एवं इनमें राज० सम्बन्ध कारकीय परसर्ग संलग्न है।

---

१ आदेर्योज वररुचि प्रा० प्र०

जिस—इसकी व्युत्पत्ति भी विवादास्पद नहीं है। इसका विकास सं० यस्य पा० यस्य प्रा० जस्स, जास। वैकल्पिक रूप जिस्सा, जासे, जीम्रा जीण जीम्र अप० जासु हि० जिस्सा, जीसे>जिसके रूप मे हुआ है।

'तिस' म 'ए' का आगम अन्य सार्वनामिक रूपों की भांति ही हुआ है।

जिन - इस सार्वनामिक रूप की व्युत्पत्ति विवाद मुक्त है। डा० चटर्जी, डा० वर्मा बीम्स स० येषा (षष्ठी बहुवचन) के स्थान पर बालकानां आदि रूपो के सादृश्य पर यानां रूप की कल्पना करते हैं। स० यानां प्रा० जाण हि० जिन पर यह मान्यता असंगत है। यदि ऐसा होता तो पाणिनि वररुचि या हेमचन्द्र अवश्य उल्लेख करते। दूसरा ऐसे रूप कहीं लब्ध नही होते डा० उदयनारायण एव डा० भोलानाथ सं० येषाम् (षष्ठी बहु वचन) से इस का सम्बन्ध जोड़ते हैं। डा० भोलानाथ ने इसका विकास क्रम इस प्रकार बताया है—स० येषाम् पा० येसान प्रा० जाण, जाण>जिण>जिन। डा० उदयनारायण करण के बहु वचन रूप येभि, जेहि का इस पर प्रभाव मानते हैं। मेरे विचार में यह मान्यता सगत नहीं क्योंकि येषाम् का प्राकृत रूप जाण, जाण नहीं लब्ध होता। मेरे विचार से इसका विकास स० 'येन' से मानना सगत होगा। इसका विकास क्रम इस प्रकार है— सं० येन पा० येन प्रा० जिणा, जेण अप० जिण हि० जिन। राजस्थानी म यह 'जिण' रूप मे ही प्रयुक्त होता है। 'जिन्हें' में ह/ए का आगम वर्णित पूर्ववर्ती सर्वनामों की भांति ही हुआ है।

३ १ ८ नित्य सम्बन्धवाची—सो'—

इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राय सभी भाषाविद एक मत हैं। इसका विकास सं० स पा०, प्रा०, अप० सो हि सो के रूप मे हुआ है। डा० चटर्जी इसका सम्बन्ध स० सक (काल्पनिक रूप) से जोडते हैं पर यह कोरी कल्पना मात्र है।

११६ अनिश्चयवाचक सर्वनाम कोई –

इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विवाद नहीं है। इसका विकास स० कोऽपि (कोई भी) प्रा० कोवि अप० कोइ हि० कोई के रूप में हुआ है। राजस्थानी भाषा में भी कोई रूप ही प्रयुक्त होता है।

कुछ – इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषा वैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है। बीम्स कवित (क्त्+चित्) रूप की कल्पना कर इसका सम्बन्ध इसी से जोड़ते हैं। स० में ' चित् रूप है। दूसरा यह 'कोई' अर्थ में प्रयुक्त होता था। अत इससे सम्बन्ध जोड़ना असंगत है। डा० वर्मा स० कश्चित से इस का विकास मानते हैं पर यह संगत नहीं, क्योंकि यह अप० काल तक कोई अर्थ में ही प्रयुक्त होता था। डा० भोलानाथ इसका सम्बन्ध स० किञ्चित् से जोड़ते हैं। उन्होंने इसका विकास इस प्रकार बताया है—स० किञ्चित् प्रा० किं, किछि>किच्छ किछु>कछु>कुछ। मेरे विचार में भी इसका विकास क्रम किञ्चित् से मानना ही संगत है। स० किञ्चित् का कि रूप हम पालि में प्राप्त होता है। किंचि प्रा० काल में किंचि, किछि रूप लब्ध होते हैं। अप० में यह कछु रूप में विकसित हुआ है। यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कुछ में उ का आगम कैसे हुआ ? हार्नले एवं डा० चटर्जी इसे 'हुँ> उ बलात्मक निपात का अवशेष मानते हैं। पर यह उचित नहीं। एक तो मुझे अप० में बहुत ढूंढने पर भी किंहु उक उदाहरण ही उपलब्ध नहीं हुए। दूसरा यदि यह मान भी लें तो 'उ में जो अनुनासिकता थी उससे 'कुंछ रूप बनना चाहिए पर ऐसा होता नहीं। अत यह मानना असंगत है। वस्तुत प्रा० किछि अप० में किच्छ कच्छ>कछु रूप में प्रयुक्त हुआ जाता जो कछु से कुछ बना है।

किसी—इसकी व्युत्पत्ति डा० वर्मा ने स० कस्यापि से मानी है। डा० उदयनारायण ने स० कस्यापि से इसका सम्बन्ध मानकर इसका विकास क्रम इस प्रकार दिया है—स० कस्यापि>प्रा० कस्स-वि>अप० कस्सइ हि०

किसी । डा० भोलानाथ भी इसी से इसका सम्बन्ध जोडते है पर रूप कल्पित 'किम्यापि मानते हैं । मेरे विचार म डा० भोलानाथ की कल्पना निराधार है । 'किसी' म पूववर्ती इ' का आगम 'इस के सादृश्य पर हुआ है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है—स० कस्यापि प्रा० कस्स-वि अप० कासु-इ कस्सइ हि किसी । राजस्थानी भाषा म किसी के स्थान पर कई' रूप प्रयुक्त होता है । इसका विकास क्रम इस प्रकार ह । स० कऽपि प्रा० कवि अप० कइ राज० कइ ।

साकल्य वाचक—'सव'—

इस सावनामिक रूप की व्युत्पत्ति के सम्ब ध म सभी भाषाविद एक मत हैं । इसका विकास स० सव >पा० सब्बो >अप० सब्बु, साहु विकल्प से) सबु हि० सब के रूप म हुआ ह । राजस्थानी भाषा म साकल्य वाची> सावनामिक रूपो म सब का विकास तो सव से ही हुआ ह । सगला का विकास स० सकल से हुआ है । इसका विकास क्रम इस प्रकार ह—स० सकल प्रा० सगल सअल अप० सगलु सअलु रा० सगलो सगला सगली आदि ।[1]

---

१ राजस्थानी सार्वनामिक रूपो के विशद अध्ययन के लिए देखिये लेखक कृत बीकानेरी बोली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन ।

चतुर्थ अध्याय

विशेषण प्रकरण

४० प्रा० भा० मा० भा० मस्कृत म विशेषण शब्द अपने विशेष्यानुरूप ही रूप ग्रहण करते थे। कहा भी गया है— यल्लिग यद्वचन या विभक्ति विशेष्यस्य, तल्लिग तद्वचन सव विभक्ति विशेषणस्यापि' अर्थात् विशेष्य का जो लिंग, जो वचन जो विभक्ति होती है विशेषण का भी वही लिंग, वही वचन एव वही विभक्ति होती है। पालि प्राकृत एव अपभ्रंश काल म भी यही परम्परा रही। यथा—सुदरा बालको, सुदरी बालिका, सुदर फल सुन्दरा बालका सुदारयो बालिका सुदरानि फलानि स न्देन बालकेन आनि (पालि)। हिन्दी एव राजस्थानी आदि भाषाओं म यह परम्परा अक्षुण्ण नही रही। इनम कुछ विशेषण तो विशेष्य के लिंग वचनानुरूप परिवर्तित होते हैं एव कुछ नही। इसी आधार पर हम हिन्दी एव राजस्थानी विशेषणो को दो भागो म विभक्त कर सकते है—१ विशेष्य के लिंग-वचन एव कारकानुरूप परिवर्तित विशेषण-पद २ विशेष्य के लिंग वचन एव कारक के अनुरूप न परिवर्तित होने वाले विशेषण-पद। यह प्रश्न उपस्थित होता है कि म० पा०, प्रा० एव अप० म जब विशेष्यानुरूप विशेषण रूपो म परिवर्तन होता था तो हिन्दी म क्यो नहीं ?

अद्यावधि भाषाविदों का ध्यान इस ओर नहीं गया है। मेरे विचार मे इसके मुख्यत निम्नलिखित कारण है—

१ पालि काल म द्विवचन लुप्त हो गया था एव द्विवचन के रूप बहुवचन मे प्रयुक्त होने लगे थे। उसी समय विशेषण के प्रयोग म भी शिथिलता प्रारम्भ हो गई होगी। २ स० क्रिया-रूपो (तिङन्त) पर लिंग का प्रभाव नही पडता था। इसका भी किञ्चित् प्रभाव हो सकता है। ३ अप० काल तक विशेषण के प्रयोग की यह शिथिलता अधिक बढ गई थी। प्राचीन हिन्दी में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। ४ विदेशी भाषाओं का प्रभाव भी पडा।

४ १ हिन्दी एव राजस्थानी विशेषण पदो का इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

१— विशेष्य के लिंग—वचन एव कारकानुरूप परिवर्तित विशेषण पद।

२— विशेष्य के लिंग—वचन एव कारक के अनुरूप न परिवर्तित होने वाले विशेषण-पद।

३— तुलनात्मक विशेषण पद—(तरार्थी एव तमार्थी)

४— सख्या वाचक विशेषण पद—

क निश्चित सख्यावाची विशेषण।

१ गणनात्मक विशेषण

२ क्रमवाचक विशेषण

३ आवृत्तिवाचक विशेषण

४ प्रत्येक बोधक विशेषण

५ समुदाय बोधक विशेषण

ख अनिश्चित सख्यावाची विशेषण

५— प्रत्ययान्त विशेषण-पद

६— सार्वनामिक विशेषण-पद

७– समुहता वाचक विशेषण-पद

८– परिणाम वाचक

९– गुण वाचक

१०– समुदाय वाचक

४११ विशेष्य के लिंग—वचन एवं कारकानुरूप परिवर्तित विशेष—ण

इस वर्ग के अन्तर्गत हिन्दी के आकारान्त विशेष्यों के साथ प्रमुख विशेषण आते हैं। इनके मूल एवं विकारी रूप आकारान्त विशेष्य शब्दों (घोड़ा, पाई के समान ही होते हैं, यथा—

विशेषण-पद				विशेष्य-पद			
मूल रूप		विकारी रूप		मूल रूप		विकारी रूप	
एकव०	बहुव०	एकव०	बहुव०	एकव०	बहुव०	एकव०	बहुव०
हरा	हरे	हरे	हरे	घोड़ा	घोड़े	घोड़े	घोड़ों

इन विशेषणों का विकास भी आकारान्त संज्ञा रूपों की भांति ही हुआ है यथा—सं० हरितम् प्रा० हरअ/हरिम अप० हर, हरउ हि० हरा। यहाँ यह ध्यातव्य है कि आकारान्त विशेषण के विकारी बहु वचन के रूप विशेष्य के विकारी बहु वचन के अनुरूप नहीं बदलते अपितु मूल बहु वचन के रूप ही प्रयुक्त होते हैं यथा अच्छे लड़कों, हरे घोड़ों 'हरों घोड़ों' का प्रयोग नहीं होता।

राजस्थानी भाषा में इस वर्ग के अन्तर्गत ओकारान्त विशेष्य पदों के साथ प्रयुक्त विशेषण-पद आते हैं यथा—धोळो घोड़ो धोळा घोड़ा, धोळों घोड़ों। इनका विकास भी राज० ओकारान्त शब्दों की भांति ही हुआ है यथा—सं० धवल घोटक प्रा० धवलो घोडओ अप० धवलउ घोडउ राज० धोळो घोड़ो आदि।

४ १ २ विशेष्य के लिंग—वचन एवं कारक के अनुरूप न परिवर्तित होने वाले विशेषण—

इस वर्ग के अन्तर्गत शेष सभी वर्णांत वाले विशेषण आते हैं जो विशेष्यानुरूप परिवर्तित नहीं होते यथा—मोटी लड़की मोटी लड़कियाँ, खाउ लड़के, खाउ लड़कियाँ आदि।

४ १ ३ तुलनात्मक विशेषण (तरार्थी एवं तमार्थी)—

संस्कृत काल में तुलना के न हेतु तरप् (तर) ईयसुन् (ईयस, तमप (तम) इष्ठन् प्रत्ययों का योग होता था। जब दो की तुलना कर एक को अच्छा या बुरा बताया जाता था तो तरप एवं ईयसुन् प्रत्ययों का योग होता था।[1] यथा—लघुतर, लघीयान्—अयम् अनयो अतिशयेन लघु अर्थात् यह इन दोनों में छोटा है। इसी प्रकार पटुतर पटीयास आदि। जब बहुतों में से किसी एक को श्रेष्ठ बताना होता था तो तमप एवं इष्ठन प्रत्ययों का योग होता था।[2] यथा—लघुतम लघिष्ठ-अयम् एषाम् अतिशयेन लघु अर्थात् यह इनमे सबसे छोटा है।

पालि[3] प्राकृत एवं अप० काल में भी यही स्थिति रही यथा—पापतरो पापतमो पापिस्सिको पापियो पापिट्ठो आदि (पालि)। हिन्दी भाषा में ईयसुन् प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता। शेष तीनों प्रत्ययों का प्रयोग होता है। यथा—उच्चतर, उच्चतम। श्रेष्ठ ज्येष्ठ वरिष्ठ, कनिष्ठ आदि। हिन्दी भाषा में ये तीनों प्रत्यय तत्सम शब्दावली के रूप में ही गृहीत हुए हैं। 'तर' प्रत्ययान्त शब्द कुछ विदेशी भाषाओं से भी हिन्दी में आए हैं, यथा—बेहतर, बदतर आदि। उक्त परम्परित तुलनात्मक प्रत्ययों (तरप, तमप इष्ठन) के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में 'से' अनुसर्ग के साथ विशेषण शब्द (राम से

---

[1] द्विवचन विभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५/३/५७ अष्टाध्यायी

[2] अतिशायने तमबिष्ठनौ अष्टाध्यायी ५/३/५५

[3] तरतमिस्सि कियिट्ठासिये ४/६४ पालि महाव्याकरण

पच्छा -सीता- स मुन्दर) से—कहीं, से अधिक,— से -ज्यादा,—से कहीं अधिक आदि के प्रयोग द्वारा तुलनात्मक भावा की अभिव्यक्ति होती है। इसके अतिरिक्त सख्यावाची विशेषण के द्वारा भी तराथी भाव व्यक्त होता है यथा– दाना उन्नीस-बीस है। राम साहन से इक्कीस है। तमथ को व्यक्त करने क लिए हिन्दी म तमप इस्टा क अतिरिक्त सबसे अधिक बढ चढ़ा, सबसे श्रेष्ठ आदि का प्रयोग किया जाता है।

राजस्थानी भाषा म तत्तम तमप, तरप इयसुन आदि का प्रयाग नहीं होता बल्कि तरार्थी भाव मू अनुराग के साथ कम बेसी घणों आदि ना विशेषण से पूर्व रख जात हैं यथा—इरिया रोम सू घणो पढियोडो है। तरार्थी भाव व्यक्त करने के लिए राजस्थानी में सख्यावाची विशेषण भी प्रयुक्त होन है—यथा राम मोवन सू इक्कीस है। तमथ व्यक्त करन के लिय राज० म सबमें सगळा म सगळा सू आदि का प्रयोग किया जाता है।

४ १ ४ सख्यावाचक विशेषण–

४ १ ४ १ पूर्ण सख्यावाचक विशेषण–

एक इसका विकास स० पु० एक पालि एका प्रा० एग्रो एक्कों, अप० एक्कु हि० एक एवं नपु० स० एकम् पा० एक एम अप० एक्कु हि० एक के रूप में हुआ है। कुछ भाषाविदों की धारणा है कि प्रा० काल म एम बाने पर फिर क हा से आया ? डा० ग्रियर्सन डा० चटर्जी डा० वर्मा डा० तिवाडी आदि इसीलिये इसे अर्ध–तत्सम मानते हैं। डा० भोलानाथ इसे परवर्ती तद्भव मानते हैं। वस्तुत प्राकृत काल मे एक्क एव एम रूप दोनों ही प्रचलित थे। कगचज तद पयव की लोप प्रवृत्ति कारण एम रूप बना दूसरी ओर सेवादियुच् (२/५८) से विकल्प से द्वित्व होन पर सोविन्दुनपुसके से बिन्दु होकर एक्क रूप बना है। अप० म यह एक्कु रूप में ही विकसित हुआ है 'एम' रूप मे नही यथा—एक्कु कइमइ वि न

शावही घेन्तु वहिद्दयंत जाहि । हिन्दी भाषा में द्वित्व भंग एवं अंत्य ध्वनि ह्रास की प्रवृत्ति के कारण 'एक' विकसित हुआ है । अतः इसे न अर्ध-तत्सम एवं न परवर्ती तद्भव मानना चाहिए बल्कि तद्भव ही मानना सगत है ।

कुछ भाषाविदों की मान्यता है कि 'एक' मूल भारोपीय भाषा मे नहीं है अत इसे अन्य भाषाओं से आगत मानना चाहिए । यह शोध का विषय है । अत भारोपीय मानकर ही सतुष्ट होना चाहिए । हिन्दी म पार्मे एक'के निम्नलिखित परिवर्तित रूप प्रयुक्त होते हैं, इक्क (इक्कीस) इक (इकतालीस) इक्य (इक्यावन) ग्य (ग्यारह) । भा० भा० भा० मे इ>ए, ए>इ, अ>इ परिवर्तन होता रहा है । पानिनि न इन्हें गुण सम्प्रसारण आदि की संज्ञा दी है । एक>इक इन्हीं प्रवृत्तियों का परिणाम है । डा भोलानाथ एक इ परवर्ती बलाघात के कारण मानते हैं । 'इक्क में क द्वित्व बलाघात के के कारण हैं । इक्य म 'य' का आगम श्रुति रूप मे हुआ है जो इ के कारण है । ग्य' मे 'ग' 'क् का घोषीकृत रूप है । पालिकाल में एकादश >एकारस एव प्राकृत म एग्गारह, एगारह रूप म प्रयुक्त होता था । ग के साथ य, ए>इ के प्रभाव से हुआ है । एकादस>एकारस>एग्गारह एगारह इग्यारह>ग्यारह । 'इक्यावन' मे आ का आगम 'बावन' के सादृश्य पर हुआ है।

'इक्यानवे मे डा० चटर्जी ने 'आ' का आगम 'इक्यासी 'पच्चासी' आदि के सादृश्य पर माना है । डा० भोलानाथ ने इसे बारह, बावन आदि की भांति बानवे का प्रभाव माना है । मेरे विचार में यह स० सन्धि नियम अ+अ=आ से विकसित 'आ है । [1] स० एक+दश=एकादश । डा० भोलानाथ स० 'एकदश मे भी 'आ आगम 'द्वादश के सादृश्य पर मानते है जो

---

1 अक सवर्णे दीर्घ ६/१/१०१/अष्टाध्यायी अ+अ=आ
यथा दैत्य+अरि = दैत्यारि

सर्वथा असगत एव संस्कृत रूपात्मक परम्परा के प्रतिकूल है ।

राजस्थानी भाषा मे एक, एको रूप प्रयुक्त होते हैं । अप० एक्कु से राज० 'एको' का विकास हुआ है । शेष विकास पूर्ववत् है । राजस्थानी ० 'एक के परिवर्तित रूप (इक, इक्क आदि) हिन्दीवत् ही है । केवल ग्य के स्थान पर इग्य प्रयुक्त होता है । हिन्दी मे आदि इ लुप्त होकर इग्यारह >ग्यारह रूप बना है जबकि राजस्थानी म आदि इ लुप्त नही हुआ है ।

दो—इसका विकास स० द्वि मूल के 'द्वौ' रूप से हुआ है । द्वौ पालि काल में अपने मूल द्वि>द्वे (गुण) दुवे रूप म प्रयुक्त होता था ।[1]

प्राकृत काल म म० द्वौ से 'दो एव पालि द्वे से वे' रूप विकसित हुए । अप० म दोण्णि बिण्णि, बण्णि वे दो आदि रूप प्रयुक्त होते थे । जो स० द्वि शब्द क विभिन्न विभक्तियों म प्रयुक्त रूपो के ही विकसित रूप है। हिन्दी भाषा म यह दो रूप मे विकसित हुआ है । स० द्वौ, पा द्वे, दुवे (सभवत 'दो भी पर पालि साहित्य एव व्याकरणिक ग्रथो म इसका उल्लेख लब्ध नहीं होता) प्रा० दो अप० दो० हि० दो॥ दु (दुगुना) दू दूसरा) ब (बत्तीस) बा (बारह) आदि 'दो के परिवर्तित रूप है । दु दू>दो क रूपान्तर है ।

स० काल म द्वौ रूप परिनिष्ठित था पर जन भाषा में दुओ, दुओ दुइ आदि रूप भी रह होगे । दु' म उ व के प्रभाव से है । ब बा का विकास द्व>ब से हुआ है । स० द्, व पालि काल म 'ब' म परिवर्तित हो गये थे यथा—स० द्वादस पा० बारस। डा० भोलनाथ न ब' वाले रूपों को असमाधेय एव भाषाशास्त्रियों के लिए एक समस्या बताया है। व द्वौ म व को निबल मानकर दो का स्वाभाविक विकास मानते हैं पर द् व >'ब म अस्वाभाविक विकास मानते । मेरे विचार में द्व>ब के विकास की न तो कोई कठिन समस्या है न विकास ही असम्भव ह । वस्तुत द्वौ की उच्चारण परम्परा वैदिक काल मे दो प्रकार की रही होगी । एक उच्चारण परम्परा म 'द्वौ में व

---

1 या म्हि द्वि न्त दुव द्वे २/२२१ पालि महाव्याकरण ।

निर्बल था पर दूसरी उच्चारण परम्परा मे द निबल था यथा–द्वादस > बारस । इन्ही दो उच्चारण परम्पराओ के कारण आधुनिक 'ब' वा ए दो रूपो का विकास हुआ ।

राजस्थानी भाषा मे 'बे दो, दोनो ही रूप प्रयुक्त होते हैं । दो का विकास हिन्दी वद् ही है। बे' का विकास इस प्रकार है । स० द्वि० पा द्वे प्रा० वे अप० बे० राज० बे ।

तीन––इसका उद्‌भव स० त्रीणि (नपु०) पा० तीणि प्रा० तिण्णि अप० तिण्णि, तिण्ण, तिण्णु हि० तीनु तीन । डा० चटर्जी ने प्राकृत तिण्णि द्वित्तीकरण के लिए तीणि रूप की कल्पना की है। डा० वर्मा डा० उदय नारायण ने इसी मत म अपनी सहमति व्यक्त की है। मेरे विचार म एसी कल्पना निराधार है । मेरे विचार म प्राकृत काल मे द्वित्तीकरण एक प्रवत्ति बन गई थी । इसी कारण यह तिण्णि बना है। दूसरा स० त्रीणि मे 'र का पा० प्राकृत म लाप होन पर भी द्वित्व हुआ ह ।

ति (तितालीस) ती (तीनो तीजा) तिर (तिरसठ) तिरे त्रे आदि तीन के अन्य रूपान्तर ह । ये सभी रूप ति के ही परिवर्तित विकसित रूप ह । राजस्थानी भाषा म भी तीन तीण रूप ही प्रयुक्त होते हैं । इनका विकास अप हि ी वत ही ह ।

चार––इसका विकास स० चत्वारि (नपु०) पा० चत्तारि प्रा० चत्तारि अप० चआरि च्यारि, चारि हि० चार । चौ० (चौदह) चौं (चौंतीस) चौर (चौरासी) चार के अन्य रूपा तर ह । इनका विकास स० चतुर प्रा० चौउ अप० च० के रूप म हुआ ह । राजस्थानी भाषा म च्यार, चार रूप प्रयुक्त होते है इनका विकास हि दी वद् ही हुआ ह ।

पाच––इसका उद्‌भव स० पंच पा० पञ्च प्रा पच अप० पंच हिन्दी पाच क रूप में हुआ ह । यहा प्रश्न उठता ह पच > पांच म आ' का आगम कसे हुआ ह ? भाषाशास्त्रियो का अद्यावधि इस ओर ध्यान नहीं

गया है। मेरे वि र में यह चार, सात, आठ के साम्य पर पास म 'ञ' का आगम हुआ है। पन् (पन्द्रह) प (पैंतीस), पच (पचपन) पिच (पिच्यानवे) आदि पांच के अन्य रूपान्तर हैं। इनका विकास क्रमश इस प्रकार है—पन, स० पञ्च पा० पञ्च, पन (दोनो रूप) प्रा० पण्ण अप० पण्ण हि० पन। पैं-म० पच पा० पञ्च प्रा० पञ्च अप० पैंच हि० प। पच मे अनुनासिकता का लोप एव पिच मे इक्यावन तिरेपन आदि के सामान्य पर इ' का आगम हुआ है। राजस्थानी भाषा मे पाच पाच आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। इनका विकास हिन्दीवत् ही हुआ ही है।

छ—इसका विकास स० षट् पा० छ प्रा० छ छओ अप० छ छउ हि० छह, छ छ के रूप में हुआ है। इसके विकास में दो प्रमुख समस्याए हैं। प्रथम स० ष का 'छ' होना दूसरा हिन्दी में छ छह छ रूपो मे विसर्ग ह एव ऐ का आगम।

प्रथम समस्या का (स० ष>छ) मूल कारण पा० प्रा० काल में ष का 'स' मे परिवर्तित होना ह एव ष का ख वत् उच्चरित होना ह। अत भाषाशास्त्रियो का विचार है कि स० षट से 'छ' का विकास सभव नहीं। डा० सुनीतिकुमार स० षट् से छ के विकास को सभव नही मानत अत उन्होने तीन सम्भावनाए की ह—

(१) ईरानी रूपका भारत म गहीत कर लिया गया और यह क्षप या क्षक रूप म सस्कृत काल मे था।

(२) ईरानी- भारतीय क मिश्रण से क्षक या क्षप बना होगा एव उसी स 'छ' विकसित हुआ होगा।

(३) मूल भारोपीय म एक रूप Skes भी था इसी स प्राकृत छ का सरलता से विकास हुआ होगा। डा० वर्मा न इस स दभ मे अपनी असमर्थता व्यक्त की ह। टर्नर भी षट से छ के विकास की सभावना नहीं करते। टनर ने क्षस या क्षस् रूप की कल्पना की ह। उक्त मन्तव्य

पूर्णत प्रमगत एव मात्र मरणा-प्रसूत है प्रमाण-पुष्ट नहीं । मेरे विचार में स० पट से ही छ (प>छ) का विकास हुआ है । पा० प्रा० काल मे जहां प श>स मे परिवतन की प्रवत्ति थी एव वहा च, प>छ मे भी परिवर्तित करने की प्रवत्ति थी ।

वररुचि ने इसका 'पटशावक सप्त पर्णाना छ' (२४१) सूत्र म इसका उल्लेख किया है । पण्मुख>छम्मु ो, शावक>छावओ आदि अनेक उदाहरण नष्ट होत हैं । मर विचार म प छ म परिवतन का मूल कारण रव स पस का छ मे परिवतन होना होगा ।[1] इसी प्रवत्ति का प्रभाव प>छ परिवतन पर पडा होगा । अपभ्र श काल म यह प्रवत्ति और बल वती हुई । हेमचन्द्र ने १ २६५ सूत्र म इसका उल्लेख किया है । अत टनर एव डा० चटर्जी द्वारा कल्पित रूपो का मूल मानना सगत प्रतीत नही होता । डा० भोलानाथ ने भी अपनी इसी मत म सहमति व्यक्त की है ।

दूसरी समस्या छ छँ छह् मे ए ह क आगम की है । इस पर भाषा शास्त्रियो का ध्यान नही गया है । मेरे विचार म ह का आगम 'छ की महाप्राणता के कारण विसग का कारण छ पर बलाघात एव 'ए का आगम 'ह् मे लोप के कारण पूववर्ती का दीर्घीकरण है ।

छ (छप्पन) छि (छिहत्तर) छिय (छियालीस) सोलह आदि का विकास पट से ही हुआ है । राजस्थानी भाषा मे छँ छो रूप प्रयुक्त होते हैं । छ का विकास द्विवत् ह एव छो का विकास अप० छउ से हुआ ह । शेप विकास क्रम द्विदीवत् ही है

सात—इसका विकास स० सप्त पा० सत्त प्रा० सत्त अप० सत्त हि० सात के रूप में हुआ है । सत (सतत्तर) सत्र (सत्रह) सत्त (सत्तावन) सड (सडसठ) सै (सैंतीस) आदि सात क अय रूपातर है । इनमें [सत सत्त का सीधा विकास सप्त से ही है पर सत्र सड, स रूपान्तरों का विकास विचारणीय है । मरे विचार म 'सत्र मं र का आगम पन्द्रह प सादृश्य

पर एव पालि काल में ही दन बारह् में परिवर्तित होने के कारण हुआ है। भाषाविदों का इस ओर ध्यान नहीं गया है। 'सह' में 'ह' का आगम अहसठ के सादृश्य पर तथा त>ट>ह विकास प्रक्रिया के कारण हुआ।

प्राकृत काल में ही त>ट>ह परिवर्तन की प्रक्रिया प्रचलित थी। इसी से सह बना है। सैं का विकास स० सप्त-त्रिंशत>पा० सत्ततिंसति प्रा० सत्ततीस अप० सप्तत्तीस, सत्तीस हि० सैंतीस के रूप में हुआ है। राजस्थानी भाषा में 'सात रूप ही प्रयुक्त होता है।

आठ—इसका उद्भव स० अष्ट से पा० अट्ठ प्रा० अट्ठ अप० अट्ठ हि० आठ के रूप में हुआ है। अठ (अठारह) अट्ठ (अट्ठाइस) अड (अड़तीस) आदि आठ के परिवर्तित रूपान्तर हैं। इनका विकास अष्ट से ही हुआ है। राजस्थानी में आठ रूप ही प्रयुक्त होता है।

नौ— इसका उद्भव स० नव से पा० नव० प्रा० नव, णओ अप० णउ, नउ नव हि० नौ' (अउ>औ स्वर सयोग) के रूप में हुआ है। नव (नवासी) निना निन्या (निन्यानवे) उण उन (उन्चास उणसठ आदि) नौ के अन्य परिवर्तित रूपान्तर है। नव निन आदि का विकास स० 'नव से ही हुआ है। उण उन का विकास स० ऊन (कम अर्थ द्योतक) से हुआ है। एक कम अर्थ द्योतित करने के लिए स० काल में इसका प्रयोग होता था यथा - एकोनविंशति एक+ऊन+विंशति सधि नियम से एकोनविंशति। राजस्थानी भाषा में नौ नउ नओ नव आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। राजस्थानी भाषा में आज भी स० ऊन का प्रयोग सख्यावाची विशेषण में एक कम अर्थ को द्योतित करने के लिए होता है यथा—उण पचास (उन्चास) उणसाठ (उनसठ) आदि।

दस—इसका उद्भव स० दश पा० दस प्रा० दस रह (द>ह स>ह) अप० दस हि० दस के रूप में इसका विकास हुआ है। दस (दसवां) दह (चौदह) रह (ग्यारह) लह (सोलह) द्रह (पन्द्रह) आदि इसके

अन्य परिवर्तित रूपान्तर है। दह, रह, लह द्रह आदि 'दस' का परिवर्तन पालि में रस रह, लह में हो गया था।[1] पर यह प्रवृत्ति विकल्पात्मक थी। यथा– पा० एकादस एकारस (दोनो रूप प्रयुक्त होते थे), बारस, द्वादस पञ्चदस, पन्नरस अट्ठरस अट्ठारस आदि। प्रा० काल मे विकल्पात्मक प्रवृत्ति ही रही अर्थात् एकारस, बारस, पन्नरस आदि रूप ही रहे (स>ह म परिवर्तित हो गया) अप० एव हिन्दी म भी यही परम्परा अक्षुण्ण रही है। राजस्थानी भाषा म 'दस' रूप ही प्रयुक्त होता है।

बीस—इसका उद्भव स० विंशति से पा० बीसति प्रा० वीसइ अप० बीस हि० बीस के रूप में हुआ है। ईस (इक्कीस) व्वीस (छब्बीस) आदि इसके अन्य रूपान्तर है। ईस मे ब का लोप एव व्वीस मे ई क्रमश बलहीनता एव बलाघात के कारण हुआ है। राजस्थानी मे 'बीस' रूप ही प्रयुक्त होता है।

तीस—इसका उद्भव स० त्रिंशत् से पा० तिंसति प्रा० तीस (सभवत तिसइ भी) अप० तीस० हि० तीस के रूप म हुआ है। राजस्थानी म तीस रूप ही प्रयुक्त होता है।

चालिस चालीस—इसका उद्भव स० चत्वारिंशत् पा० चत्तालीसति प्रा० चत्तालीस (सभवत चत्तालीसइ भी) अप० चालीस चाळीस चालिस हि० चालिस चालीस के रूप म हुआ है। तालीस (इकतालीस) आलिस (बियालीस) आदि इसके अन्य रूपान्तर है। इनका विकास चत्वारिंशत से ही हुआ है। तालिस रूप चत्तालिस म च के लोप से विकसित हुआ है। आलिस च त के लोप से विकसित हुआ है। राजस्थानी भाषा म चालीस आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। इनका विकास-क्रम उपरिवत ही है।

---

1 दर सख्यातो पालि महा याकरण ?/१०३

पच्चास—इसका उद्भव सं० पचाशत् से प्रा० पञ्चासा प्रा० पचासा अप० पचास हि० पचास के रूप में हुआ है। यहां प्रश्न उपस्थित होता है पालि 'पञ्चासा' पुनः पचासा कैसे हुआ? मेरे विचार में पालि 'पञ्चासा' बस्तुतः साहित्यिक परम्परा रही होगी। जन भाषा में पचासा रूप ही प्रयुक्त होता होगा जिसका प्रमाण प्राकृत में आकर लुप्त हो जाता है। चास (उनचास) वन (इक्यावन) पन (तिरपन) पुपन (छप्पन) आदि इसके अन्य रूपान्तर हैं। चास में 'च' का लोप हुआ है। ववन, पन पुपन सं० पचाशत से ही विकसित हुए हैं। राजस्थानी में 'पच्चास' रूप प्रयुक्त होता है।

साठ—इसका उद्भव सं० षाष्ठि पा० सट्ठि प्रा० सट्ठि अप० सट्ठि हि० साठ के रूप में हुआ है। सठ (इक्सठ) इसका अन्य रूपान्तर है जिसका सम्बन्ध सं० षष्ठि से ही है। राजस्थानी भाषा में साठ रूप ही प्रयुक्त होता है।

सत्तर—इसका विकास क्रम इस प्रकार है—सं० सप्तति पा सत्तति प्रा० सत्तरि अप० सत्तरि हि० सत्तर। प्राकृत काल में त > र में कैसे परिवर्तित हुआ? विवादास्पद है। डा० चटर्जी अकारण मूर्धन्यीभवन मानते हैं। डा० वर्मा त > र होने का सतोषप्रद कारण नहीं मानते हैं। डा० भोलानाथ इसे त > ट > ड > ड़ > र के रूप में विकसित मानते हैं एवं इसे प्रयत्नात्मक मूर्धन्यीभवन मानते हैं मेरे विचार में इस त > र के परिवर्तन का मूल कारण पालिकालीन ट > र (सं० अष्टादश पा० अट्ठारस, सं० एकादश पा० एकारह आदि) परिवर्तन प्रवृत्ति का प्रभाव रहा होगा। इसका परिवर्तन इस प्रकार हुआ है त > द > ड > र। हत्तर (बहत्तर) तर (पचत्तर) अत्तर (छियत्तर) आदि इसके अन्य रूपान्तर हैं। स > ह की प्रवृत्ति के कारण सत्तर का हत्तर रूप विकसित हुआ है। अत्तर तर क्रमशः स एवं स-त के लोप से बने हैं। राजस्थानी भाषा में सत्तर सित्तर रूप प्रयुक्त होते हैं। इनका विकास क्रम भी उपरिवत् है। 'सित्तर' में आद्य 'इ' का

का भागम सप्तति>सत्तरि>सित्तर (एकागी विपर्यय) के रूप में हुआ है।

अस्सी—इसका विकास क्रम इस प्रकार है—स० अशीति पा० असीति प्रा० असीइ अप० असीइ अस्सी हि० अस्सी। इस रूप म 'स' के द्वित्तीकरण का कारण डा० वर्मा पजाबी प्रभाव मानते हैं। यह असगत ह। वस्तुत यह अपभ्रश कालीन द्वित्व प्रवत्ति के अवशिष्ट रूप हैं। अप० का 'अस्सी' रूप हिन्दी मे इसी रूप मे स्वीकृत हुआ है। य/यासी (इक्यासी) इसका अन्य रूपान्तर है। राजस्थानी भाषा म अस्सी रूप ही प्रयुक्त होता है।

नब्बे इसका विकास क्रम इस प्रकार है—स० नवति पा० नवुति प्रा० णवइ अप० णवइ हि० नब्बे नब्बे। 'ब्बे' द्वित्तीकरण डा० भोलानाथ ने पजाबी प्रभाव माना है। मेरे विचार म अइ>ए ध्वनि पर बल होने के कारण वे>ब्बे>ब्बे बना है। राजस्थानी भाषा म नब्बे, नुव्वे आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। नुव्वे का विकास क्रम इस प्रकार है—स० नवति पा० नवुति (अव के कारण उ का आगम) प्रा० णवुइ णवइ अप० णवुइ णुवइ राज० नुवे नुव्वे, नूवे।

सौ—इसका विकास क्रम इस प्रकार हैं स० शत पा० सत प्रा० सअ, सय अप० सउ सइ हि० स, राज० सौ स। राजस्थानी मे सौ, स रूप प्रयुक्त होत है। सौ का प्रयोग स्वतन्त्र एव सयुक्त दोनो रूपों म होता है यथा सौ सात सौ। सै का प्रयोग केवल सयुक्त रूप म ही होता ह। दोयसौ तीनसै दोनो रू।

हजार—हिन्दी मे यह फारसी से आगत हैं। सस्कृत पालि प्राकृत अपभ्रश म क्रमश सहस्र सहस्स सहस्स रूप प्रयुक्त होते थे। राजस्थानी में भी हजार' रूप ही प्रयुक्त होता ह।

लाख इसका उद्‌भव स० लक्ष से इस प्रकार ह—स० लक्ष पा० लक्ख प्रा० अप० लक्ख हि० लाख। राजस्थानी में लाख रू ही प्रयुक्त होता है।

करोड़ — इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'कोटि' से हुई है। जिसका विकास क्रम इस प्रकार है। संस्कृत कोटि पालि कोटि प्रा० कोडि अप० कोड हि० करोड। हिन्दी में 'र' का आगम कैसे हुआ? इस विषय में भाषाविदों में मतैक्य नहीं है। डा० वर्मा इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध बताते हैं एवं कहते हैं हो सकता है स० कोटि के आधार पर हिन्दी में 'र' लिया गया है। डा० चटर्जी एवं उदयनारायण भी इस संस्कृत रूप देने की प्रवृत्ति को ही इसका कारण मानते हैं। डा० भोलानाथ स्वर वियोग >स्वरभक्ति विरोध अंग्रेजी डजन हि० दर्जन की तरह ही इसे होना मानते हैं। मु० उक्त मान्यताएं संगत प्रतीत नहीं होतीं। वस्तुतः इसका प्रकृत विकास क्रम इस प्रकार होगा स० कोटि पा० कोटि प्रा० कोडि अप० कोडि, कोड प्रवधि कोडि>कोरि, करोरि, करोड। 'र' का आगम 'ड' के प्रभाव के कारण हुआ है। राजस्थानी भाषा में क्रोड' करोड रूप प्रयुक्त होते हैं। इसका विकास क्रम उपरिवत् है।

अरब— इसका संबंध स० 'अर्बुद' से है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है। स० अर्बुद>पा×अब्बुद प्रा×अब्बुअ, अरबअ अप०× अरबु हि० अरब। संस्कृत काल में इसका प्रयोग 'दस करोड' के अर्थ में होता था। जबकि हिन्दी में सौ करोड' हेतु होता है। पालि काल में इसमें एक के बाद छप्पन शून्य प्रयुक्त होते थे। राजस्थानी भाषा में अरब अड़ब आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। यह हिन्दी में सौ करोड के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।

खरब—इसकी व्युत्पत्ति स० खर्व से हुई है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है—स० खरवअ अप० खरबु हि० खरब। अरब की भांति यह रूप भी संस्कृत काल में दस अरब के अर्थ में प्रयुक्त होता था जबकि हिन्दी में यह 'सौ अरब' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। राजस्थानी में खरब खरब आदि रूप प्रयुक्त होते हैं।

नील—इसका मूल रूप संस्कृत में उपलब्ध नहीं होता। हिन्दी में यथावधि इसका मूल स्रोत संदिग्ध है। हिन्दी एवं राजस्थानी में यह 'सौ खरब' के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पद्म—इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है सं० पद्म पा० पदुम प्रा० पम्मग्र अप० पदमउ हि० पदम। हिन्दी एवं राजस्थानी में 'सौ नील' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पालिकाल इसमें एक के बाद एक सौ उन्नीस शून्य प्रयुक्त होते थे। प्रा० अप० में भी यह निश्चयात्मक संख्या रूप में प्रयुक्त होता था या नहीं संदिग्ध है। अभी तक मुझे इसके प्रमाण नहीं मिले हैं। हिन्दी एवं राज० में यह निश्चयात्मक संख्या सौ नील के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

शंख—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत शंख से ही है। यह विकसित रूप में हिन्दी में गृहीत नहीं हुआ है। पा० प्रा० अप० में इसका प्रयोग लक्षित नहीं होता। हिन्दी एवं राज० में यह सौ पद्म अर्थ में प्रयुक्त होता है।

संस्कृत पालि प्राकृत एवं अप० काल में अनेक संख्यावाची शब्द प्रयुक्त होते थे पर हिन्दी एवं राज० में वे गृहीत नहीं हुए हैं। उदाहरणार्थ सं० अयुत नियुत प्रयुत अर्बुद महार्बुद निखर्व आदि। पा० परकोटि (एक के बाद चौदह शून्य) कोटिप्पकोटि (एक के बाद इक्कीस शून्य) नहुत (एक के बाद अट्ठाइस शून्य) निन्नहुत (एक के बाद पैंतीस शून्य) बिन्दु (एक के बाद उन्चास शून्य) अब्बुद (एक के बाद छप्पन शून्य) निरब्बुद (एक के बाद तिरसठ शून्य) अहह (एक के बाद सत्तर शून्य) अबब (एक के बाद सतत्तर शून्य) अटट (एक के बाद चौरासी शून्य) सोगन्धिक (एक के बाद इक्यानवे शून्य) उप्पल (एक के बाद अट्ठानवे शून्य) कुमुद (एक के बाद एक सौ पाँच शून्य) पुण्डरीक (एक के बाद एक सौ उन्नीस शून्य) कथान (एक के बाद एक सौ छब्बीस शून्य) महाकथान (एक के बाद एक सौ तैंतीस शून्य) असं

रयेय (एक के बाद एक सौ चालीस शून्य) ।[1] इसी प्रकार प्राकृत एवं अप० में भी उपयुक्त में से कई विशेषण प्रयुक्त होते थे। निश्चित संख्यावाची विशेषणों के विस्तृत अध्ययन में लेखक की दृष्टि से तद्भव शब्द सूचिका लाभप्रद होगी।

४१४२ अपूर्णता बोधक विशेषण-पद—

पाव—इसकी व्युत्पत्ति सं० पाद से इस प्रकार हुई है सं० पाद पा०× प्रा० पाओ अप० पाउ हि० पाव। पौवा, पई आदि इसके अन्य रूपान्तर हैं। इनका विकास क्रमशः सं० के पादक पादिका से हुआ है। राजस्थानी भाषा में भी 'पाव' रूप ही प्रयुक्त होता है।

चौथाई—इसका विकास सं० 'चतुर्थिका' से हुआ है— सं० चतुर्थिका प्रा० चउत्थिआ हि० चौथाई (इ+आ विपयय) राजस्थानी में यह इसी रूप में प्रयुक्त होता है।

तिहाई—इसका उद्भव सं० 'त्रिभागिका' से इस प्रकार हुआ है- सं० त्रिभागिका प्रा० तिहाइआ हि० तिहाई। राजस्थानी में यह तिहाई तियाई रूप में प्रयुक्त होता है।

आधा—इसकी व्युत्पत्ति सं० अर्ध से हुई है—सं० अर्ध पा० अड्ढ अद्ध प्रा० अद्धअ अप० अद्धअ अद्धउ हि० आधा। राजस्थानी भाषा में आधा (आधा सेर) अध (अध पाव) आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। इनका विकास भी सं० अर्ध से ही हुआ है।

पौन—इसकी व्युत्पत्ति सं० पादोन से इस प्रकार हुई है— सं० पादोन पा०×प्रा० पाओण अप० पाउण, पउण हि० पौन। पौना पौने (पौना सो, पौने तीन) आदि इसके अन्य रूपान्तर हैं) राजस्थानी में 'पूण

---

१ देखिये पाल महाव्याकरण भिक्षु जगदीश महाबोधि सभा, सारनाथ बनारस।

पूणी, पूणा आदि रूप प्रयुक्त होते हैं यथा पूणी च्यार, पूणा मो, 'पूण सेर' आदि। इनका विकास स० पादोन से ही हुआ है।

सवा—इसका उद्भव स० सपाद से हुआ है स० सपाद पा० × प्रा० सवाभ अप० सवाम हि० सवा। राजस्थानी भाषा मे भी यह सवा, सवाइ आदि रूपों म प्रयुक्त होता है।

साढा साढे—इसका उद्भव स० 'सार्ध' से हुआ है —स० सार्ध पा० सड्ढ प्रा० सड्ढओ सड्ढअ अप० सड्ढअ हि० साढा साढे। 'साढे' मे 'ए' के आगम के विषय म भाषाविदो में विवाद है। डा० वर्मा इसे विकारी ए मानते हैं जो सर्वथा असगत है क्योंकि स्पष्ट ही इसम विकृतता नही है। डा० भोलानाथ न इसे मागधी का प्रभाव मानकर इसका विकास क्रम इस प्रकार दिया है— स० सार्धक प्रा० सड्ढओ (पूर्वी प्रदेश मागधी आदि म सड्ढए कल्पित रूप) अप० सड्ढे (कल्पित रूप) हि० साढे। पर यह सगत नहीं क्योंकि सड्ढे का प्रयोग मागधी ग्रन्थ म मुझे बहुत ढूढने पर भी नही मिला।। वररुचि ने मागधी की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए लिखा है। प्रकृति शौरसेनी ११/२ अर्थात् इसकी प्रकृति शौरसेनीवत् है उन्होंने इस 'ए' का कही उल्लेख नही किया है (देखिये प्राकृत प्रकाश-ग्यारह परिच्छेद)। वस्तुत पालि काल में यह प्रवृत्ति किञ्चित विकल्प रूप स सज्ञा श० । म थी[1] विशेषण शब्दो म नही। मेरे विचार म इस ए का आगम चौथाई तिहाई आदि के सादृश्य पर इ>ए गुणीय रूप ही है। राजस्थानी आदि भाषाओ म यह ई रूप में ही प्रयुक्त होता है यथा साढा तीन साढी सात हि० साढे सात आदि।

डेढ़—इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध म भाषाविदो म पूर्णत विवाद है। डा० वर्मा ने इसकी व्युत्पत्ति स० द्वयद्ध से इस प्रकार बताई है स० द्वयध प्रा० दिअड्ढ हि० डेढ। डा० उदयनारायण द्वि + अर्ध + क से इसका सम्बन्ध

द कच्चे वा १११२ पालि महाव्याकरण

जोड़ते हैं। बेबर अपभ्रंश से इसे विकसित मानते हैं। कुछ लोग अध+द्वितीय प्रा० अड्ढ हुइए वियय दुइअड्ढ ए>ऽड मानते हैं।

डा० भोलानाथ ने स० द्विकाध से इसका सम्बन्ध जोड़कर इसका विकास क्रम इस प्रकार बताया है—स० द्विकाध प्रा० दिवड्ड अप० दिअड्ढ>हि० डेढ़। वस्तुत उपयुक्त सभी मतो मे कल्पना का ही सहारा है प्रमाणो का नहीं। वस्तुत इस रूप की व्युत्पत्ति स० द्वितीय+अर्ध के सामासिक रूप से हुई है। पालिकाल म यह दियड्ढ तथा दिवड्ढ रूप म ड्ढ अर्थ मे उपलब्ध भी होता है। पालि महावैयाकरणकार ने दुतियस्स सह दियड्ढ दिवड्ढा (४/२०६) अर्थात् अड्ढ शब्द के साथ दुतिय का समास होने से दियड्ढ रूप बनता है। प्रा० एव अप० काल म यह रूप डिअड्ढ एव डिवड्ढा रूप मे उपलब्ध होता है। हिन्दी मे इ>ए (गुण) होकर ड्ढ रूप मिला एव दिवड्ढा से डेढा बना है। राजस्थानी भाषा म ड्ढ, डोढ आदि रूप प्रयुक्त होते हैं जो इसी के रूपान्तर हैं।

अढाई ढाई—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत अर्ध तृतीय से हुई है। पालि काल में यह अड्ढतियो रूप म प्रयुक्त होता था।[1] प्राकृत एव अप० काल म यह अड्ढइअ रूप मे प्रयुक्त होता था। डा० वर्मा ने अर्ध तृतीय से तो इसकी व्युत्पत्ति बताई है पर विकास क्रम सगत नही। स० अर्ध तृतीय प्रा० अड्ढतीय, अढाई, ढाई। प्रा० में 'अड्ढतीय' रूप ही लब्ध नही होता। डा० भोलानाथ ने इसका विकास क्रम इस प्रकार बताया है—स० अर्ध तृतीय> अड्ढतिज्ज\/अड्ढइज्ज अड्ढाइअ>अढाई ढाई। मेरे विचार म यह विकास क्रम सगत नहीं क्योकि स० अर्ध तृतीय पालिकाल म अड्ढतिय, अड्ढतियो रूप म विकसित हुआ था। प्राकृत म अड्ढइअ रूप ही लब्ध होता है।

---

१ अड्ढतियार म ड डु ड ढ तिया। / ३१०५ / पालि महाव्याकरण

डा० भोलानाथ ने जो 'य>ज प्रवृत्ति' के कारण जो कल्पना की है वह इस रूप म सगत प्रतीत नही होती क्योकि तत्काल म आदि य>ज ही हुआ था (आदेर्योज) अत इसका विकास क्रम इस प्रकार मानना ही सगत है - स० अर्ध तृतीय पा० अड्ढतियो, प्रा० अड्ढइअ हि अढाई ढाई राजस्थानी भाषा म भी ये इसी रूप मे प्रयुक्त होते हैं ।

१ ४ ५ क्रम वाचक विशेषण-पद—

पहला—इसकी व्युत्पत्ति स० प्रथम से हुई है—स० प्रथम पा० पठमो प्रा० पढमो अप० पढ इल्लअ, हि० पहिला (बोलियो म) पहला (परिनिष्ठित हिन्दी म) । इसकी व्युत्पत्ति परम्परित रूपो से प्रथक है । पालि-काल में स० थ>ठ>ढ म परिवर्तित हुआ । प्राकृत काल म नियमत म >व मे परिवर्तित होना चाहिए था पर अपवादत नही हुआ । अपकाल म ढ ह मे परिवर्तित हुआ एव इसमे इल्लअ प्रत्यय का योग हुआ इसी से हिन्दी रूप पहला विकसित हुआ है । पिशेल ने कल्पित 'प्रथिल रूप से इसका सम्बन्ध जोडा है जो निराधार है क्योकि ऐसा कोई रूप वैयाकरणिक ग्रन्थो एव साहित्यक ग्रन्थो मे लब्ध नही होता । डा० वर्मा ने भी पिशेल का ही अनुकरण किया है । डा० उदयनारायण स० प्रथम (पढम-इल्ल) से इस का सम्बन्ध जोडते है । पर प्राकृत काल तक तो इस अर्थ मे पढमो रूप ही प्रयुक्त होता था । अप० काल मे म' लुप्त होने पर ही इल्लअ का योग हुआ है । अत प्रारम्भ मे ही पढम+इल्ल मानना असगत है । डा० भोलानाथ न इसका विकास क्रम इस प्रकार माना है—स० प्रथम प्रा० पढम + इल्ल+क=पढमिल्लक पढमिल्लअ अप० पहइल्लअ हि पहिला ।

डा० तिवाडी का मत य अधिक युक्तियुक्त होते हुए भी यत्किंचित् दोषपूर्ण है । वस्तुस्थिति मे प्राकृत काल तक तो पढमो रूप ही प्रयुक्त होता था ।[१] अप० काल म म लुप्त होने के कारण यह शब्द पूर्ण अर्थाभिव्यक्ति

१ देखिये प्राकृत भाषाओ का रूप दर्शन नेमिचन्द्र पृ० १७८

में असमथ रहा अत क्षतिपूरणाथ इल्लम (अविसग का अवशिष्ट है) का योग हुआ । अत अप० म हमें पहिल्लम रूप उपलब्ध होता है एव इसी स 'पहला रूप विकसित हुआ है ।

राजस्थानी भाषा म पेला' पेलडो रूप प्रयुक्त होते हैं । । 'ह' लुप्त होने क कारण अ>ए तथा राजस्थानी ओकारात बहुला भाषा होने के कारण पेलो रूप बना है एव पेलडो मे 'ड' राजस्थानी की प्रवस्थानरूप स्वार्थे प्रत्यय ह ।

दूसरा—इसका उद्भव एव विकास पूणत सदिग्ध है । संस्कृत काल मे 'द्वितीय रूप प्रयुक्त होता था जिसका विकास पालि मे 'दुतियो प्रा० मे दुइज्ज दुइअ अप० दुइज्ज, दुइज्जु रा० 'दूजो रूप मे हुआ है । अत हिन्दी दूसरा' का उद्भव एव विकास द्वितीय से सम्भव नही ।

बीम्स तथा हानले स० द्वि+सत से इसका सम्बन्ध जोडते हैं । डा० वर्मा एव डा० उदयनारायण ने भी इसी मत का अनुसरण किया है । डा० चटर्जी इसमे सर–आ प्रत्यय योग मानते हैं । डा० भोलानाथ ने स० स्त्रीलिंग रूपो चतस्र के आधार पर तिसतीय या तिसतीयक रूप की कल्पना कर तीसरा को विकसित माना ह एव इसी के सादृश्य पर दूसरा को विकसित मानते हैं । मेरे विचार मे उक्त मत सगत नही । 'द्वि+सत जसी सामासिक रचना सस्कृत म नही होती थी, न ही इसका विकास क्रम भी स्पष्ट ह । डा० भोलानाथ ने यद्यपि बहुत ही प्रयासपूवक सगति बिठाने का यत्न किया ह पर परवर्ती भाषाओ मे तिस्र, चतस्र आदि के अन्य विकसित रूप मिलते हैं यथा–तिस्सो, चतस्सो आदि । अत पालि प्राकृत, अप० तक तिसृतीय का विकसित रूप न मिलना एव हिन्दी मे इसका प्रकट हो जाना साथ ही इसी के सादृश्य पर दूसरा की भी रचना होना सगत नही प्रतीत होता । मेरे विचार म उत्तरवर्ती अपभ्रंश काल म सर प्रत्यय आवृत्ति अथ म प्रयुक्त होता है यथा—दूसर' तीसर (दुबारा तिबारा आदि) हिन्दी में यही

प्रावश्यक प्रत्यय सिगवाची प्रत्ययो के योग से (प्राइ, ए) क्रम संख्या वाच-कता को प्रकट करता है। राजस्थानी म 'इजो' 'दूसरो री, रा। इजो का विकास क्रम दिया जा चुका है। शेष रूपो का विकास हिन्दीवत् ही है।

तीसरा—इसका विकास भी दूसरा की भांति ही है। स० त्रि> ती-सर-म्रा/इ/ए/ राजस्थानी भाषा में तीजा 'तीसरा रूप प्रयुक्त होते हैं। तीजा का विकास क्रम इस प्रकार है— स० तृतीय पा० ततियो प्रा० तइज्जो ग्रप० तइज्जो रा० तीजो।

चौथा—इसकी व्युत्पत्ति स० चतुर्थ से इस प्रकार हुई है-स० चतुर्थ पा० चतुत्थो प्रा० चउत्थो राजस्थानी चौथो हि० चौथा।

पाचवा— इसका उद्भव स० पचम से हुआ है पालिकाल म यह पचमो' रूप मे प्रयुक्त होता था। प्रा० अप० काल मे म> व मे परिवर्तित हुआ। हिन्दी मे यही म>व क्रम वाचक सख्याओ के साथ प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार सातवा आठवा नौवा दसवाँ आदि रूपो का विकास हुआ है। इन विशेषण रूपो में वाँ का विकास बीम्स एव डा० वर्मा ने स० तम (पच+ तम) से माना है जो सवथा असगत है। संस्कृत म पचम सप्तम आदि रूप क्रम अर्थ मे प्रयुक्त होते थे। पालि काल म यही प्रत्यय 'मो रूप मे प्रयुक्त होता था यथा—पचमो, सत्तमो, अट्ठमो आदि। पालि महाव्याकरणकार ने इस का उल्लेख भी किया है-'म पचादिकत्तीहि ४/५२ प्राकृत अप० काल में यह व रूप म परिवर्तित हुआ। हिन्दी मे यह व एव आ, ई ए लिंग दर्शी प्रत्ययों के साथ क्रमार्थ को व्यक्त करता है। राजस्थानी भाषा में भी पाचवा पांचवा पाचवी आदि रूप प्रयुक्त होते हैं।

छठा—इसका उद्भव स षष्ठ से हुआ है-स० षष्ठ पा० छट्ठो छठमो अप० छठवा। इ ए (लिंगिक प्रत्यय) हैं। डा० भोलानाथ ने स० षष्ठक से इसका सम्बन्ध जोडा हैं। कुछ पाश्चात्य भाषाविदा ने क प्रत्यय की कल्पना कर प्राकृत अ को इसका अवशिष्ट माना है पर वस्तुस्थिति यह नही है। वस्तुत

स० विसग ( ) पा० प्रा० म गा' म एव अप० म उ व म हि दी म इसका ह्रास हुआ हैं। अत पष्ठक रूप से इसका विकास मानना सगत प्रतीत नही होता। कई स्थलो पर छठवा रूप भी प्रयुक्त होता है जो स्पष्ट पालि 'छठमो' का विकसित रूप है। राजस्थानी भाषा म 'छट्टो' रूप प्रयुक्त होता है। इसका विकास क्रम ऊपरिवत है।

इन रूपो के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा म कतवो, कितवा (कितनेवा पाँचवा–छट्ठा–सातवा आदि म एक को जानने हेतु) आदि रूप भी प्रयुक्त होते है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है—म० कतिम पा० कतिमो प्रा० कतवा कतिवा अप० कतवउ राज० कतवो कितवो।

१४६ आवत्ति वाचक विशेषण–पूर्णांक बोधक विशेषण के आगे 'गुना' गन क योग से आवत्तिवाचक विशेषण की रचना होती है। इस गुना का उद्भव स० गुन ⌒ गुण (द्विगुण) से हुआ है। स० गुन गुण पा० गुणा प्रा० गुणा, उणा अप० गणो हि० गना (आ इ, ए लगिक प्रत्यय है। गुना (दुगुना) गना (दुगना) उना (द्+उना=उ+उ=ऊ— दूना) आदि इसके अय रूपान्तर हैं। इनका विकास भी स० गुन गुण से हुआ है एव ये आवत्ति वाचक रूपा म प्रयुक्त होते हैं। 'हरा के याग से भी आवत्तिवाचक विशेषण रचित हात ह यथा इकहरा, दोहरा आदि। डा० उदयनारायण न इसका सम्बध स० हर (भाग) एव भोलानाथ ने हरक से जोडा है। हानले इसका सबध स० विध (द्विविध) विह+रा (डा) स जोडते है। मरे विचार म इसका सम्बध स० हर से मानना ही अधिक सगत है। राजस्थानी भाषा म इस अथ में लडा—तरा का योग होता है यथा दोलडा–चौतडा आदि।

१४७ प्रत्येक बोधक विशेषण –

प्रत्येक हरेक, हर आदि के द्वारा इस अथ की अभि यक्ति होती है। प्रत्येक का सम्बध स० प्रतिये+एक (सधि–प्रत्येक) हर+एक (सधि) एव हर का सम्बध स० 'हर मे है। इसके अतिरिक्त पूर्णांक बोधक विशेषणो

की द्विरुक्ति से भी उस अर्थ की अभिव्यक्ति होती है । यथा—एक एक ग्राम बाट दो । पांच-पांच रुपये देंगे । राजस्थानी भाषा में 'हर' एवं हरेक का प्रयोग होता है ।

१४८ समुदाय बोधक विशेषण—

१४८ इक्का, दुक्का, चौका, पंचा, पंजा छक्का आदि । इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषाविद संदिग्ध हैं । डा० वर्मा व उदयनारायण ने इसकी व्युत्पत्ति-बोध में अज्ञानता व्यक्त की है । डा० भोलानाथ ने सं० सप्तक पंचक आदि से इसका सम्बन्ध जोड़ा है । मेरे विचार में आ का विकास (सं० अक (पंचक) अ+अ>आ के रूप में हुआ है एवं दुक्का छक्का आदि की रचना दो संख्यावाची विशेषणों द्वि+एक /आ—दुक्का, छ+एक/आ छक्का के रूप में हुई है । राजस्थानी भाषा में भी ये ही रूप प्रयुक्त होते हैं यथा—छक्का—चौका आदि ।

नहला दहला—दहला की व्युत्पत्ति सं० दस एवं अप० ल (स्वार्थे) प्रत्यय के योग से हुई है । सं० दस अप० में दह रूप में भी प्रयुक्त होता था इसी में ल' प्रत्यय के योग से इसकी रचना हुई है । नहला की रचना दहला के सादृश्य पर हुई है ।

दुकड़ी, तिकड़ी चौकड़ी, छकड़ी— इनकी व्युत्पत्ति संख्यावाची विशेषणों में कड़ी (स्वार्थे प्रत्यय राजस्थानी ड के प्रभाव से) के योग से हुई है । इस प्रत्यय का विकास सं० कृत >कडअ>कड्आ कड्अो कड़ा । इ /ए/ के रूप में हुआ है । राजस्थानी भाषा में भी ये ही रूप प्रयुक्त होते हैं ।

जोड़ा—इसकी व्युत्पत्ति सं० युगल_सं० हुई है । सं० युगल पा० जुगला प्रा० जोडओ, जोऊ अप० जोडउ (स्वार्थे) राज० जोड़ा हिंदी जोड़ा ल>र>ड के रूप में ड का विकास हुआ है । संस्कृत काल से ही र> ल में अभेद था । पाणिनि ने भी इसका उल्लेख किया है—रलयोरभेद—

परवर्ती भाषाओं में र—ड>ड में प्रयुक्त होने लगे । आज भी व्रजभाषी ड का र उच्चारण करते हैं जबकि राजस्थानी भाषाभाषी 'ड' यथा-'जारो-जोडो'। डा० भोलानाथ ने 'तुर्की जोरा' से इसके विकास की अधिक सम्भावना व्यक्त की है । मेरे विचार में यह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता क्योंकि सं० युगल से इसका विकास क्रम अर्थ की दृष्टि से संगत है । इसके प्रमाण भी परवर्ती भाषाओं में उपलब्ध होते हैं । राजस्थानी में 'जोड़ा' रूप प्रयुक्त होता है ।

इनके अतिरिक्त प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी में गड्डा गड्डी, कोड़ी आदि रूप भी प्रयुक्त होते थे पर आजकल नहीं होते । अंग्रेजी शब्द डजन का दर्जन रूप में प्रयोग अवश्य आजकल प्रचलित । राजस्थानी भाषा में दर्जन (दरजण) रूप के अतिरिक्त उपयुक्त रूप प्रयुक्त नहीं होते ।

१४९ अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण —

हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में स्वतन्त्र रूप से अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण उपलब्ध नहीं होते । इस अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए पूर्णांक बोधक संख्याओं के आगे 'एक' जोड़कर एवं दो निकटवर्ती या दो दूरस्थ संख्याओं के योग से होती है यथा—दो-एक, चार-एक पांच छै आदि दस आदि । हिन्दी भाषा की यह प्रयोग-प्रक्रिया निजी है । पूर्ववर्ती भाषाओं में ऐसे प्रयोग उपलब्ध नहीं होते ।

१४१० प्रत्ययान्त विशेषण पद—

हिन्दी भाषा में त/आ, ई, ए न/आ, ई, ए वान आदि कृत वत प्रत्ययों के योग से प्रत्ययान्त विशेषण रचित होते हैं । ये अपने लिंग वचन एवं कारक के अनुरूप परिवर्तित होते हैं । इन प्रत्ययों का ऐतिहासिक विवरण 'उपसर्ग एवं प्रत्यय' शीर्षक अध्याय में दिया गया है । राजस्थानी भाषा में भी ये ही प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं ।

/

१ ४ ११ सार्वनामिक विशेषण पद—

हिन्दी एव राजस्थानी म कुछ ऐसे विशेषण-पद भी है जो सर्वनामो पर आधृत है पर विशेषण वत अर्थाभिव्यक्ति करते है । यथा—इतना, इत्ता उतना, उत्ता, कितना कित्ता जितना जित्ता, तितना तित्ता, ऐसा, वसा, कैसा जैसा, तैसा आदि । ये रूप परिणाम वाचक एव गुणवाचक विशेषणो के अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं । अत इनका ऐतिहासिक विवरण क्रमश गुण वाचक एव परिणाम वाचक विशेषणों के अन्तगत ही दिया गया है । राज० भाषा म ये रूप कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ प्रयुक्त होते है । इनका भी ऐतिहासिक विवरण उन्हीं शीषकों क अन्तगत दिया गया है ।

१ ४ १२ सदृशता वाचक विशेषण-पद—

हिन्दी भाषा मे इस अथ म सा, सरीखा जैसा समान विशेषण पद प्रयुक्त होते हैं । इनका क्रमिक विकास क्रम इस प्रकार है--स० सम पा० समो प्रा० सव अप० सम्र सउ हि० सा । स० सदृश पा० सदिसो सरिसो प्रा० सरिसा, सरिखो अप० सरिसो, सरिखो हि० सरीखा, राज० सरीसा । स० यादश पा० यदिदमा प्रा० जइसो अप० जइसअ हि० जसा । समान की व्युत्पत्ति स० सम से ही है । राजस्थानी भाषा में जिस्सा सरीसा समान आदि रूप प्रयुक्त होते हैं । इनका विकास हिन्दीवत् ही है ।

१ ४ १३ परिणाम वाचक विशेषण पद—

हिन्दी भाषा म इस अर्थ म इतना (इत्ता भी) उतना (उतना भी) कितना (कित्ता भी) जितना (जित्ता भी) रूप प्रयुक्त होते है । इनका विकास क्रम इस प्रकार है--स० इयत् प्रा० इत्तअ एत्तिअ अप० इत्तअ हिन्दी इत्ता उतनो । उतना की व्युत्पत्ति इतना के सादश्य पर है । सम्भवत व > उतना = उतना । स०यावत् प्रा०जेत्तिअ अप०जितअ हि जित्ता जिता ।अप०कित्तउ हि कित्ता, कितना । प्राय सभी भाषाविदो ने इन रूपो का सम्बन्ध स० इयत्, कियत्, यावत् तावत् से ही जोडा है क्योकि प्राकृत रूप एत्तिअ केत्तिअ

तेत्तिग्र, जेत्तिग्र उपलब्ध है ।[1] इन्हीं का विकसित रूप इत्ता कित्ता जित्ता, उत्ता ग्रादि है पर 'इतना' जितना, कितना ग्रादि म 'न' का ग्रागम कैसे हुग्रा इस विषय म भाषाविदो मे मतैक्य नहीं है । बीम्स के ग्रनुसार यह लघुत्व बोधक प्रत्यय है जो ग्रपना ग्रर्थ खो चुका है । केलाग, डा० वर्मा डा उदयनारायण इसी मत के समर्थक है । डा० भोलानाथ इस मत से सहमत नही हैं । व 'न' को स्वार्थे या विशेषणात्मक मानत हैं । मेरे विचार म उक्त मत ग्रसगत हैं । मरे विचार म परिमाणार्थ हि० त्ता का विकास तो स० इयत् कियत् ग्रादि के यत् से हुग्रा है जिसका पालि रूप 'त्तक'[2] एव प्रा० ग्रप० रूप त्तग्र[3] त्तउ हि० त्ता है । 'न' का विकास स० वतुप प्रत्यय से हुग्रा है । वतुप' का परिमाण ग्रर्थ म सावनामिक रूपो के साथ ग्रान् ग्रादेश होकर । एतावान, तावान रूप सिद्ध होते थे ।[4] पालिकाल म वतुप प्रत्यय ग्रावन्तु था एव इससे परिमाणार्थक यावन्त, तावन्त, एतावन्त ग्रादि रूप सिद्ध होते थे ।[5] प्रा० एव ग्रप० काल म एतणो जतणो रूप होने थ । हिन्दी म ण>न होकर इतना जितना कितना ग्रादि रूप प्रयुक्त होन हैं । राजस्थानी भाषा म इत्तो कित्तो जित्तो इतरो कतरो, जतरो इतरोक कतरोक इतगा ग्रादि रूप प्रयुक्त होन हैं । इनका विकास भी उप रिवत् है । रो, रोक ग्रादि स्वार्थे प्रत्यय हैं ।

गुणवाचक—हिन्दी भाषा म इस ग्रर्थ में ऐसा वैसा कैसा, जैसा

---

१ प्राकृत काल म परिमाण ग्रर्थ म 'त्तग्र' प्रत्ययान्त (पालि त्तक) शब्द प्रयुक्त होते थे प्राकृत प्रकाश के सूत्र ८/२८ की वार्तिक परिमाणे किमादिभ्यो भवति म इसका उल्लेख है ।

२ यतेतेहि त्तको ८/४२ पालिमहाव्याकरण

३ परिमाणे किमादिभ्यो भवन्ति केदद्दादय ४/२५ (वार्तिक) प्राकृत प्रकाश

४ यत्त देतेभ्य परिमाणे वतुप १/२/३६ पाणिनि ग्रष्टाध्यायी

५ राज्ञा चा वन्तु ४/८३ पालि महाव्याकरण

तैसा आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। इनका विकास क्रम इस प्रकार है— संस्कृत कीदृश पा० केदिदसो, करिसो प्रा० केरिसो[1] अप० कइसो[2] हि० कैसा। सं० यादृश पा० यदिसा प्रा० जेरिसो अप० जइसो हि० जैसा। संस्कृत ईदृश पा० एदिदसो प्रा० एरिसो अप० अइसो हि० ऐसा। वैसा रूप इन्हीं के सादृश्य पर (वह–व–अप० अइसो) रचित है। सं० तादृश पा० तादिसा प्रा० तरिसा अप० तइसा हिन्दी तैसा। प्रायः सभी भाषाविद् इनकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में एक मत हैं। डा० भोलानाथ ईदृश+क से इसका विकास मानते हैं। पर जैसा कि लिखा जा चुका है कि क की कल्पना अवांछनीय है।

राजस्थानी विशेषण–पदों के विशिष्ट अध्ययन के लिए देखें लेखक कृत —बीकानेरी बोली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन।

---

१ एत्पीडापीड कीदृगीदृशेषु १ १६

२ यता दृश (अपभ्रंशे यादृगादीनाम् दृकारात् यादृश तादृश कीदृशेदृशानां दादेरवयवस्य डित् अइस इत्यादेशो भवति–यथ–यादृश–तइस, कीदृश–कइस, ईदृश अइसा। प्रा० व्याकरण –४०३–

अव्यय प्रकरण

५ • जो शब्द रूप वाक्यान्तगत अन्य शब्द रूपा (सज्ञा–सवनाम–विशेषण आदि) की भाति लिंग वचन एव कारकानुरूप परिवर्तित नहीं होत, अव्यय सज्ञक होत हैं। सस्कृत वैयाकरणा ने भी अव्यया का इसी प्रकार परिभाषित किया है—नव्येति न विविध विकार गच्छतीत्यव्ययम् अथवा—सदृश त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु वचनेषु च सर्वेषु, यन्न व्यति तदव्ययम् अर्थात् जो तीना लिंगों म, सब विभक्तियो और सब वचनो म एक जैसा रहता है तथा जिसमे कोई विकार या परिवतन नहीं होता, उसे अव्यय कहते हैं। आचाय पाणिनि ने स्वर आदि शब्दो (स्वग प्रात आदि कुल ८६ शब्दों एव आकृतिगण होने के कारण इस प्रकार के अन्य शब्दों) तथा निपातों को अव्यय शब्द की सज्ञा दी।[1] जो उपसर्ग, सुबन्त, तिङन्त निपातों की भांति थे तथा *जिन तद्धितान्त* रूपो म सारी विभक्तियां नहीं आती थी उन्हेंभी पाणिनि ने अव्यय कहा।[2] इसके अतिरिक्त म् एव एच (ए-ओ)

---

१ स्वरादि निपातम् अव्ययम् १/१/३७ अष्टाध्यायी

२ क उपसग विभक्तिस्वर प्रतिरूपकाश्च गणसूत्र

ख तद्धितश्चासव विभक्ति १/१/३८ अष्टाध्यायी

अन्त वाले कृदन्त शब्दों[1] क्त्वा, (त्वा) तोसुन् (तो) व कसुन् (अ) प्रत्ययान्त शब्द[2] एवं अव्ययी भाव समासान्त शब्दों को अव्यय संज्ञा प्रदान की[3] एवं अव्यय शब्दों में स्त्रीबोधक आप (आ), कारक बोधक सुप प्रत्ययों का लोप माना।[4] पालि काल में 'अव्ययों को असख्य' संज्ञा दी गई एवं संस्कृतवत् इन शब्दों में विभक्तियों का लोप माना– न विज्जते संख्या यस्स तं असंख्य (मोग्गलान पंजिका ३ २) प्राकृत एवं अपभ्रंश काल में ऐसे शब्द रूपों को पुनः अव्यय संज्ञा से ही अभिहित किया गया।

५ १ विभिन्न भाषिक कालों में अव्ययों के विभिन्न भेद किये गये। संस्कृत काल में मुख्यतः अव्ययों के छः भेद किये गये— १ स्वरादि शब्द २ निपात ३ निपातवत उपसर्ग, सुबन्त तिङन्त ४ अव्ययवत् कृदन्त शब्द ५ अव्ययवत तद्धितान्त शब्द ६ अव्ययी भाव समासी शब्द।

पालिकाल में अव्ययों के पांच भेद किये गये—१ उपसर्ग २ निमित्तार्थक ३ पूर्वकालिक ४ तद्धितान्त ५ रूढ़ि। प्राकृत काल में वररुचि ने प न्ह नव अर्थों में प्रयुक्त नव निपात गिनाए एवं शेष प्रयोग संस्कृतवत् बताए। अप० काल में हेमचन्द्र ने अव्यय शब्दों के विकृत रूपों को बताया एवं वर्ग संस्कृतवत् ही माने।

हिन्दी एवं राजस्थानी अव्ययों के स्थूल रूप से दो भेद किए जा सकते हैं– १ परिवर्तित अव्यय शब्द रूप (इस अव्ययों में क्रिया विशेषण, व विभक्ति प्रत्यय युक्त शब्द आते हैं। २ अपरिवर्तित अव्यय (शेष सभी अव्यय) परिवर्तित क्रिया विशेषण अव्यय एवं विभक्ति–प्रत्यय युक्त अव्यय

---

१ कृमेजन्त १/१/३० अष्टाध्यायी

२ क्त्वातोसुन् कसुन १/१/४० वही

३ अव्ययीभावश्च १/१/४१ वही

४ अव्ययादाप्सुप १/१/८२ वही

५ असंख्य हि स त्रा सा० २ १२० पालिमहाव्याकरण

हि्न्दी का नव प्रयोग नहीं। संस्कृत काल में भी ऐसे प्रयोग थे। पाणिनि ने तद्धितश्चा सर्व विभक्ति[1] में इसका उल्लेख किया है। पालि वैयाकरणों ने भी परिवर्तित क्रिया विशेषण का उल्लेख किया है— वेग गच्छति वगेन गच्छति आदि हिन्दी में इस परम्परा का विकास मात्र है। अर्थ एवं प्रयोग के आधार पर हम हिन्दी एवं राजस्थानी अव्यय रूपों को इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं— (अगले पृष्ठ पर देखें)

११.१ क्रिया विशेषण—

रचनात्मक दृष्टि से हिन्दी एवं राजस्थानी क्रियाविशेषणों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—१ मूल क्रिया विशेषण २ व्युत्पन्न क्रिया विशेषण ३ संयुक्त क्रिया विशेषण।

११११ मूल क्रियाविशेषण—

जो क्रिया विशेषण दूसरे शब्दों से नहीं बनते हैं, मूल क्रिया विशेषण कहलाते हैं। अर्थ की दृष्टि से इन क्रिया विशेषणों के निम्नलिखित भेद हैं— १ स्थानवाचक २ काल वाचक ३ रीतिवाचक ४ परिमाण वाचक ५ स्वीकार व निषेध वाचक ६ निश्चय एवं अनिश्चय वाचक।

११११ स्थान वाचक—

स्थान वाचक क्रिया विशेषणों के भी दो भेद हैं—१ स्थिति बोधक २ दिशा बोधक। स्थिति बोधक क्रिया विशेषण निम्नलिखित हैं— आगे पीछे ऊपर, नीचे बाहर भीतर अन्दर। इनका विकास क्रम इस प्रकार है— सं० अग्रे पा० अग्ग प्रा० अग्ग० अगग हि० आगे। सं० पश्चात् प्रा० पच्छा अप० पच्छइ हि० पीछे। डा० भोलानाथ ने इसका विकास क्रम इस प्रकार दिया है—सं० पश्च प्रा० पिच्छ हि० पीछे। यह विकास क्रम सगत नहीं है क्योंकि सं० रूप पश्चात्' से इसका विकास हुआ है। उन्होंने प्रा० रूप पिच्छ दिया है जो मुझे बहुत खोजने पर भी नहीं मिला बल्कि 'पच्छा' रूप
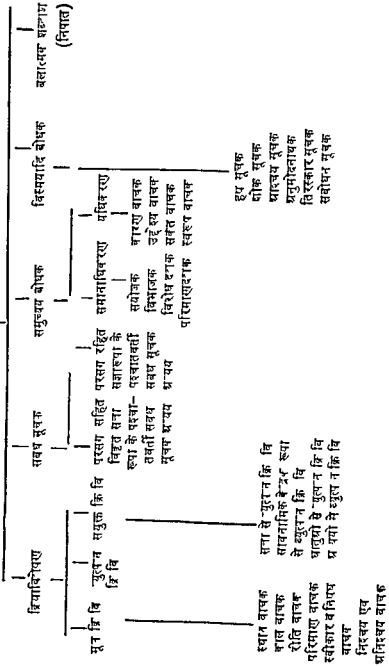
---

[1] पाणिनी अष्टाध्यायी १-१-३८

अव्यय
क्रियाविशेषण
संबंध सूचक
समुच्चय बोधक
विस्मयादि बोधक
बलात्मक शब्दांश
(निपात)
मूल क्रि वि
व्युत्पन्न क्रि वि
संयुक्त क्रि वि
परसर्ग सहित विकृत संज्ञा रूपों के पश्चात्वर्ती संबंध सूचक अव्यय
परसर्ग रहित संज्ञारूपों के पश्चात्वर्ती संबंध सूचक अव्यय
समानाधिकरण
व्यधिकरण
संयोजक
विभाजक
विरोध दर्शक
परिमाणदर्शक
कारण वाचक
उद्देश्य वाचक
संकेत वाचक
स्वरूप वाचक
स्थान वाचक
काल वाचक
रीति वाचक
परिमाण वाचक
स्वीकार व निषेध वाचक
निश्चय एवं अनिश्चय वाचक
संज्ञा से व्युत्पन्न क्रि वि
सार्वनामिक केन्द्रीय रूपों से व्युत्पन्न क्रि वि
धातुओं से व्युत्पन्न क्रि वि
अव्ययों से व्युत्पन्न क्रि वि
हर्ष सूचक
शोक सूचक
आश्चर्य सूचक
अनुमोदनार्थक
तिरस्कार सूचक
संबोधन सूचक

ग गी मिला । अप० म ग० पश्चात् प्रा० पच्छा पच्छ म विकसित हुआ। हेमचन्द्र न इसका उल्लेख भी किया है एव उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। यथा-पच्छइ होइविहाणु ३,२/१ पच्छ, मे ही राजस्थानी पच्छ गव हिन्दी (अ>ए तथा अ क कारण इ का आगम होकर पीछे विकसित हुआ है। म० ऊपर प्रा० अप० उप्पर हि० ऊपर । स० नीचम् प्रा० अप० निच्चे हि नीचे । स० बहिर (ता) प्रा० बहिरा बाहिर प्रा० अप० बाहिरथ हि० बाहर । 'बाहर म 'आ का आगम पालि काल मे ही हो गया था । इसका कारण पालि काल मे बाहर अथ म चार अव्यय प्रचलित थे-स० बहि स बही स० बहिर स बाहिर । इसके अतिरिक्त ब'दुर इन्ही रूपो के कारण आ' का आगम हुआ है । स० अभ्यन्तर प्रा० भितर भितर हि० भीतर । भीतर का डा० भोलानाथ न फारसी शब्द बताया है । मेरे विचार म इसका विकास स० अन्तर (अन्दर) से भी सम्भव है । राजस्थानी भाषा म स्थिति वाचक अव्यय निम्नलिखित हैं आग पार छ ऊपर, नीचे बारै माथ सनै सामन माथ सागै ।

हिन्दी एव राजस्थानी म सभी दिशावाचक क्रिया विशेषण अन्य शब्द रूपों से (सवनाम आदि) व्युत्पन्न होते हैं । अत इनका विवेचण तुलनात्मक क्रिया विशेषणों क अन्तगत ही किया गया है ।

४ १ १ १ कालवाचक—

काल वाचक क्रिया विशेषणों के मुख्यत तीन भेद हैं— १ समय वाचक २ अवधि वाचक ३ व्युत्पन्न काल वाचक (सवनामादि रूपो से) । समय वाचक कालवाची क्रिया विशेषण निम्नलिखित है—आज कल, परसो नरसो तरसो । इनका विकास क्रम इस प्रकार है— स० अद्य प्रा० अज्ज हि० आज स० कल्य प्रा० कल्ल अप० कल्लि हि० कालि कल । स० परश्व पा० प्रा०

१ पश्चादवमेववेदानीं—प्रत्युतेतस पच्छइ एम्वइ जि० एम्वहि पच्चलिउ एत्तहे / ४२४ / अपभ्रंशे पश्चादादीनां पच्छइ इत्यादय आदेशा भवन्ति।

परम्म अप० परस्सु, परसउ हि० परसों । स० श्विव हि० तरसा (विका क्रम उपलब्ध नही होता) । डा० भोलानाथ ने इसकी व्युत्पत्ति प्रति + परश्व से बताई है । तरसों की व्युत्पत्ति संदिग्ध है । बीम्स ने अप+तरसो से इ का सम्बन्ध जोड़ा है । डा० भोलानाथ ने द्रविड नाल एवं स० व के योग इसे विकसित माना है । मेरे विचार में यह परसों तरसों के सादृश्य प गठित हिन्दी नव शब्द है । राजस्थानी आदि में भी इस अर्थ को द्योतित कर हेतु ता-पले आदि का योग होता है । अतः यही प्रतीत होता है कि यह हि मे तरसों, परसों के सादृश्य पर रचित हिंदी नव शब्द है । इन रूपों अतिरिक्त अभी कभी तभी जभी आदि रूप भी प्रयुक्त होते हैं । सावना रूपों में भी का योग है यह भी स० अपि प्रा० अवि, अप० वि हि० भ बलाघात के कारण एवं वि>बि>भी महाप्राणीकरण है। इसके उदाहरण भ उपलब्ध होते हैं—अज्ज वि (अद्यापि) नाहु महुज्जि घरि सिद्धत्थां द दह) डा भोलानाथ ने स० हि० (हि० ही) के योग से इन्हें विकसित माना है । उप युक्त विकास क्रम को देखते हुए यह संगत प्रतीत नहीं होता । राजस्थानी भाष में आज काल परसूं, तरसूं ता पेले दिन अबार आदि काल वाचक क्रिय विशेषण है । हिन्दी भाषा में नित्य रोज हमेशा आदि अवधि बोधक का वाची विशेषण है। नित्य तत्सम शब्द है । रोज हमेशा विदेशी विशेषण शब्द है राज० में हाल नित, हमेसा, रोज इस अर्थ को द्योतित करते हैं । व्युत्पन्न का वाची क्रिया विशेषणों का विश्लेषण व्युत्पन्न क्रिया विशेषण शीर्षक के अन्तर्ग ही किया गया है ।

५ १ १ १ ३ रीतिवाचक—

हिंदी भाषा में धीरे जल्दी, झट फुर्ती आदि शब्द रीति वाचक हैं । राजस्थानी में इनके अतिरिक्त 'इयो' बीओ आदि रूप भी रीति वाचक हैं जिनका विश्लेषण व्युत्पन्न क्रिया विशेषणों में किया है ।

५१११४ परिमाण वाचक

हिन्दी भाषा मे कम, ज्यादा, अधिक, बहुत, बस आदि परिमाण-वाचक क्रिया विशेषण है। राजस्थानी म भी य ही रूप प्रयुक्त होते हैं।

५१११५ स्वीकार व निषेध बोधक—

हिन्दी भाषा म हां स्वीकारवाची एव ना नही, न मत निषध-वाचक विशेषण है। हा का सम्बन्ध केलाग ने मराठी क्रिया आहृ, आहो से जोडा है जो हिन्दी म इसके (हां क) प्रयोग को देखते हुए सवथा असगत प्रतीत होता है। डा० वर्मा न इसकी व्युत्पत्ति सन्दिग्ध बताई है। डा० उदय नारायण स० आम पा० आम से इसका सम्बन्ध जोडते हैं। डा० भोलानाथ न तुर्की 'हा से इसे सम्बन्धित किया है। मेरे विचार म इसकी व्युत्पत्ति की दो सम्भावनाए है। प्राकृत काल म 'हं' निपात दान पृच्छा एव निर्धारण अर्थ म प्रयुक्त होता था। राजस्थानी 'हो (स्वीकार वाची) इसी का विकसित रूप है। हिन्दी आकारान्त बहुला होने के कारण हो>हा प्रयुक्त होता है। आम से भी इसकी सम्भावना है—स० आम पा० आम प्रा० अप० आं हि० हा। न ना का सम्बन्ध स० न से ही है। नहीं>स० न+अस्ति= नास्ति प्रा० णत्थि अप० णाहि णहि हि० नही। डा० भोलानाथ ने भी इसी मत में अपनी सहमति व्यक्त की है। केलाग इसका सम्ब ध न+आहि से जोडते हैं। डा० चटर्जी एव डा०उदयनारायण इसे सस्कृत अस्ति से विकसित अहइ से न जोडकर व्युत्प न मानते है। हि दी मत का सम्ब ध स० मा पा० मा से है। हिन्दी म त' का आगम स्वार्थे रूप म राजस्थानी क सादृश्य पर हुआ। राजस्थानी म हों हुं हाउ हवे आदि स्वीकारात्मक अव्यय है। इन के अतिरिक्त अच्छया ठीक आदि भी इसी अर्थ के वाचक है जसे अच्छया जाऊ—हा जाता हू। ठीक, जाता हू। हा जाता ह। ना, मत नहीं, नी उह, कोए आदि निषधात्मक अव्यय है।

५ १ १ १ ६ निश्चय एव अनिश्चय वाचक—

हिन्दी मे अवश्य जरूर, निश्चय ही आदि निश्चयवाची अव्यय है। राजस्थानी भाषा मे पक्कायत, जरूर (निश्चय) मायद होय सके (अनिश्चय) अव्यय है ।

५ १ १ २ व्युत्पन्न क्रिया-विशेषण

हिन्दी एव राजस्थानी भाषा म सनापदो सावनामिक केन्द्रक रूपो अव्ययो एव धातुओ मे उपसर्गो प्रत्ययो परसर्गो एव अन्य शब्दांशो के योग से क्रिया विशेषण व्युत्पन्न होते हैं । *यह प्रयोग प्रक्रिया नवीन नही है । संस्कृत* पा०, प्रा० एव अप० काल म भी तद्धितान्त कृदन्त तिङन्त उपसग युक्त आदि क्रिया विशेषण प्रयुक्त होते थे । यथा–स० शवन्तम् (उपसग युक्त) जीवात (जीने को कृदन्त) कृत्वा (कृदन्त) अश्वक (अनात व्यक्ति का घोडा तद्धितान्त) आदि । पालि पहरति (उपसग) कातु (कृदन्त) सब्बत्थ (तद्धितात) इसी प्रकार प्रा० अप० मे अव्यय रचित होते थे । हिन्दी एव राजस्थानी म भी अव्यय शब्द रचित होते हैं । योग क्रम के आधार पर व्युत्पन्न क्रिया-विशेषणो को निम्नलिखित वर्गों म विभक्त किया जा सकता है – १ सना से व्युत्पन्न क्रियाविशेषण २ सावनामिक केन्द्रक रूपों (मूल अशो) से व्युत्पन्न क्रिया विशेषण ३ अव्ययो से व्युत्पन्न क्रियाविशेषण ४ धातुओ से व्युत्पन्न क्रिया विशेषण ।

५ १ १ २ १ सज्ञा से व्युत्पन्न क्रिया विशेषण–

इस वग के अन्तगत उपसर्गो एव प्रत्ययो के योग से रचित क्रिया विशेषण एव तद्धितान्त क्रिया विशेषण आते हैं [। यहा यह ज्ञातव्य है कि स० एव पालि आदि *काल म उपसर्गों का योग केवल धातुओ में ही होता था ।* पाणिनी ने इसका उल्लेख किया है । उपसर्गा क्रियायोगे (१/४ ५६) अर्थात् क्रिया (धातु। धातु रूप और क्रिया शब्द) से पूर्ववर्ती प्र आदि को उपसग कहते हैं । पर हिन्दी, राजस्थानी आदि म सज्ञा आदि शब्दो के पूव भी

उपसर्गों का प्रयोग होता है । यहा कुछ सता रूपा मे उपसर्गों एव प्रत्यया के योग से रचित क्रियाविशेषण दिए जा रहे हैं । बेसुर हर साल सध्या तक उम्र भर आदि । राजस्थानी में भी उपयुक्त रूप कुछ ध्वन्यात्मक परिवतन के साथ प्रयुक्त होते है यथा–सिज्या तक आदि ।

५ १ १ २ २ सावनामिक केन्द्रक रूपो मे व्युत्पन्न क्रिया विशेषण—

हिन्दी एव राजस्थानी म निश्चयवाची (निकटवर्ती एव दूरवर्ती) सम्बन्ध वाचक आदि सावनामिक केन्द्रक रूपा म प्रत्यया एव शब्दा के योग से स्थान वाचक, कालवाचक, रीतिवाचक आदि क्रिया विशेषण व्युत्पन्न होते है यथा—

स्थान वाचक— यहा वहा जहा कहा, हिन्दी मे सवनामो से व्युत्पन्न स्थानवाची क्रिया विशेषण है । इनकी व्युत्पत्ति के सबध में भाषाविदो मे मतैक्य नहीं है । बीम्स एव केलाग 'हं' का विकास स० स्थाने मे मानते हैं जो सवथा भ्रान्त है । स० स्थाने का विकास 'ठाणे' के रूप म हुआ है न कि हा के रूप से नही पा० प्रा० अप० म स० क-स्थाने य-स्थाने आदि के स्थान पर कहीं भी कहा रूप लब्ध नहीं होते हैं । टनर ने इस सम्बन्ध म तीन सम्भावनाए की है—१ स० इह (यहा) २ कुह (कहा) स० कथ तथा इस प्रकार क थ अन्त तथा आदि ३ सप्तमी विभक्ति-अस्मिन् प्रा० हि० । ये सम्भावनाए भी निराधार हैं । स० म कुह रूप नही कुत्र है । कथ' मे कह जो विकसित है वह स्थानवाची अथम कही नहीं है । स०सप्तमी विभक्ति अस्मिन् से हिं विकसित हुआ है । अप हि एव हिन्दी की अवधि आदि म हिं का ही प्रयोग हुआ है एव परिनिष्ठित हिन्दी म इसका लोप हो गया है । डा० सुनीतिकुमार स० त्र (कुत्र यत्र, तत्र) प्रा० त्थ से हा का विकास मानते हैं पर यह भी त्रुटिपूण है क्योकि स० त्र प्रा० त्थ अप० त्तु एव राज० ठै पजाबी त्थ रूप में विकसित हुआ है । हेमचन्द्र ने भी इसका उल्लेख किया है

एत्थु कुत्रात्रे । /४०५/ केत्तु वि लेप्पिणु सिक्खु । जेत्थुवि, तेत्थुवि एत्थु जगि /४०४/ राजस्थानी भाषा य आज भी अट्ठे वट्ठे बट्ठे जट्ठे रूप प्रयुक्त होते हैं जो सस्कृत त्र-अप० एत्थु-से विकसित है अत हिन्दी हा का सबध इससे नही माना जा सकता । डा० भोलानाथ तिवार के अनुकरण पर यत् तद् आदि के सप्तमी एक वचन के रूप यस्मिन तस्मिन, (अस्मिन) अप० यहि तहि से यहा तहा, जहा को निकला मानते हैं । परन्तु यह मत भी त्रुटि पूर्ण है जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि अवधि आदि मे हिं' विभक्ति का सप्तमी के रूप म ही प्रयोग है एव परवर्ती हिन्दी म इसका लोप हुआ है । अत यह मत सगत प्रतीत नही होता । वस्तुत स्थानवाची हाँ का विकास स० की पचमी विभक्ति के रूप यस्मात् कस्मात् तस्मात् से हुआ है । पालिकाल म ये यम्हा कस्मा किस्मा रूप म प्रयुक्त होते थे । प्रा० काल मे य इसी रूप म प्रयुक्त होते थे । अप० काल म स्मा हा (म् के कारण अनुनासिकता) मे प्रयुक्त होने लगा । हेमचन्द्र ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है सर्वाद्ङसेर्हीं /३५५/ अपभ्रंश सर्वादिरकारान्तात्परस्यङसेर्हीं इत्यादेशो भवति अर्थात् अपभ्रंश म अकारान्त सर्वनामों के परे ङसि अर्थात् पचमी के एक वचन की विभक्ति को हा आदेश होता है यथा—जहा होतउ आगदो (तस्मात् भवान् आगत) वहा से आप आए है । कहा होंतउ आगदो (कस्माद भवान आगत आप कहा से आए हैं । हिन्दी म हा' इसी रूप म आगत हुआ है—

इन रूपो का विकास क्रम इस प्रकार है—स० यस्मात् पा० यस्मो प्रा० जम्हा अप० जह हि० जहा । स० कस्मात् पा० कस्मा कम्हा कस्मा प्रा० कम्हा अप० कहा हि० कहा । स० तस्मात् पा० तस्मा प्रा० तम्हा अप० तहा हि० तहा । इसी प्रकार वहा यहा आदि ।

काल वाचक— जब कब तब अब । इन रूपो की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध म विवाद है । बीम्स महोदय इसम कालिक अश 'ब' का सम्बन्ध स०

'वेरा' से माना हैं। डा० भोलानाथ ने भी इसी मत में अपनी सहमति व्यक्त की है। डा० सुनीतिकुमार सं० अव्यय 'एवं' से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। उनके अनुसार यह बलात्मक अव्यय प्राकृत में एव्व हो गया एवं बाद में इसमें समय का भाव विकसित हो गया। इसका सप्तमी रूप एव्वहि होकर ही वे हुआ एवं अपभ्रंशकाल में सार्वनामिक रूपों में जुड़ने से आधुनिक अब जब तब आदि रूप बने हैं। उक्त दोनों प्रकार के मत त्रुटिपूर्ण हैं। पा० प्रा० अप० में कहीं भी सार्वनामिक रूपों के साथ वेरा का योग होकर कब आदि रूप उपलब्ध नहीं होते। अतः यह मात्र कल्पना है। साथ ही ऐसा सम्भव भी नहीं। डा० सुनीतिकुमार द्वारा एव से इसका विकास मानना मात्र कल्पना है। सं० एव पालि प्रा० अप० में एसा अर्थ में ही प्रयुक्त होता था। अप० में इसको एम्व आदेश होता था (अनुस्वार के कारण म् का आगम) हेमचन्द्र ने लिखा है—

एव-पर-सम-ध्रुव-मा-मनाक एम्व-पर-समाणु ध्रुवम मणाउं /४१८/ अर्थात् अपभ्रंश में 'एव' आदि के स्थान पर एम्व आदि आदेश होते हैं यथा—मह पिअ त वि प्रिअ तासिया निरन्त न एम्व न तम्व। अतः स्पष्ट है कि सं० 'एव' से इसका सम्बन्ध नहीं। मेरे विचार में विकास समयवाचक दा प्रत्यय से ही हुआ है। संस्कृत काल में यह प्रत्यय समय का बोध कराने हेतु सर्वनामों के साथ प्रयुक्त होता था, यथा—एकदा (एक बार) कदा (कब) आदि। पालिकाल में भी यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता था—सब्बे कञ्ञ यतेहि काले /४ १०५/ अर्थात् य, त आदि के परे काल अर्थ में 'दा' प्रत्यय आता है जैसे यदा—जिस समय तदा—उस समय। प्रा० अप० काल में दा प्रत्यय इसी रूप में रहता है एवं कहीं कहीं आ, आ में प्रयुक्त होता है। यथा— तदा > तो (अप०) राजस्थानी में यह दा > द आज भी काल वाचक अर्थ में प्रयुक्त होता। यथा—जद (जब) कद (कब)। हिन्दी में यह द > ब में परिवर्तित हुआ है।

राजस्थानी भाषा म इद, जद, अबे, 'हम्म' आदि रूप इस अर्थ म प्रयुक्त होते हैं। 'इद' जद आदि का सीधा सम्बन्ध स० यदा, यदा म है। हम्म' (अब) राजस्थानी का निजी कालवाचक अव्यय है जो उ० पु० वाचक हं' म 'म्मे' के योग से निर्मित हुआ है। इसकी व्युत्पत्ति सन्दिग्ध है।

दिशावाचक—इधर-उधर किधर-जिधर इनकी व्युत्पत्ति के संबंध म विवाद है। बीम्स ने धर' का सम्बन्ध स० मुख स जोड़ा है जो सर्वथा त्रुटिपूर्ण है। हार्नल ने सं० स इसका सम्बन्ध जोड़ा है। यह भी त्रुटिपूर्ण है क्यों कि दृश स ऐसा रूप विकसित हुआ है। प० किशोरीदास वाजपेयी ने म० इह (यहां) का पूर्व रूप (इध) म स्वार्थे र के योग स इधर की व्युत्पत्ति न माना है। यह भी सम्भव नहीं। डा० भोलानाथ इसे स० धृ धातु से या त्र से सम्बद्ध करते हैं। धृ से ईसे जोड़ना त्रुटिपूर्ण है। मेरे विचार म इसका सम्बन्ध स० इत से है जो स्थानवाचक अर्थ म प्रयुक्त होता था। यथा—इत इत श्रीमन् (श्रीमान् इधर-उधर) त>द>ध एव र स्वार्थे रूप मे (राजस्थानी प्रभाव से) प्रयुक्त होकर य रूप निष्पन्न हुए हैं।

राजस्थानी भाषा म स्थानवाचक सर्वनामों म ईन प्रत्यय जोड़कर क्रिया वाचक रूप निष्पन्न होते है। यथा—अठीन बठीन कठीनै आदि।

रीतिवाचक— एस वस कस— इनका सीधा सम्बन्ध स० यादृश प्रा० जइस्सा अप० जइस्स जस आदि है। विकास क्रम आगे दिया जा चुका है। राजस्थानी भाषा म सार्वनामिक केन्द्रक रूपों म यो (इ+यो) के योग से रीतिवाचक सर्वनाम रचित होते हैं। इसका विकास सार्वनामिक केन्द्रक रूपों म एव के योग से हुआ है अप० म इसके पूर्ण विकसित रूप मिलने लगते हैं क एवम् (केम्व) एवम् एम्व आदि यथा—

पिय सगमि कउ निद्दडी पिअहो परोक्खहो कम्व। मइ बिन्नि विन्नासिआ निद्द न एम्व न तेम्व। एम्व केम्व जेम्व तम्व आदि परवर्ती भाषाओं म क्रमश इउ किउ जिउ एव इयो कियो किया आदि

रूपों में विकसित हुए हैं ए>इ तथा व>उ म।

५,१ १२३ ग्रव्ययों से व्युत्पन्न क्रिया विशेषण—

कालवाची एव स्थानवाची ग्र यया मे 'तक' के योग से ग्रवधि एव परिधि वाचक क्रिया विशेषण व्युत्प न होते ह यथा यहा तक, वहा तक कब तक ग्रादि। राजस्थानी म भी तक के योग मे इस ग्रथ की ग्रभिव्यक्ति होती है। यथा—ग्रठै तक काल तक ग्रादि।

५ १ १२४ धातुग्रो से व्युत्पन्न क्रिया विशेषण

धातुग्रो म कर के योग से पूवकालिक क्रिया विशेषण व्युत्प न होते ह यथा—पढ़कर जाकर ग्रादि। सस्कृत काल में इस ग्रथ को द्योतित करने के लिए क्त्वा एव ल्यप प्रयय का योग होता था[1] यथा पठित्वा (पढ़कर)। पालि काल म भी क्त्वा प्रत्यय इस ग्रथ म प्रयुक्त होता था।[2] प्राकृत म तूण ग्रादि धातुग्रो मे त्वा को दुग्र ग्रादेश होता था[3] (त को द एव व के कारण उ का ग्रागम। ग्रप० काल तक क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर इ इउ इवि, ग्रवि, एप्पि, एप्पिणु एवि, एविणु ग्रादि प्रयुक्त होते थे।[4] इस प्रकार ग्रप० तक ग्राते–ग्राते क्त्वा लुप्त प्राय हो गया एव इसके स्थान पर ग्रन्य प्रत्यय प्रयुक्त होने लगे। हिन्दी भाषा म कर का प्रयोग नवीन है यह कृ धातु से गुणा होकर 'कर' बना है एव हिन्दी म पढ़कर लिखकर ग्रादि रूपों म प्रयुक्त होने लगा है। राजस्थानी मे र का योग है जो क के लुप्त होने से बना है। पढ़र लिखर। राज० म 'परोर' का भी योग होता है। यथा—'पढ़परोर'। इसकी व्युत्पत्ति सन्दिग्ध है।

---

१ समान कत कयो पूवकाल ३/४/२१ ग्रष्टाध्यायी

२ पालि महाव्याकरण मोग्गलान 'क्त्वा प्रत्यय

३ क्तूणमो दुग्र प्राकृत प्रकाश, वररुचि

४ क्त्व इ-इउ-इवि ग्रवय /४३६/ एप्पयेप्पिणव्येव्य विणव ४४० ग्रप व्याकरण

५ १ १ ३ सयुक्त क्रिया विशेषण—

हिन्दी एव राज० भाषा में सना रूपो विशेषणो, क्रिया विशेषणों, काल वाचक, रीतिवाचक परिमाण वाचक एव अनुकरणात्मक क्रिया विशेषणों की द्विरुक्ति से सयुक्त क्रिया विशेषण रचित होते हैं यथा – घर-घर दिन-रात (सना), एक-एक, चार-चार (विशेषण) आगे-आगे पीछे पीछे (क्रिया विशेषण) झट-झट (अनुकरणात्मक)। राजस्थानी भाषा में भी इसी प्रकार सयुक्त क्रिया विशेषण रचित होते हैं। यथा—धीमे धीम थोडो-थोडो आदि।

५ १ २ सबध सूचक—जो शब्द सना अथवा सना के समान प्रयुक्त होने वाले शब्द रूपो के पीछे आकर उनका सम्बध वाक्य क किसी दूसरे शब्द के साथ जोडते है वे सम्बन्ध सूचक अव्यय कहलात हैं। हिन्दी में भर तक सहित मरीखा जैसा खातिर वास्ते सिवाय सामने आदि प्रमुख सम्बन्ध सूचक अव्यय है। राजस्थानी म उपयुक्त अव्ययो के अतिरिक्त खने नडो (पास) कोण खोनी खातर, सरीसो आदि सम्बध सूचक अव्यय भी है

५ १ ३ समुच्चय बोधक अव्यय

जो अव्यय शब्द एक वाक्य को दूसरे वाक्य सयुक्त करते हैं समुच्चय बोधक अव्यय कहलाते है। इसके मुख्यत दो भेद हैं— १ समानाधिकरण २ व्याधिकरण। समानाधिकरण समुच्च बोधक अव्ययो के भी तीन भेद हैं १ सयोजक 'और – इसका उद्भव स० अपर प्रा० अवर अप० अउर हि० और के रूप म हुआ है। राजस्थानी म अर र रूप है जो और के ही रूपान्तर है। २ विभाजक या व, अथवा। व एव अथवा का सम्बध सस्कृत स है एव या को डा० भोलानाथ ने अरबी बताया है। राजस्थानी में कन या यास्तो-यास क रूप इस अथ म प्रयुक्त होते हैं। ३ विरोध दशक—जो शब्दाश से वाक्यो में पहले का निषेध या परिमिति सूचित करत है विरोध दर्शक अव्यय कहलात हैं। हिन्दी म पर एव परन्तु ऐसे ही अव्यय है। राजस्थानी मे पण रूप

प्रयुक्त होता है। ४ व्यधिकरण जब एक वाक्य में एक या अधिक आश्रित वा० जिन अव्ययों के योग से जोड़े जाते हैं तो ऐसे अव्यय व्यधिकरण समुच्चय बोधक अव्यय कहलाते हैं। इनके निम्नलिखित भेद हैं — १ कारणवाचक — क्योंकि एव कारण। क्योंकि (प्रश्नवाचक + फारसी कि) एव कारण तत्सम हैं। २ उद्देश्य वाचक ताकि जिससे ३ संकेत वाचक यदि (राज० जे) हालांकि चाहे आदि।

विस्मयादि बोधक अव्यय—हर्ष सूचक—अहा आहा ओहो, वाह वा-वा शाबास। इनके अतिरिक्त राजस्थानी में धन-धन। शोक सूचक—हायरे आश्चर्य सूचक — हूं, हैं। अनुमोदनार्थक— हां। सम्बोधन सूचक - ओ, अरे हे। तिरस्कार सूचक—हट धिर, धिक्कार आदि।

बलात्मक शब्दांश (निपात) — तो, सही ही भी आदि। राज० तो सरी सई ई बी आदि। राजस्थानी अव्ययों के विशद अध्ययन के लिए देखें। लेखक कृत—बीकानेरी बोली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन।

क्रिया-प्रकरण

६० भावप्रधानम् आख्यातम् (निरुक्त) अर्थात् जिसमें भाव (क्रिया) की प्रधानता हो आख्यात (क्रिया पद) सनक (शब्द) होता है। संस्कृत काल मे क्रियापद का मूल रूप धातु सनक था। धातुओं म तिङ (तिप्-तस, झि आदि) प्रत्ययो के योग से क्रियापद-रचना होती थी। इसके अतिरिक्त कृत् प्रत्ययो के योग से भी क्रिया-पदो की रचना होती थी। पालि, प्राकृत अपभ्रंश हि ि तथा राज० काल म धातुओं धातु रूपा तिङ प्रत्ययो आदि का ह्रास हुआ पर क्रियापद-सरचना प्रक्रिया कुछ अपवादो को छोडकर संस्कृतवत् ही रही। यहा उन सभी क्रिया रूपो का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। सुविधा की दृष्टि से क्रियापद-सरचना को तीन भागा म विभक्त किया गया है-१ धातु २ क्रियापद-सरचना (तिङन्तीय एव कृदन्तीय) ३ सयुक्त क्रिया।

६१ धातु

जो अश क्रियापदो के सभी रूपो म समरूप स विद्यमान रहता है उसे धातु कहते है। जिस प्रकार शब्द रूपा (सज्ञा आदि) का मूलाश प्रातिपदिक सनक होता है तद्वत् क्रियारूपा का मूल रूप धातु सनक होता है। संस्कृत काल मे आचाय पाणिनि ने धातुओ को उनकी विशेषताओ के आधार पर दस गणा म वर्गीकृत किया—१ भ्वादिगण (शप विकरण) २ अदादिगण

(गण विकरण का लोप) ३ जुहोत्यादि गण (शप विकरण का लोप) ४ दिवादि गण (श्यन् विकरण) ५ स्वादि गण (श्नु विकरण) ६ तुदादि गण (श विकरण) ७ रुधादि गण (श्नम् विकरण) ८ तनादि गण (उ विकरण) ९ क्र्यादि गण (श्ना विकरण) १० चुरादि गण (णिच विकरण) इनके अतिरिक्त कुछ धातुएं कण्ड्वादिगण में भी आती थी अतः इसे ग्यारहवाँ गण कहा गया।[1] आचार्य पाणिनि ने धातुपाठ के अन्तर्गत भ्वादिगण में १०३५ अदादिगण में ७२ जुहोत्यादि में २४, दिवादि में १४० स्वादि में ६८ तुदादि में १५६ रुधादि में २५ तनादि में १० क्र्यादि में ६१ एवं चुरादि में ४११ धातुएं परिगणित की। इनके अतिरिक्त सनन्त आदि भी धातुएं थी। आचार्य पाणिनि ने उपर्युक्त सभी गणों की धातुओं को तीन तीन पदों—१ आत्मनेपदी २ परस्मैपदी ३ उभयपदी के अन्तर्गत विभक्त किया। लकार के आधार पर उन्होंने धातुओं के सार्वधातुक (लट लोट लङ एवं विधि लिङ्) आर्धधातुक (लिट लुट लृट् आशी लिङ लुङ एवं लृङ्) भेद किए। इनके अतिरिक्त अनिट् सेट् एकाच् (एक-अच्-स्वर) अनेकाच् (अनेक अच्), अकर्मक सकर्मक सनन्त यङ लुगन्त नामधातु अनेक भेद किए। इस प्रकार से संस्कृत काल में लगभग २००० धातुएं थी।

पालिकाल में मुख्यतः धातुओं का वर्गीकरण संस्कृतवत् ही था। गणों की संख्या सात थी। पर धातु रूपों में कमी आई। (अदादि गण नहीं था।) उदाहरणार्थ मोग्गलान ने धातु पाठ में भ्वादि गण में केवल ३०४ ही धातुएं गिनाई है। धातुओं के आत्मनेपद एवं परस्मैपद दोनों प्रकार के रूप थे। डा भोलानाथ ने लिखा है—पद केवल एक था। आत्मने पद अपवादतः मिलता है। पर ऐसा पालिकाल में नहीं है। प्राकृत एवं अपभ्रंश काल में धातु रूप ह्रास की परम्परा निरंतर रही।

---

१ भ्वाद्यदादिजुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनादिक्रीचुरादयः॥

हि ी एव राजस्थानी भाषा तक आते-आत धातु वर्गीकरण की गण परम्परा, परस्मैपदी-आत्मनेपदी आदि समाप्त ही हो गइ है। इसलिए हि दी धातुओं को भाषाविदों ने प्रथक-प्रथक रूपेण वर्गीकृत किया है। डा० सुनीतिकुमार ने हि दी धातुओं को एतद् प्रकारेण वर्गीकृत किया है—

क- मूल
1. तद्भव (क साधारण ख उपसग युक्त)
2. प्रेरणार्थक तद्भव
3. सस्कृत से गहीत (तत्सम अर्द्ध तत्सम)
4. सदिग्ध व्युत्पत्ति वाली (देशज)

ख- यौगिक
1. अकारान्त प्रेरणार्थक
2. नामधातु
   1. तत्भव
      - क-प्राचीन
      - ख-मध्ययुगीन
      - ग-नवीन
   2. त सम अर्द्ध तत्सम
   3. विदेशी
3. सयुक्त एव प्रत्यय युक्त
4. ध्वन्यात्मक
5. सदिग्ध

उपयुक्त वर्गीकरण श्रेष्ठ होते हुए भी एकागी है जो स्पष्टत हि दी श दो के चार स्रोतो (तत्सम अर्द्ध तत्सम देशी विदेशी आदि) पर अधत है। इस वर्गीकरण म हि दी धातुओं की रूप-रचना-प्रक्रिया पर यत्किचित् ही प्रकाश पडता है। रूप रचनात्मक भेद होते हुए भी वे धातुए एक ही वग तद्भव के अन्तगत आ जाती है। हिदी धातुओं के वैज्ञानिक वर्गीकरण के लिए पूण अनुसधान अपेक्षित है।

डा० वर्मा एव डा० उदयनारायण ने भी इसी वर्गीकरण का अनुसरण किया है। डा०भोलानाथ ने हिन्दी धातुओ को इस प्रकार वर्गीकृत किया है।

तु—१ परम्परागत १ संस्कृत तद्भव मूल अकतवाच्य
परवर्ती उपसर्गयुक्त व कर्मवाच्य
तद्भव प्रत्यययुक्त स प्रेरणार्थक
तत्सम संयुक्त
२ प्राकृत आदि

२ निर्मित १ धातु से (अकर्मक सकर्मक, प्रेरणार्थक)
२ अन्य(नामसे) संज्ञा तद्भव
विशेषण परवर्ती तद्भव
सर्वनाम तत्सम
क्रियाविशेषण विदेशी
३ अनुकरणात्मक

३ संदिग्ध व्युत्पत्ति की

उपर्युक्त वर्गीकरण वैज्ञानिक होते हुए भी इसमें यत्किंचित परिवर्तन अपेक्षित है। मेरे विचार में हिंदी धातुओं को इस प्रकार वर्गीकृत करना अधिक वैज्ञानिक होगा—

धातु—मूल धातुए— १ ऐतिहासिक क्रम १ संस्कृत की धातुए तत्सम
पर आधत २ पालि , अर्द्धतत्सम
धातुए ३ प्राकृत , तद्भव
४ अप० , सकर्मक
अकर्मक
२ ध्वन्यात्मक रूप १ स्वरान्त एकाक्षरी
पर आधत द्व्यक्षरी
धातुए त्र्यक्षरी

२ व्यजनान्त	एकाक्षरी
द्वयक्षरी
त्र्यक्षरी

३ विदेशी भाषाओं से
आगत धातुए
४ उपसर्ग प्रत्यय
युक्त एव प्रेरणा-
र्थक धातुए
५ अन्य

यौगिक धातुए	१ नामधातुए–प्रेरणात्म धातुए
२ सयुक्त धातुए
३ ध्वन्यात्मक धातुए

सदिग्ध व्युत्पत्ति की धातुए

मूल धातुओं से अभिप्राय ऐसी धातुओ से है जो परम्परागत रूप से हिन्दी में अपने मूल रूप मे ही आई है यथा– हि० पढ (स० पठ) हि० लिख (स० लिख) आदि । हिन्दी में इस प्रकार की धातुए सस्कृत पालि प्राकृत एव अपभ्रश के माध्यम से आई है।

हिन्दी भाषा में अधिकाश धातुए सस्कृत के माध्यम से आई है। हिन्दी में सस्कृत से आगत धातुओं के मुख्यत तीन भेद है–१ तत्सम २ अर्द्ध तत्सम ३ तद्भव। तत्सम एव अर्ध तत्सम धातुए व है जो सस्कृत वत् हिन्दी मे प्रयुक्त होती है यथा—स० लिख हि० लिख स० हस हि० हस स० पठ हि० पढ आदि । तद्भव धातुए व है जो मूल सस्कृत से पा० प्रा० एव अप० मे विकसित होती हुई हिन्दी मे आई है यथा—स० घट पा० घड प्रा० घड अप० गढ हि० गढ सं० ग पा० गा प्रा०, अप० गा हि० गा आदि । सस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी भाषा मे पा०, प्रा० एव अप०

स भी ऐतिहासिक क्रम के रूप म कुछ धातुए आई है। धातुए ऐसी हैं जिनका मूल स्रोत पा०, प्रा०, अप० म ही मिलता है। प्राकृत से एव अप० से आगत धातुओ के भी दो भेद है १ सकमक २ अकमक। सकमक धातुओं से सीधा अभिप्राय कम युक्त धातुओ से हैं यथा—पढ, लिख जा आदि। अकमक धातुओ से अभिप्राय कम रहित धातुओ से है यथा—हग लज (लाज) आदि।

ध्वन्यात्मक दृष्टि से हिन्दी भाषा में दो प्रकार की धातुए हैं—१ स्वरात धातुए २ व्यजनात धातुए। इनम भी प्रत्यक क तीन-तीन भेद है यथा— एकाक्षरी स्वरात धातुए — खा, गा, पी, सी छू ले द (स० दा) खो आदि। द्वयक्षरी स्वरात धातुए यथा—पिरो(ना) बिलो (ना त्र्यक्षरी स्वरात धातुए भड़रा (ना) पछता (ना) एकाक्षरी व्यजनात धातुए बिक ऐठ पूछ पूज बाध आदि। द्वयक्षरी व्यजनात धातुए—पकड, जकड पहुँच घसीट आदि। त्र्यक्षरी व्यजनात धातुए—पहचान (ना), फटकार (ना) आदि। उपसग एव प्रत्यय युक्त धातुए — स० उत्+स्था हि० उठ स० उप+विश हि० बैठ (संस्कृत की उपसग युक्त धातुए हिन्दी में मूल रूप मे ही प्रयुक्त होती है) स० नि+ग हि० निगल स० उत्+पाट हि० उपाड (ना) आदि। प्रा० पच्छ पिच्छ हि० पिछ+ड (ना) इनके अतिरिक्त हिन्दी मे अन्य स्रोतों (अरबी फारसी आदि) से भी धातुए आई हैं यथा—बदल ना) खच खरीद आदि।

यौगिक धातुए —

हिन्दी म दूसरे प्रकार की धातुए व हैं जो धातुओ या धातु रूपों मे प्रत्ययो के योग से रचित होती है। य दो प्रकार की हैं- १ प्रेरणार्थक धातुए २ नाम धातुए।

प्रेरणार्थक धातुए —

सस्कृत काले मे णिच प्रत्ययान्त (णिजन्त) धातुए प्रेरणार्थक थी

'हेतुमणिच (३-१-२६) पालिकाल मे णि (इ) एव आपि प्रत्यय प्रेरणार्थ थे (पयोजक व्यापारे णापि च ५ १९) यथा—कम्प-कम्पेति कम्पापनि कम्पापति कम्पापयति । प्रा० एव अप० काल में स० णिच (अ) पालि णि (इ) आपि का विकास आ एव आवि आवे आवि मे हुआ (णिच एदादस्त् आत् ८/२६ आवेच ८/२१ आवकित कम भावेपु वा) यथा—करावइ कारेइ णच्चा वइ । हिन्दी एव राजस्थानी भाषा म आ एव वा का प्रधान प्रेरणा अथ म होता है । आ का विकास स० णिच – आ कारयति प्रा० करावइ रा० करावै हि० करा क रूप मे हुआ है । वा का विकास पा० आपि प्रा० आव अप० आव हि० एव राज० वा क रूप म हुआ है । हिन्दी म 'आ एव 'वा भिन्नार्थक है । आ प्रत्यय क योग स जो प्रेरणार्थक धातुए रचित होती हैं उनसे परम्परित प्रेरणार्थ अभिव्यक्त होता है अर्थात् प्रेरककर्त्ता (प्रयोजक कर्त्ता) प्रयोज्यकर्त्ता को काम करन क लिए प्रेरित करता है यथा—राम का पत्नाओ गोविन्द को पढाना । वा प्रत्यय क द्वारा प्रयोजक कर्त्ता प्रयोज्य कर्त्ता स यह अपेक्षा रखता है कि वह किसी अन्य व्यक्ति से काय सपादित करवाए यथा-राम तुम किसी स यह काम करवाना ।

नाम धातुए –

शब्द रूपों (सना सवनाम विशेषणादि) में प्रत्ययो के योग से जो धातुए रचित होती है उन्हे नाम धातु कहते है । संस्कृत काल मे मुख्यत क्यच काच (य) क्विप (०) एव काम्यच प्रत्यय प्रयुक्त होते थे (सुप आत्मन क्यच ३/१/८ क्यचि च ७/८ ३ काम्यच्च ३/१/९ उपमानादाचर ३/१/१०) यथा–पुत्रीयति (पुत्रम् + क्यच्-आत्मन पुत्रम् काम्यतिइति), कृष्णति (कृष्ण इवा चरति कृष्ण + क्विप) शब्दायते (शब्द करोति–शब्द + क्यन्) आदि। पालि काल मे इस अथ म ईय आय अस्स, इ आदि प्रत्यय प्रयुक्त होते थे (इयो कम्म १/५/५ कत्तुआयो ५/६) यथ–पुत्तीयति प बतायति, कलह –

गति प्रथम पुन भी इच्छा करता है फन, करता है पूर्ववत् आचरण करता है कलह करता है। प्राकृत एवं अप० में भी यही स्थिति रही। हिन्दी भाषा में 'आ' इया 'ना' प्रत्यय नामधात्वर्थक है। 'आ' का विकास म० विरप नन्तायते पा० 'आय पच्चनायति प्रा० अप० पच्चताइ, पच्चाइ हि० आ० दुख—आ—दुखा(ना) के रूप में हुआ है। 'इया' का विकास म० इयच पा० इय हि० ईय म० पुत्रीयति, पुत्तीयति हि० बात —इया (बतिया—ना) हाथ (हथ—इया—ना) हथियाना आदि। ना हिन्दी में धात्वर्थक है।

६ २ क्रियापद-संरचना—

धातुओं में काल अर्थ, वाच्य, लिंग वचन एवं पुरुष के अनुरूप तिङ् अथवा कृत् प्रत्ययों के योग से क्रियापदों की रचना होती है। हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में तीन काल (वर्तमान—भूत—भविष्यत्) पांच अर्थ (निश्चयार्थ विध्यर्थ, सम्भावनार्थ सन्देहार्थ एवं संकेतार्थ) तीन वाच्य (कर्तृवाच्य, कर्म—वाच्य भाववाच्य) दो वचन (एक व० बहु वचन) एवं तीन पुरुष (उत्तम पुरुष मध्यम पुरुष एवं अन्य पु०) हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि उक्त कोटियाँ एक दूसरे से स्वतन्त्र नहीं अपितु अन्योन्याश्रित हैं। यथा— राम सोया हुआ है। वाक्य में 'सोया हुआ है' से अपूर्ण भूत, निश्चयार्थ, कर्तृवाच्य, अन्य पु० पुल्लिंग एक वचन का बोध होता है। यहां कोटियों का विवेचन किया जा रहा है—

६ २ १ काल संरचना —

रचनात्मक दृष्टि से हिन्दी एवं राजस्थानी कालों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—१ मूल काल संरचना २ यौगिक काल सरचना। मूल काल के अन्तर्गत ऐसे क्रियारूपों की रचना आती है जो वाक्यान्तर्गत सहायक क्रियाओं का योग ग्रहण नहीं करते। यथा— मैं जाऊं। वह गया आदि। यौगिक काल संरचना के अन्तर्गत ऐसे क्रिया रूपों (तिङन्तीय—कृद—न्तीय) की रचना आती है जो वाक्यान्तर्गत सहायक क्रियाओं का भी योग ग्रहण

करते हैं।

६ २ १ १ मूल काल सरचना—

इसके भी दो भेद हैं-१ तिङन्तमूलक काल रचना २ कृदन्त मूलक काल रचना।

६ २ १ १ १ तिङन्तमूलक काल रचना—

६ २ १ १ १ १ वतमान सभावनाथ भविष्यत् सभावनाथ—

हिन्दी म पढ पढे पढ, चलें आदि रूप प्रयुक्त होते हैं यथा यदि हम पढ। इन रूपो का विकास स० विध्यथ रूपो मे इस प्रकार हुआ है-

स० रूप			हिन्दी रूप	
एक व०	द्वि०व०	ब०व०	एक व०	बहु व०
अ०पु० पठत्	पठताम्	पठयु	पढे	पढें
म०पु० पठे	पठतम्	पठेत	पढ	पढे
उ०पु० पठयम्	पठव	पठम	पढू	पढ

इनका विकासक्रम इस प्रकार है—

स० अ०पु० एक वचन स० पठत पा० पठे प्रा० पढ हि० पढे

स० अ०पु० ब० व०—स०–पठयु पा० पठेय्यु प्रा० अप० पढेउ हि० पढ

स० म पु० एक वचन स० पठे–पा० प्रा० अप० पढे हि० पढ

म०पु० बहु वचन म० पठत पा० प्रा० अप० पढे हि० पढ

उ०पु० एक व० पठेयम् पा० पठ प्रा० अप० पढउ हि० पढू

उ०पु० ब व० स० पठम प्रा० पढे उप० पढेउ हि० पढें

ग्रियसन ने इन रूपो का विकास स० वतमान काल (लट नकार) के रूपो से बताया ह पर वतमान काल के रूप हिन्दी बोलियों म वतमान अथ मे ही विकसित हुए हैं यथा स० पठति से पढइ राज० पढ आदि। डा० वमा तथा डा० तिवाडी ने बीम्स का अनुकरण करते हुए उ० पु० एक वचन के स्थान पर बहु व०, स० चलामि पा० प्रा० अप० चलाइ चलइ हि० चलें एव

ह वचन के रूपा से एक व० चलाम >चलामु >चलाउ हि० चलौ चलू के
पमें विकास माना है। पर यह सगत प्रतीत नही होता। अब तक एसे उदाहरण
हीं मिलत। डा० भोलानाथ चलें में 'ए का प्रभाव मना आदि रूप 'बुढे'
ादि के समान 'ए मानत हैं। यह सवथा असगत है। वस्तुत इन रूपा
ा विकास विधिलिंग चलेम>चलेअ चल के रूप मे हुआ है।

राजस्थानी भाषा म ये रूप इस प्रकार है अ० पु० एक वचन बहु
ाले म०पु० एक वचन चाले बहुवचन चालो (आदरार्थक) उ० पु० एक व०
ालू एव उ० पु० ब० व० चालो है। राज० रूपों म ऐ'आ का आगम द्वित्व
ान का प्रभाव चलइ > चाले है।

.२ १ १ १ २ वतमान आनाथ भविष्यत आज्ञाथ–

हिन्दी मे पढ, पढ पढें आदि रूप आज्ञाथ म प्रयुक्त होते हैं। इनका
पष्ट विकास स० विधिलिंग के रूपा से उपस्थित ही हुआ है।

ग्रियसन इनका विकास वतमान काल के रूपा स ही मानते हैं।
बीम्स इनका सम्बन्ध म० आज्ञाथ रूपा से जोडते हैं पर चलतु से चलउ>
चलो रूप तो सम्भव है चल रूप नही। डा० भोलानाथ इस सम्बध मे
सदिग्ध हैं तथा इसे दोनो स सम्भव मानत हैं।

राजस्थानी भाषा म म० पु० एक व० बहु वचन पढ— पढो रूप
नी आज्ञाथ है। अ० पु० एव उ० पु० क रूप नहीं है। म० पु० एक व०
का विकास आज्ञाथ रूप म० पु० एक वचन पढ से ही हुआ है। बहु वचन
का आ राथ म अ० पु० एक वचन पठतु > पठउ 'पढो' क रूप म हुआ
है।

हिन्दी म आदराथ म इजिए (कीजिए लीजिए) प्रयय का प्रयोग
होता है। इसका विकास म० कमवाच्य एव भाववाच्य के रूपा स हुआ है।
डा० भोलानाथ ने आशीलिंग के रूपा स इसका विकास माना है।

राजस्थानी भाषा म उक्त रूपा क अतिरिक्त वतमान एव भविष्यत्

षात श रूप भी स० तिङन्तीय रूपा से ... ा है यथा—

	स० वतमान (पर स्वार)			राज वतमान	
	एक व०	द्वि०वचन	बहु वचा	एक व०	ब०व०
प्र०पु०	पठति	पठत	पठन्ति	पढ़ै	पढ़ै
म०पु०	पठसि	पठथ	पठथ	पढ़	पढ़
उ०पु०	पठामि	पठाव	पठाम	पढ़ू	पढ़ा

इनका विकास क्रम इस प्रकार है—स० पठति पा० प्रा० अप० > पढ़ड़ राज पढ़ै । इसी प्रकार पठति > पढ़न्ति > पढ़ै पठसि > पढ़सि—पढ़ । पठथ > पढ़ह पढ़उ > पढ़ो । पठामि > पढ़इ पढ़उ > पढ़ू । पठाम > पढ़ाव > पढ़उ पढ़ा ।

६ २ १ १ २ कृदन्त मूलक काल सरचना—

कृत् प्रत्ययो के योग से भी काल सरचना होती है । हिन्दी म भूत निश्चयाथ भूत सम्भावनाथ एव भविष्य आज्ञाथ की रचना धातु म कृत् प्रत्ययों के योग से होती है ।

६ २ १ १ २ १ भूत निश्चयाथ—

धातु मे भूतकालिक कृत प्रत्यय —आ इ ए के योग स भूत निश्चयाथ की रचना होती है यथा—म गया वह गया हम गये वह गई आदि । इन भूतकालिक प्रत्ययो का उद्भव स० भूतकालिक क्त क्तवतु प्रत्ययो से हुआ है । अधिकाश रूपा का विकास क्तवतु प्रत्ययान्त रूपो स हुआ है स० कृतवान पा० प्रा० अप० किअउ किअअ हि० किया राज० कियो स० पठितवती पा० प्रा० अप० पढ़अइ पढ़ी आदि ।

डा० भोलानाथ ने मान्यता व्यक्त की है कि गत > गओ > ग ो गआ गआ > गया विकास क्रम सम्भव नहीं है । अत चलित > चलिअ होने पर लगिक प्रत्यय आ—ई—ए जोडने पर ये रूप बन हैं या क' योग की सभावना की है चलित—क चलिअअ चलअअ > चलियो— चल्यो चला । दोनो सम्भाव—

नाए पूर्णतः युक्तिपूर्ण है। 'त' प्रत्यय से सीधा विकास भारतीय आ० भा० की प्रवृत्यानुरूप है। गत > गग > गआ > गया (अ+अ=या, य् श्रुति)

६२११२२ भूत सम्भावनार्थ—

धातु में कृत् प्रत्यय एवं आ ई ए लिंग प्रत्ययों के योग से भूत सम्भावनार्थ रूपों की रचना होती है। इस कृत् प्रत्यय का विकास सं० शतृ (अत्) एवं शानच (आन्–मान) प्रत्ययान्त शब्दों से हुआ है। संस्कृत काल में इसका प्रयोग लट (वर्तमान काल) के स्थान पर होता था (लट शतृ शान– चाव प्रथमा समानाधिकरणे (३–२–१२४)। पा० प्रा० एवं अप० में भी यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता था। हिन्दी में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है यथा—सं० पचन्त चैत्र पश्य—हि० पकाते चैत्र नामक व्यक्ति को देखो)। सं० न्त पा० प्रा० अप० त हि० आ ए ई लिंग प्रत्यय। डा० वर्मा ने सं० पचन् से प्रा० पचन्तो हि० पकाता रूप का विकास माना है पर यह असंगत है सं० पचन्त पा० प्रा० पचन्तो हि० पकाता, विकास सम्भव है। हिन्दी आकारान्त होने के कारण बहुवचनान्त 'आ' एक वचन 'आ' में ही प्रयुक्त होने लगा है।

६२११२३ भविष्यत् आज्ञार्थ—

धातु में 'न' प्रत्यय एवं लिंग आ ई–ए के योग से इस अर्थ की अभिव्यक्ति होती है यथा—पुस्तक पढनी है। इस 'ना' का विकास सं० ल्युट् (अन) पठ+ल्युट् पठन से इस प्रकार हुआ है। सं० पठन पा० प्रा० अप० पठण पढणउ हि० पढना आदि।

बीम्स ने इसका सम्बन्ध करणीय पठनीय आदि अनीय अन्त वाले प्रत्यय से इसका सम्बन्ध जोड़ा है पर यह असंगत है क्योंकि इससे विकास क्रम सम्भव नहीं एवं साथ ही यह सं० में तव्यत् तथ का स्थानापन्न था जिसका इस अर्थ में विकास सम्भव नहीं।

डा० भोलानाथ ने शन प्रत्यय से ही इसकी व्युत्पत्ति बताई है पर क'

ग्रत वाले रूपो की भी कल्पना की ह जो त्रुटिपूर्ण है । क्योकि ऐसे रूप उपलब्ध नही होते ।

६ २ १ २ यौगिक काल सरचना—

तिडन्तीय या कृदन्तीय रूपो के साथ सहायक क्रिया का योग करने से जिस काल की ग्रभिव्यक्ति होती है उसे सयुक्त या यौगिक काल की सज्ञा दी जाती है । यौगिक काल सरचना म सहायक क्रिया का योग होता है ग्रत यहा पहले सहायक क्रिया का विश्लेषण किया जा रहा ह ।

६ २ १ २ १ सहायक क्रिया--

प्रधान क्रिया की सहायता के लिए जो क्रियाए प्रयुक्त होती है वह सहायक क्रिया कहलाती हैं जस राम पढता ह यहा ह सहायक क्रिया ह जो वतमान का बोध कराती है । सस्कृत काल म भी सहायक क्रियाए विकल्प स प्रयुक्त होती थी यथा–स स० ग्रपठत् (वह पढा) स पठति स्म । पा०प्रा० एव उा० म भी सहायक क्रियाए प्रयुक्त होती थी । हिन्दी भाषा म मुख्यत तीन सहायक क्रियाए हैं—(१) वतमान कालिक (२) भूतकालिक (३) भविष्यत कालिक ।

वर्तमान कालिक

	एक वचन	बहु वचन
उ० पु०	हू	हैं
म० पु०	है	हो
ग्र० पु०	ह	हैं

इनका विकास सस्कृत की 'ग्रस् धातु के लट् लकार (वतमान काल) के रूपो स हुग्रा ह—

	सस्कृत रूप			हिन्दी रूप	
	एक वचन	द्वि० वचन	बहु व०	एक व०	बहु व०
ग्र पु०	ग्रस्ति	स्त	सन्ति	है	हैं

म०पु०	असि	स्थ	स्थ	है	हो
उ०पु०	अस्मि	स्व	स्म	हूँ	हैं

इनका विकास क्रम इस प्रकार है—

स० अस्ति पा० अत्थि प्रा० अत्थि अप० अहि हि० हइ है। स० असि पा० प्रा० अप० अहि हि–हइ है स० स्थ पा० प्रा० अप० स्थ, हु हि० हो म० अस्मि पा० प्रा० अप० अम्हि अहु अउ हि० हू। स० स्म>हु, है (प्र० पु०, ब० वचन का प्रभाव।

बीम्स तथा केलाग की मान्यता है कि स० अस्मि, अम्हि से हू का विकास सम्भव नहीं। डा० भोलानाथ की मान्यता है कि इन रूपों का विकास भू धातु से हुआ है। उन्होंने इसका विकास क्रम इस प्रकार दिया है—स० भवामि पा० भवामि, होमि प्रा० होमि अप० होवि (कल्पित रूप) होव हि० हो हू। पर यह विकास क्रम सर्वथा त्रुटिपूर्ण है। संस्कृत काल से पा० प्रा० तक स्पष्ट विकास क्रम अस धातु से है। अप०काल म म०पु० ब०व० स० चलथ प्रा० चलह को अप०म चलहुँ (हु) आदेश होता था।[1]अप० की उ बहुला प्रवत्ति के कारण उ० पु० एक वचन के रूपों को भी उ' आदेश विकल्प से होता था यथा–अस्मि अउ, चलामि–चलउ। जहा यह आदेश नहीं होता था वहीं चलामि रूप ही प्रयुक्त होता था।[2] हिन्दी म 'उ की प्रवत्ति ही प्रधान रही अत अस्मि का अउ अहुँ, हुँ हू रूप विकसित हुआ है।

राजस्थानी भाषा मे शेष सभी रूप हि ीवत है। उ० पु० बहु० म 'हुँ का हो विकसित रूप है।

भूतकालिक सहायक क्रिया—

एक वचन	बहु वचन
था (पु०) थी (स्त्री0)	थ

---

1 बहुत्वे हु ३८४ अप० व्याकरण

२ अ पत्रयस्याद्यस्यउ –३८५– वही

इन रूपों का उद्भव स० भवतु प्रत्ययान्त बहु वचन के रूप भवन्त से हुआ है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है स० भवन्त पा० होन्तिओ, होन्तउ होंतउ, हूंतउ हुतउ रा० हुतो हुतो हि० थी (ह+त् — 'ह' के प्रभाव से त>थ)। अन्य भाषाविदो ने इसकी व्युत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार से बताई है। केलाग टनर एव डा० वर्मा ने स्थित से इसका विकास मानते हैं। डा० श्याम सुन्दरदास 'स्था धातु के भूतकालिक रूप प्रस्थात् से इसे सम्बन्धित करते है। उक्त सभी मत मात्र कल्पना प्रसूत हैं प्रमाण सिद्ध नहीं।

भविष्यत् कालिक सहायक क्रिया—

	एक वचन	बहु वचन
उ०पु०	होऊंगा, हूंगा	हावेंगे होंगे
म०पु०	होगा	होगे
अ०पु०	होगा	होंगे

इन रूपों की व्युत्पत्ति स० भू धातु के लृट (भविष्यत् काल) लकार के रूपों में ग (कृत् प्रत्यय) एव आ/ए/ई के योग से हुई है। इनका विकास क्रम इस प्रकार है—स० भू लृट लकार (भविष्यत् काल) भविष्यति प्रा० अप० होहिइ होसइ हि० हो होए-ग। आ इ, ए—होगा होएगा। स० भविष्यति पा०प्र० हाहिंत अप० होइ हि० हो होग-ग/आ ई ए/ म० भविष्यथ प्रा० होहिह अप० होह होहु हि० हा हाओ /ग आ ई ए/ स० भविष्यामि प्रा० होहामि अप० होहउ हि० होउ हूं/ग-आ ई-ए/ स० भविष्याम प्रा० होहिम अप० होइ होहिं हि० होए हो—ग/आ ई/ए/ यहा प्रश्न उपस्थित होता है कि तीन रूपो में कृदन्त प्रत्ययो के योग से हि० में ये रूप भविष्यत् कालिक अर्थ को द्योतित कैसे करने लगे यथा—भविष्यति+गत = होगा हावेगा। इसका मुख्य कारण यह है कि अप० काल तक भविष्यत् काल के रूप अपना पूर्ण अर्थ व्यक्त करने में असमर्थ से हो रहे थे परिणामत विकल्प से दूसरा रूप 'होसइ '(होहिइ के स्थान पर) रूप प्रयुक्त

होन लगा।[1] परवर्ती भाषामा म यही तो होसइ>होसी (राजस्थानी म) आदि रूप ही प्रयुक्त होने लगे पर जहाँ विश्लेषणात्मक रूप प्रयुक्त नहीं किये गये वहा हो/गया आदि सयुक्त रूप प्रयुक्त होने लगे इसी से भविष्यत् कालिक रूपों का विकास हुआ है। गा, गी, गे की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—स० गत (गम् +क्त प्रा० गतो गओ अप० गओ गअ>गा। इसी प्रकार ई, ए लिंगिक प्रत्यय योग से य रूप निष्पन्न हुए हैं।

केलाग एव उन्हीं के अनुकरण पर डा० उदयनारायण की मान्यता है कि ये रूप स० के वर्तमान कालिक रूप भवामि के विकसित रूप म (भवामि हुवामि, हुवाउ, होऊ) ग जोड़ने से बने हैं पर यह त्रुटिपूर्ण है। उपर्युक्त विकास क्रम से स्पष्ट है कि इन रूपों का विकास स० के भविष्यत् कालिक रूपों म ग के योग से ही हुआ है। डा० वर्मा की मान्यता है कि ये रूप बाद मे बने हैं एव वर्तमान सभावनार्थ के रूपो में गा गी, गे जोड़ने से बने हैं। स्पष्टत यह मत भी उपर्युक्त मत का प्रकारान्तर है।

वस्तुस्थिति यह है कि इन रूपों का विकास भविष्यत् कालिक रूपों से ही हुआ है। विकास क्रम ऊपर दिया जा चुका है। डा० भोलानाथ ने भी भविष्यत् कालिक रूपो मे ही इसका विकास माना है।

राजस्थानी में होसी होइस होसो रूप प्रयुक्त होते हैं। स० भविष्यति प्रा० होहिइ अप० होइस राज० होसी। स० भविष्यथ प्रा० होहिह अप० होसहु राज० होसो। स० होसिष्यसि प्रा० होहिह अप० होइस राज० होसी।

भूत सभावनार्थ—

एक वचन होता—बहु वचन होते। इन रूपों का विकास स० भवन्त >प्रा० होतो हि० होता आदि के रूप म हुआ है।

---

१ वत्स्यति—स्पस्य स —३८८— अप० व्या०

उपयु क्त सहायक क्रियाओ के योग से विविध काल रूपो की रचना होती है ।

१ वतमान कालिक कृद त+सहायक क्रिया

क-वतमान अपूण निश्चयाथ— धातु मे वतमान कालिक प्रत्यय त् एव लैंगिक प्रत्यय आ, ई, ए व सहायक क्रिया है के योग से वतमान अपूण निश्चयाथ अथ की अभि यक्ति होती है यथा—वह खाता ह । राजस्थानी म तिङ प्रत्ययान्त रूप ही प्रयुक्त होते हैं— यथा बो खावै ।

ख भूत अपूण निश्चयाथ-धातु मे त्/आ ई ए एव सहायक क्रिया था, थी, थे क योग से भूत अपूण निश्चयाथ की अभि यक्ति होती हैं यथा – वह खाता था । इसी प्रकार राजस्थानी म-बो खावतो हो ।

ग भूत अपूण सम्भावनाथ—धातु म कृत् प्रत्यय त्/आ ई ए एव सम्भावनाथ भूत के रूपो के योग से भूत अपूण सम्भावनाथ की अभि यक्ति होती है यथा-यदि म खाता होता । हो सकता है म पढता होऊ । इसी प्रकार राज० में जे हू खावतो होवतो ।

घ वतमान अपूण सम्भावनाथ – धातु म कृत् प्रत्यय त्/आ ई ए एव वतमान सभावनाथ के रूपो क योग से इस अथ की अभि यक्ति होती है यथा यदि वह खाता हो । इसी प्रकार राजस्थानी मे ज व्यासजी ख वतो होवै ।

२ भूतकालिक कृत प्रत्यय+सहायक क्रिया–

क' वतमान पूण निश्चयाथ धातु म भूत कालिक कृत प्रत्यय आ ई, ए य/आ, ई, ए (श्रुतिपूण) मे वतमान सहायक क्रिया है क योग से वतमान पूण निश्चयाथ की अभिव्यक्ति होती है यथा उसने खाया है । इसी प्रकार राजस्थानी म बे खायो है ।

ख-भूत पूण निश्चयाथ-धातु म भूत कालिक कृत् प्रत्यय एव सहायक क्रिया था थी थे के योग से इस अथ की अभि यक्ति होती है, यथा–

उसने खाया था । इसी प्रकार राजस्थानी मे भी –वे खायो हो ।

म भविष्यत् निश्चयार्थ— धातु म भूत कालिक कृत् प्रत्यय एव भविष्यत् कालिक सहायक क्रिया के योग से इस अर्थ की अभिव्यक्ति होती है यथा—उसन खाया होगा । इसी प्रकार राजस्थानी मे वे खायो होसी'

म भूत पूण सम्भावनार्थ – धातु म भूतकालिक कृत् प्रत्यय एव भूत सामान्य सहायक क्रिया होता होते के योग से भूतपूण सभावनार्थ के रूपो की रचना होती है यथा—उसने खाया होता । इसी प्रकार राजस्थानी म जे बे खायो होवतो ।

कृद त—

धातुओ म कृत् प्रत्ययो के योग से जो शब्द (सज्ञा-विशेष-णादि) व्युत्प न होते है वे कृद त कहलाते हैं । पाणिनि ने इसको परिभाषित करते हुए लिखा कृदतिङ अर्थात् तिङ भिन्न जो भी प्रत्यय है वे कृत् कहलाते हैं । सस्कृत काल मे इन प्रत्ययों को दो भागा म बाटा गया था—कृत्य - जो कमवाच्य एव भाववाच्य म होत थे, कृत्-जो कतृ वाच्य मे होते थे (कत रि कृत्) हि दी भाषा म यह परम्परा नहीं है ।

कृत् प्रत्यय एक ओर सज्ञा विशेषणादि नये शब्द बनाते हैं तो दूसरी ओर क्रियाओं के कालो का भी बोध कराते हैं । हि दी भाषा मे प्रमुखत निम्नलिखित कृद् प्रत्यय हैं—वतमान कालिक —त/आ,ई ए भूतकालिक य/आ,इ ए, भविष्यत् कालिक न/आ ई ए, पूवकालिक कर, कतृ वाचक-वाला । राज-स्थानी म भी ये ही प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं । वतमान कालिक, भूतकालिक एव भविष्यत् कालिक प्रत्ययो का विवेचन पूव पृष्ठो मे किया जा चुका है ।

पूवकालिक कृद त—कर, करक । ऐतिहासिक विकास के लिए देखें पृ० १६३ ।

कत वाचक – पढने वाला, जाने वाला आदि । क्रियाथक सज्ञाओं के

विकृत रूपा के साथ यह प्रयुक्त होता है । इसका विकास स० पालक से इस प्रकार हुआ है– स० पालक प्रा० वालग्र हिंदी वाला । राजस्थानी म इसके अतिरिक्त 'एया 'इयो' प्रत्यय भी प्रयुक्त होता हैं यथा– गवैया, तवया नच-कैया, खावणियो आदि । इय ऐया का विकास स० तव' प्रत्यय से हुआ है । पठ+त=पठिता प्रा० राज० पढिया । अब यह इया' क्रियार्थक सनाओ क विकृत रूपो क साथ प्रयुक्त होता है । पठ अण—इय । भा=पढणियो ।

६२२ अथ—

जिस क्रिया व्यापार म विधान की रीति का बोध हो "याक-रण के क्षेत्र म उस अथ की सना दी जाती है । अथ के निम्नलिखित पाच भद हैं । १ निश्चयाथ २ विध्यथ ३ सभावनाथ ४ सदेहाथ ५ सकेताथ जिस यापार द्वारा विधान का निश्चय व्यक्त होता है उसे निश्चयाथ कहते हैं । हिन्दी एव राजस्थानी म निश्चयाथ निम्नलिखित रूपो में व्यक्त होता है वतमान सामा य भविष्यत् सामान्य वतमान अपूण भूत अपूण वतमान पूण एव भूत पूण । जब वाक्या तगत कत य परायणता अथवा दायित्व हेतु किसी प्रकार का आदेश हो तो उसे विध्यथ कहते हैं ।

इसका विवचन आज्ञाथ काल म किया जा चुका है । जब काय यापार की रीति द्वारा काय का सम्भावना का बोध होता है तो उस सभावनाथ की सज्ञा दी जाती है एव जब स देह की सभावना होती है ता उसे सन्देहाथ कहते हैं । इनका विवेचन भी काल सरचना के अ तगत किया जा चुका है । सके-ताथ द्वारा क्रिया की दो घटनाओ की प्रसिद्धता का सकेत मिलता है जिनका पारस्परिक कायकरण सम्ब ध हो ।

६२३ वाच्य

हिन्दी एव राजस्थानो म सस्कृतवत् तीन वाच्य हैं– (१) कत-वाच्य (२) कमवाच्य (३) भाव वाच्य । कतवाच्य म क्रिया कर्तानुरूप

पु० एव वचन के रूप ग्रहण करती है । इसमें क्रियाए सकमक एव अकमक दोनों हो सकती है । कम वाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति एव क्रिया कम के अनुरूप पुरुष एव वचन के रूप ग्रहण करती है । क्रिया सदैव सकमक होती ह । भाव वाच्य मे क्रिया सदैव अ० पु० एक वचन म एव कर्त्तीकरण कारक म होता हैं । सस्कृत, पालि प्रा० एव अपभ्रश काल म यही प्रयोग प्रक्रिया थी । हिन्दी एव राजस्थानी म भी यही प्रयोग-प्रक्रिया हैं । सस्कृत काल म कम वाच्य एव भाववाच्य म क्रिया रूप सदैव आत्मनेपद मे ही होत थ तथा सावधातुक लकारा म यक का आगम होता था (भावकमणो १/३/१३, सावधातु के यक ३/१/६७) । यक म 'य्' शेष रहता था, यथा भूयते । पालिकाल में कम एव ाव म 'क्य' (यक का विपर्यय) प्रत्यय प्रयुक्त होता था (क्या भाव कम्मे स्व परोक्खे सुमानन्य न्सु ३ १७) प्रा० एव अप० काल म यक्— इज्ज म विकसित हुआ । राजस्थानी भाषा म यह प्रत्यय ईज रूप से स्वीकृत हुआ यथा—म्हेमू पढीज (मुझसे पढा जाता है) आदि पर हिन्दी म यह प्रत्यय गहीत नहीं हुआ अपितु हिन्दी म जा धातु के योग स कमवाच्य एव भाववाच्य के रूपों की रचना होती हैं, यथा मुझसे पुस्तक पढी जाती है ।

६ ३ सयुक्त-क्रिया—

जव दो क्रियाए सानिध्य में आकर स्व अथ खोकर अभिनव अथ की अभिव्यक्ति करती हैं अथवा दो क्रियाओ के योग से एक क्रिया प्रधान एव दूसरी गौण हो जाती है तो उस सयुक्त क्रिया कहते हैं । इस दष्टि से सयुक्त क्रियाओ को सामासिक क्रिया की सज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। सयुक्त क्रियाओ का प्रयोग स०पा०प्रा०अप० म भी होता था पर उन भाषाओ म इनका प्रयोग सीमित था । हिन्दी एव राजस्थानी मे इनका प्रयोग बाहुल्य है ।

हिन्दी भाषाविदों ने सयुक्त क्रियाओं के स्वरूप को भिन्न-भिन्न

रूपेण प्रतिपादित किया है। प० कामता प्रसाद के अनुसार 'जहा कृदन्त की क्रिया मुख्य होती है और काल की क्रिया उस कृदन्त की विशेषता सूचित करती है वही दोनो को सयुक्त क्रिया कहते हैं।[1] यह परिभाषा सीमित है।

केवल कृदन्तीय रूप एव सहायक क्रिया का योग ही सयुक्त क्रिया नही अपितु चल-चल भाग-जा आदि भी सयुक्त क्रियाए हैं।

डा० भोलानाथ के अनुसार जिस प्रकार एकाधिक सज्ञाओ या विशेषणो के योग से समास की रचना होती है उसी प्रकार सयुक्त क्रिया एक प्रकार से क्रिया समास है, जिसमें एकाधिक क्रियाओ को मिलाकर विशेष भाव की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रसग मे यह भी स्पष्ट्य है कि सयुक्त क्रिया मे रचना के स्तर पर कोई मौलिक भेद नही हैं। दोनो ही में एक क्रिया या प्रक्रिया को व्यक्त करने के लिए एकाधिक धातुओ की सहायता ली जाती हैं। हा क्रिया समास के सहारे सयुक्त काल मे काल की अभि-व्यक्ति पर बल होता है (करता है किया है आदि) तो सयुक्त क्रिया मे भाव पर (कर चुका चल पडा)। जहा तक पारिभाषिक स्वरूप का सम्बन्ध है डा० भोलानाथ की मान्यता मे मेरी भी सहमति है पर सयुक्त क्रियाओ के जो आठ भेद डा० भोलानाथ ने गिनाए हैं वे सर्वथा त्रुटिपूर्ण एव परि-भाषा की परिधि से बाहर है यथा—दर्शन देना (नामिक) ऊचा करना (विशेषणिक) पार होना, एक होना (सांख्यिक) अपना बनना (सार्वनामिक) आगे करना पीछे करना (क्रिया विशेषणात्मक) हसी मजाक करना आदि।

उपर्युक्त उदाहरण सयुक्त क्रियाओं के कदापि उदाहरण नहीं है। इस प्रकार तो घर जाना, पार लाना आदि सभी सयुक्त क्रियाए कहलाएगी। जबकि स्पष्टत पूर्व शब्द सज्ञा विशेषणादि है। फिर तो सयुक्त क्रिया (दा

---

१ कामताप्रसाद हिन्दी व्याकरण पृ० ३१०

या दो से अधिक क्रिया योग) नाम ही त्रुटिपूर्ण हो जाएगा साथ ही इनमें कोई सामासिकता भी नही । इतना ही नहीं फिर तो सज्ञा, विशेषणादि शब्दों के सानिध्य मे जो भी क्रिया रूप आएगा सयुक्त क्रिया कहलाएगा । मेरे विचार में सयुक्त क्रियाओ के निम्नलिखित रूप हैं–

१ कृदन्तीय रूप+क्रिया रूप—१ वर्तमान कालिक कृदन्त+क्रिया रूप पढते रहना, लिखते जाना (सातत्यता—यहाँ से जाकर पढते रहना । २ भूतकालिक कृदन्त+क्रिया रूप । खाया करता ।

२ दो क्रिया रूपो का योग–कर बैठना कर चुकना । इसके भी निम्नलिखित भेद हैं । द्वन्द्व समास की भाति 'और लोप वाली सयुक्त क्रियाए खा-पी (खा और पीकर) बहुब्रीहि समास की भाति अन्यार्थ प्रधान वाली सयुक्त क्रियाए – उठ बैठ (निजी अस्तित्व खोकर दूसरे के आदेशानुसार कार्य करना) कूद पढना (किसी काम में रत हो जाना) इसी प्रकार के अर्थ के अनुरूप इनके अनेक भेद हो सकते हैं जिसमे एक पृथक शोध अपेक्षणीय है ।

सप्तम अध्याय

उपसर्ग एवं प्रत्यय प्रकरण

७० धातुओं, प्रातिपदिकों एव विविध शब्द रूपो के पूर्व एव पश्च में प्रयुक्त होकर उन्हें अभिनव अर्थ में परिवर्तित करने वाले भाषा में स्वतन्त्र रूपेण प्रयुक्त न होने वाले एव निजी अर्थ न रखने वाले शब्दांश उपसर्ग एव प्रत्यय सज्ञक होते हैं। उपसर्ग सदव पूर्व म प्रयुक्त होते हैं एव प्रत्यय सर्वदा पश्च में। इस अध्याय मे हिन्दी एव राज० उपसर्गों एव प्रत्ययो का ऐतिहासिक विवेचन किया जाएगा।

७१ उपसर्ग—

सस्कृत काल म उपसर्ग क्रियाओ से पूर्व प्रयुक्त होते थे। पाणिनि ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है—उपसर्गा क्रियायोगे (१/४/५६)। पाणिनि ने सस्कृत म कुल २२ उपसर्ग गिनाए हैं—प्र परा अप सम, अनु अव, निस निर दुस दुर, वि आङ नि, अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि एव उप। पालि काल म भी उपसर्गों की कुल सख्या २० थी। प्रा० अप० काल मे चौबीस उपसर्ग प्रयुक्त होते थे। हिन्दी भाषा म उपसर्गों के प्रयोग म और विकास हुआ है। हिन्दी में उपसर्ग केवल क्रिया रूपो के साथ ही प्रयुक्त नही होते अपितु सज्ञा–विशेषणादि के साथ भी प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी भाषा म कुल निम्नलिखित उपसर्ग हैं— अ, अन् अनु अप अभ अव अल आ

उ, उद् उन् अप्, ओ, क, कु, दुर् दु, दर् मि, मिट् परा, परि, व बा, ब, वि, स, सु ला, हम ।

उपर्युक्त उपसर्गों को उनके मूल स्रोत के आधार पर तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—(१) तत्सम (२) तद्भव (३) विदेशी

७११ तत्सम उपसर्ग

अनु—अनुदान अनुभव, अनुकरण अनुरूप, अनुकम्पा आदि । संस्कृत काल में यह प्रत्यय पीछे के अर्थ में प्रयुक्त होता था । हिन्दी भाषा म इसके अर्थ म विकास हुआ है । हिन्दी म यह पीछे समान आदि अर्थों म प्रयुक्त होता है ।

अप—अपहरण अपकार अपयश अपनाद आदि । यह हेयार्थ में प्रयुक्त होता है ।

अभि—अभिमान अभियोग, अभिसार । यह अधिक' तरफ आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है ।

अव—अवगुण अवनत । यह हीन अर्थ म प्रयुक्त होता है ।

आ—आगम आगमन आकर्षण आदि । यह तक समेत आदि अर्थों मे प्रयुक्त होता है ।

उत्—उत्पीडन । यह ऊचा, ऊपर आदि अर्थो म प्रयुक्त होता है ।

उप—उपराष्ट्रपति उपकुलपति, उपकार । सहायक, गौण छोटा एव भलाई आदि अर्थों म प्रयुक्त होता है ।

दुर—दुगुण, दुर्दिग आदि । बुरे अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

नि—निकृष्ट निकप । हेय अर्थ म प्रयुक्त होता है ।

निर—निगुण, निरथक निराकार आदि रहित अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

परा—पराजय, पराक्रम । उल्टा, पीछे आदि अर्थों म प्रयुक्त होता है ।

परि--परिक्रमा परिश्रम । चारों ओर, पूर्ण आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।

प्रति-प्रतिकार विरुद्ध अर्थ मे)

वि—विस्मरण, विदेश। दूसरा, अभाव आदि अर्थों मे प्रयुक्त होता है।

स—सजीव, सरस। सहित अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

सु सुयोग्य, सुशिक्षित । अच्छा अर्थ मे प्रयुक्त होता है । उपयुक्त तत्सम प्रत्ययो के अर्थों का हिन्दी मे विकास हुआ है । राजस्थानी भाषा मे उपयुक्त सभी प्रत्यय यत्किंचित ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ उक्त अर्थों मे ही प्रयुक्त होते हैं, यथा—अभमोन (अभिमान) आदि ।

७ १ २ तद्भव उपसर्ग

उ–उभर, उथल (ना) आदि । इसका उद्भव स० के 'उद् उपसर्ग से हुआ है । प्रा० अप० काल मे यह उ रूप मे प्रयुक्त होता था। हिंदी भाषा मे यह उ रूप मे ही प्रयुक्त होता है । यह ऊपर, ऊंचा आदि अर्थों मे प्रयुक्त होता था । हिन्दी भाषा मे इन अर्थों के अतिरिक्त अन्य अर्थों मे भी प्रयुक्त होता है ।

उन—उन्चास, उन्तीस आदि । इसका उद्भव स० 'ऊन' से हुआ है । संस्कृत मे यह 'एक कम' अर्थ मे प्रयुक्त होता था एवं इससे संख्यावाची विशेषण रचित होते हैं । हिन्दी में भी यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अन—अनमोल, अनपढ अनजान अनमेल आदि। यद्यपि यह स० के २२ उपसर्गों में परिगणित नही है पर यह नञ् (निषेध अर्थ मे) के रूप मे स्वर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों से पूर्व प्रयुक्त होता था। इसी अर्थ मे हिंदी में इसका विकास हुआ है।

क कु–यद्यपि स० के २२ उपसर्गों मे कु परिगणित नहीं है पर कुपुत्र आदि शब्दों मे इसका प्रयोग उपलब्ध होता है, यथा– पुत्रो–कुपुत्रो जायेते

है। इस भ्रान्त धारणा का निवारण मैं अन्यत्र कर चुका हू ।[1]

ऐतिहासिक स्रोत की दृष्टि से हिन्दी म चार प्रकार क प्रत्ययो का प्रयोग होता है (१) तत्सम २ तद्भव ३ देशज ४ विदेशी। यहा इन चार वर्गों के अन्तगत ही उपयुक्त सभी प्रत्यय भेदो (कृद्—तद्धित आदि) को प्रस्तुत किया जा रहा है—

७ २ १ तत्सम प्रत्यय—

'आ (स्त्री प्रत्यय) इसका सम्बन्ध स० के स्त्री प्रत्यय टाप् (आ) प्रत्यय से है । हिन्दी मे यह इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता है यथा—माननीया आदर णीया आदि ।

ता—इसका सम्बन्ध सस्कृत केतल प्रत्यय से है (४/२/४3) सहायता। हिन्दी म इसका अथ विस्तार हुआ है स्वतन्त्रता, नवीनता, मौलिकता आदि

त्व—गुरुत्व लघुत्व, कवित्व आदि ।

त्य—इस प्रत्यय का सम्बन्ध स० के त्यक (त्य) से है । हिन्दी म इसका अथ विस्तार हुआ है—पाश्चात्य पौर्वात्य ।

दा—सदा, सवदा । इसका सम्बन्ध स० के 'दा प्रत्यय से है जो सवनामो के साथ जुडकर काल वाचक अथ व्यक्त करता था (५/३/१५)

था—इसका सम्बन्ध स० के थाल प्रत्यय से है तत्सम रूप में ही यह हिन्दी में आया है, यथा—तथा (५–३–२३) ।

त्र—यत्र, तत्र, सवत्र —इसका सम्बन्ध स० के 'त्रल प्रत्यय से है (५ ३ १०) ।

तं – वस्तुत, सामा यत आदि । इसका सम्बन्ध म० के तसिल्—

---

१ क डा० मुरारीलाल उप्रति हिन्दी मे प्रत्यय विचार पृ० ३२३
ख डा० रामकृष्ण 'महेन्द्र बीकानेरी बोली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन पृ० १०६ १० ।

वर्गीकृत किया जा सकता है—

(१) संज्ञापद व्युत्पादक उपसर्ग —क—उपसर्ग+संज्ञा=व्युत्पन्न संज्ञा यथा-अन्याय, अनहित, अपूत, परपोता आदि, ख— उपसर्ग+धातु=व्युत्पन्न संज्ञा, यथा—प्रपंच अनबन आदि।

(२) विशेषण पद+व्युत्पादक उपसर्ग—क उपसर्ग+संज्ञा=विशेषण यथा— अनमोल, नासमझ दुबल, सपूत आदि। ख उपसर्ग+विशेषण=विशेषण—अद्भुत, कुमार्गी उनतीस ग उपसर्ग+धातु=विशेषण, अटल, अनूप अनपढ़ अनजान आदि। राजस्थानी भाषा मे भी उपरिवत उपसर्ग शब्द व्युत्पन्न करते हैं। (देखिये लेखक कृत–बीकानेरी बोली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन पृ० ११२–१३)

७ २ प्रत्यय

प्रत्यय शब्दांत मे संलग्न होकर अभिनव शब्दार्थ सृष्ट करते हैं। प्रारम्भ में ये शब्दांश अर्थवान थे पर कालान्तर मे ये अपना अर्थ खो बैठे एव शब्दांत में जुड़कर ही अर्थवान होने लगे। संस्कृत मे मुख्यत निम्नलिखित प्रत्यय भेद हैं— सुप् एव तिङ् प्रत्यय (विभक्ति प्रत्यय प्रातिपदिकांश एव धातु में जुड़कर पद सृष्ट करने वाले प्रत्यय) २ कृत् एव तद्धित प्रत्यय (धातुओं मे जुड़कर शब्द सृष्ट करने वाले (कृत्) एव संज्ञा विशेषणादि मे संलग्न होकर नव संज्ञा विशेषणादि सृष्ट करने वाले तद्धित। ३ स्त्री प्रत्यय (जिनके योग से स्त्रीलिंगी पद सृष्ट होते हैं) ४ स्वार्थे प्रत्यय। प्रा० भा० आ० में यही प्रत्यय रचना प्रक्रिया रही। हिन्दी एव राज भाषा मे भी प्रत्ययों के प्राय उपयुक्त भेद ही स्वीकार किये गए हैं। कुछ भाषाविदों ने पाश्चात्यों के अनुकरण पर पूर्व प्रत्यय मध्य प्रत्यय पर प्रत्यय तीन भेद स्वीकार किए हैं। हिन्दी भाषा मे प्रत्यय विषयक कुछ भ्रान्त धारणाएं भी हैं यथा–डा० मुरारीलाल उप्रैति ने परसर्ग (ने को, का से आदि) एव निपातों को भी प्रत्यय मान लिया है जो त्रुटिपूर्ण

सायता ,सहायता, गुणवा, घावोन (धनवान, गुणवान, जळमयी (जलमय) गायक आदि ।

तद्धित प्रत्ययों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में कुछ कृत् प्रत्यय भी तत्सम रूप मे प्रयुक्त होते हैं, यथा-स्तुति, (स० क्तिन्-ति) कर्त्ता (स० तच्) भिक्षु (स० उ) दायक (स० ण्वुल्) आदि ।

७ २ २ तद्भव प्रत्यय—

अग —यह स्वार्थ प्रत्यय है जो हिन्दी में केवल 'दंगग' शब्द निडर अर्थ) में प्रयुक्त होता है। इसका सम्बन्ध सम्भवत 'अग से ही प्रतीत होता है। अगड-यह भी स्वार्थ प्रत्यय है जो बतगड शब्द मे प्रयुक्त होता है। 'अत'— गढन्त रटन्त- इसका सम्बन्ध स० क्त 'न्त (अन्त) प्रत्यय से है। इससे विशेषण शब्द रचित होते हैं। अत्-रगत लागत् बचत्। इसका सम्बन्ध स० के शत (अत्) प्रत्यया त शब्दों से है। डा० भोलानाथ ने इसका सम्बन्ध स० त्व से जोड़ा है जो त्रुटिपूर्ण है। अन—चलन, रहन आदि- इसका सम्बन्ध स० के ल्युट् ७ अन प्रत्यय से ह। अल—अडियल दढियल। इसका सम्बन्ध स० अन से ह एव इससे स्वभाववाची विशेषण शब्द रचित होते हैं।

आध—यह स्वार्थ प्रत्यय है जो 'सडाध शब्द मे प्रयुक्त होता है। आ हिन्दी भाषा मे इस प्रत्यय के कई स्रोत हैं। अर्थानुरूप इसके निम्न-लिखित स्रोत है— आँ- (स्त्रीलिंग) स० टाप् से आ (पुल्लिंग) स० अक >अअ-आ (घोटक >घोडअ>घोडा) भूतकालिक कृदन्त स० क्त (स० गत >गअ>गा>ग्या>गया) प्रेरणार्थक स० णिच>आ। आई इस प्रत्यय के विकास के सम्बन्ध म भाषाविदो म मतैक्य नहीं हैं। डा० सुनीतिकुमार इसका सम्बन्ध धातु से प्रेरणार्थक रूप आप म इका के योग से इसका सबध जोडते हैं। हानले स० तिका' से इसे सम्बद्ध मानते हैं। डा० भोलानाथ ने डा० चटर्जी एव बानीकान्त काकती दोनो के मत का समर्थन कर इसका विकास

त (५ ३ ७) प्रत्यय से है। हिन्दी म इसके अथ म विस्तार हुआ है।

वी=मेधावी, मायावी, तेजस्वी। इसका सम्बन्ध स० के विनि ७ वी (५ २ १३१) प्रत्यय से हैं।

वान—धनवान, पुत्रवान गुणवान। इसका सम्बन्ध सं० के मतुप‍ऽ वान प्रत्यय से हैं। हिन्दी म इस प्रत्यय का अथ विस्तार हुआ है।

मात्र—क्षणमात्र मुट्ठीमात्र। इसका सबध स० के मात्रच प्रत्यय से है। इसके स्थान पर अधिकाशत 'भर' का प्रयोग होता है। वत्—पुत्रवत् आत्मवत् इसका सम्बन्ध स० के वति (५ १ ११५) प्रत्यय स है। अक—शिक्षक गायक, धावक, पाठक आदि। यह प्रत्यय कृत् भी है एव तद्धित भी। जहाँ यह तद्धित है वहा इसका सम्बन्ध स० के वुन (४–२–६१)(अक) प्रत्यय से है एव जहा यह कृत् प्रत्यय है वहा इसका सम्बन्ध स० ण्वुल (३ ३ १०) प्रत्यय से है। इक—धार्मिक सामाजिक राजनीतिक आदि। इसका सम्बन्ध स० क ठक (इक) प्रत्यय से है (४ ४ ४१)। हिन्दी भाषाविदा न इसे तद्भव प्रत्यय माना है पर यह तद्भव नही तत्सम प्रत्यय हा हैं। मय—जलमय इसका सम्बन्ध स० के मयट (मय) प्रत्यय से है। ईय—पाणिनीय वर्गीय—इसका सम्बन्ध स० के छञ (ईय) प्रत्यय से है। हिन्दी म इसका अथ विस्तार हुआ है। स० मे यह तेन प्रोक्तम् (उसके द्वारा कथित-पणिना प्रोक्तम इति पाणिनोय) अथ म या वर्गादि शब्दो के पीछे प्रयुक्त होता था हिन्दी म यह सबध अथ म भी प्रयुक्त होता है यथा—राजकीय प्रशासकीय आदि। उक्त तत्सम प्रत्यया मे ण्वुन (अक) प्रत्यय को छोडकर शेष सभी प्रत्यय तद्धित है। इन तत्सम प्रत्ययो के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रत्यय हैं जिनका सस्कृत म प्रत्यय रूप म उल्लेख नहीं मिलता पर वे तत्सम शब्द हैं एव हिन्दी म प्रत्यय वत प्रयुक्त होते हैं, यथा-पूववर्ती परवर्ती साधारणतया सामान्यतया, श्रमजीवी आदि।

राजस्थानी भाषा मे भी उक्त प्रत्यय तत्सम रूप में प्रयुक्त है यथा—

एव स० ल्युट्—अन प्रा० अण, ण हि० न के योग से हुई है । उदा–न, स्थान, थवान । 'आनी'–यह स्त्री प्रत्यय है । इसका विकास स० आनुक्+ ङीष (ई)=आनी (इन्द्राणी रुद्राणी आदि) प्रा० आणी हि० आनी के रूप में हुआ है, यथा–देवरानी, जेठानी । संस्कृत काल में यह इन्द्र, वरुण, भव शव, रुद्र मृड (दिवाडी) हिम, अरण्य, यवन, मातुल आदि शब्दों में ही प्रयुक्त होता था । हिन्दी में इसके अर्थ में विकास हुआ है । यह इन तत्सम शब्दों के अतिरिक्त तद्भव रूप में भी प्रयुक्त होता है यथा—देवरानी, मेहतरानी आदि । 'आप 'आपा —बुढापा मोटापा आदि । इसका उद्भव स० आत्म प्रा० अप० हि० अप्प आप आपा, पा के रूप में विकास हुआ है । डा० भोलानाथ ने इसका सम्बन्ध स० त्व या त्वक से जोडकर इसका विकास इस प्रकार बताया है स० त्वक प्रा० प्पअ हि० प, पा । मुझे इसका विकास इसकी अपेक्षा आत्म से ही अधिक संगत प्रतीत होता है ।

आयत–पंचायत बहुतायत । हार्नले एव बीम्स ने इसका सम्बन्ध स० मत वत् (मतुप वतुप) से माना है–पुण्यवत, प्रवत अमत, आयत यह मत कल्पना त्रुटिपूर्ण । डा० भोलानाथ इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध मानते हैं । मेरे विचार में इसका उद्भव स० फक्–आयन (फक का स० व्याकरण रूढि में आयन आदेश होता है) स० म आयन्—प्रा० आअण् आयअ हि० आय त (स्वार्थे) आर—आर/ई इसका सम्बन्ध स० कार से है– स० कुम्भकार, चर्मकार प्रा० कुम्हार चम्मआर हि० कुम्हार चमार आदि । आर में इन प्रत्यय के योग से स्त्री० रूप सम्पन्न होते है चमारिन । आल —ससुराल ननिहाल । इस का सम्बन्ध स० आलय से है । श्वसुरालय प्रा० ससुरालअ हि० ससुराल । लू, आलू लज्जालू झगडालू । इसका सम्बन्ध स० लु से है । स० लज्जालु प्रा० लज्जालु हि० लज्जालु । आवा ल न शब्दों मे यह संस्कृत में प्रयुक्त होता था, दयालु कृपालु । इसी का यह विकसित या विकृत रूप है ।

'आव आवा' इसका सम्बन्ध प्रेरणार्थक आप से है । प्रा० आप

वेदिक ताति एव प्रेरणाथक भाप+इका से जोडा है । मरे विचार म यह दो प्रत्ययों का योग है । प्रेरणाथक णिच्>आ+ङीप>ई ।

हिन्दी मे प्रेरणार्थक धातुए पढ़ा, लिखा, म स्त्रीवाची 'ङीप्' (ई) के योग से लिखाई पढ़ाई आदि रूप निष्पन्न हुए हैं । 'वट'प्रत्ययान्त शब्द इन्ही के समानार्थी है—लिखावट, सजावट आदि। सजा आदि शब्दों में इन्हीं के अनुकरण पर ये रूप सृष्ट हुए हैं।

'आऊ—इस प्रत्यय का सम्बन्ध संस्कृत के 'उ' प्रत्यय से है । संस्कृत काल म यह प्रत्यय सन् प्रत्ययान्त धातुओं म प्रयुक्त होता था । (सनाशसभिक्ष उ ३ २ १६८) । हिन्दी मे यह दीर्घीकृत रूप उ>ऊ रूप म प्रयुक्त होता है एव प्रेरणाथक धातु रूपो के साथ प्रयुक्त होता है । दिखा-ऊ—दिखाउ, उडा-ऊ —उडाऊ टिका-ऊ—टिकाऊ आदि । कुछ भाषाविदो ने इस 'आऊ' प्रत्यय मान लिया है पर यह आऊ नही 'ऊ है एव इसका सम्बन्ध स० के उ प्रत्यय से हैं । हार्नले इसे आऊ मानकर इसका सम्बन्ध स० के त या स्वार्थे 'क युक्त तक' से जोडते हैं । यह पूर्णत त्रुटिपूर्ण हैं । स० में क्त आदि रूप क्त्ती कर्त्तारी कर्त्तार आदि प्रयुक्त होते थे । अत इससे आऊ का सम्बन्ध असभव है । उन्होने इसका विकास क्रम इस प्रकार बताया है—

स० खादितृक प्रा० खाइउ हि० खाऊ । डा० चटर्जी ने उक से इसका सम्बन्ध जोडा ह एव डा० भोलानाथ ने 'ऊक से इसे सम्बन्धित किया ह । पर मेरे विचार मे 'ऊ प्रत्यय हिन्दी म क्रिया रूपो के साथ ही प्रयुक्त होता है । अपवादत पंडिताऊ (टिकाऊ आदि के अनुकरण पर) रूप प्रयुक्त होता हैं । अत इसका विकास संस्कृत कृत् प्रत्यय 'उ' से मानना अधिक सगत प्रतीत होता हैं ।

आडी—खिलाडी, जुआरी । इसका सम्बन्ध स० कार/ई से हैं । इससे कत्र्तावाचक शब्द सृष्ट होते हैं । 'आन'—इसकी व्युत्पत्ति प्रेरणाथक —आ

सम्बन्ध स० 'वर्ति' से जोडा है । बीम्स इसे म० प्रवृ धातु से जोडते हैं । डा० भोलानाथ ने तव्य+क+त्व से इसे सम्बंधित किया है । वस्तुत ये मत युक्तियुक्त प्रतीत नही होते क्योकि ऐसे विकसित प्रमाण प्रा० अप० में नहीं मिलते और न इनका अर्थ साम्य है । स० प्राहृत>प्रा०प्राहट्ट अप०प्राहट रूप अधिक सम्भव प्रतीत होता है ।

इक—मासिक, कालिक आदि । इसका विकास म० के ठञ् (काला-टञ् ४-३-११)—इक (सस्कृत व्याकरण म ठञ को इक आदेश होता था) से हुआ है । हि ी म यह इक' रूप म ही प्रयुक्त होता है । इत' इसका सम्बन्ध स० 'क्त' प्रत्यय से है । यह अधिकाशत तत्सम श ावली म ही प्रयुक्त होता है यथा—लिखित, पठित, पतित । 'इन यह स्त्री प्रत्यय है । स० म इसका उल्लेख उपलब्ध नही होता । म० भा० आ० म ई ी प्रत्यय उपलब्ध होता है । इसी से इसका विकास हुआ है । ईनी >इन (राज० म प्रण) धोबिन आदि । डा० भोलानाथ इस स० आनी से विकसित मानते है । यह त्रुटिपूर्ण ह क्योकि आनी स तो मेहतरानी गुरुआनी आदि 'आनी प्रत्ययान्त शब्द ही विकसित हुए हैं । इम इम/मा । इसका विकास सस्कृत के इमनच ् इम प्रत्यय से हुआ है यथा—महिमा गरिमा आदि ।

इय इया—भिन्न अर्थों मे इसके भिन्न-भिन्न स्रोत हैं । स० घ (इय) छ (ईय) एव ठक (इक इय) प्रत्ययान्त शब्दों से इन प्रत्ययान्त शब्दो का सम्बन्ध ह । डा० चटर्जी डा० वर्मा डा० तिवाडी आदि इसका सम्बन्ध इय, ईय इक से ही मानते हैं । डा० भोलानाथ ईयक से इसे सम्बद्ध करते है । इल—स्वप्निल पकिल आदि । इसका सम्बन्ध स० इल से है । ई-यह स्त्री० प्रत्यय ह (इसके लिए देखें पृ० १०३) । स्त्री प्रत्यय के अतिरिक्त अन्य अर्थों म भी यह प्रयुक्त होता है यथा—देशी विदेशी (सम्बन्ध अर्थ) इस अर्थ म यह स० ईय से विकसित हुआ है यथा—देशीय-देसीअ, देसी । तेली,

प्रा० प्राये हि० बाव, प्राव । यह प्रेरणार्थक धातुओं में प्रयुक्त होता है। हिन्दी में यह कृत् व तद्धित प्रत्यय के रूप में विकसित हो गया है। चुनाव, फुराव, बहाव आदि। हार्नल ने इसका विकास स० त्व, त्वन>प्रा० त्त, त्तण प्रप्रण अप० ग्रउ, प्रप्रणु के रूप में माना है। चटर्जी ने प्रेरणार्थक आप+उक+प्रा से इसका सम्बन्ध जोडा है। डा० उदयनारायण प्रेरणार्थक आप+प्र+क से इसे सम्बन्धित मानते हैं। डा०भोलानाथ ने यही मान्यता व्यक्त की है। प्रावट--थकावट सजावट। इसका सम्बन्ध स० प्रावत से है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है। स० मावत प्रा० प्रावत्तो प्रावट्ट अप० प्रावट्ट हि० प्रावट। चटर्जी ने इसका सम्बन्ध प्रेरणार्थक प्राप+वत्ति से माना है। स० प्राप+वति प्रा० प्रावट्ट हि० प्रावट। डा० भोलानाथ ने स० तव्य +क+त्व>पा० प्रावट के रूप में इसका विकास माना है। यह मान्यता सगत प्रतीत नही होती क्योंकि प्रथम तो स० में तव्य प्रत्यय चाहिए अर्थ में प्रयुक्त होता था (तव्यत०पानीयर) दूसरा यह विकास क्रम भी सम्भव प्रतीत नही होता।

प्रास--इसका सम्बन्ध स० के सन् (इच्छार्थक) प्रत्ययान्त धातुओं से है। हिन्दी में केवल पा धातु के सनन्त रूप पिपासा से विकसित प्यास (जीने की इच्छा) ही प्रयुक्त होता है। इसी में लिंग प्रत्यय प्रा/इ/ए जुड़ते हैं। हार्नले ने इसका सबध वाछा से जोड़ा है पर ऐसे प्रयोग नही मिलते। डा० उदयनारायण प्रास् को स० प्राप+वश से सम्बद्ध मानते हैं। यह सवथा त्रुटिपूर्ण है। क्योंकि ऐसे रूप सस्कृत में नही मिलते। डा० भोलानाथ ने स० प्राशा से इसे सम्बद्ध माना है। वस्तुत यह 'प्राशा नही प्रपितु सन् प्रत्ययान्त रूप 'पिपासा' (पा+सन्+प्र+टाप्) है। इस प्रास से डा० साहब ने इसे 'प्राशा रूप से भ्रातिवश विकसित मान लिया है। प्राहट इसका सम्बन्ध स० प्राहत से है। इसका विकास स० प्राहत् प्रा० प्राहट हि० प्राहट है। यथा-चिल्लाहट घबराहट गडगडाहट आदि। हार्नले ने इसका

सम्बन्ध स० 'वत्ति' से जोड़ा है । बीम्स इसे स० मतु प्रातु से जोड़ते हैं। डा० भोलानाथ ने 'तव्य+क+त्व' से इसे सम्बन्धित किया है । वस्तुत ये मत युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होते क्योंकि ऐसे विकसित प्रमाण प्रा० अप० में नहीं मिलते और न इनका अर्थ साम्य है । स० आढ्न>प्रा०आड्टट अप०आड्ट रूप अधिक सम्भव प्रतीत होता है।

इक—मासिक, कालिक आदि । इसका विकास स० के ठञ् (बाला-टठञ् ४-३-११)—इक (संस्कृत व्याकरण म ठञ का इक आदेश होता था) से हुआ है । हिन्दी म यह इक' रूप मे ही प्रयुक्त होता है । इत' इसका सम्बन्ध स० क्त प्रत्यय से है । यह अधिकांशत तत्सम शब्दावली मे ही प्रयुक्त होता है, यथा—लिखित पठित, पतित । इन यह स्त्री प्रत्यय हैं । स० म इसका उल्लेख उपलब्ध नहीं होता । म० भा० आ० म ई नी प्रत्यय उपलब्ध होता है । इसी से इसका विकास हुआ है । ईनी ▷इन (राज० मे प्रयु) धोबिन आदि । डा० भोलानाथ इस स० आनी से विकसित मानते हैं । यह त्रुटिपूर्ण है क्योंकि आनी से तो मेहतरानी गुरुआनी आदि आनी प्रत्ययान्त शब्द ही विकसित हुए हैं । इम इम/आ । इसका विकास संस्कृत के इमनच् ० इम प्रत्यय से हुआ है यथा—महिमा गरिमा आदि ।

इय इया—भिन्न अर्थो म इसके भिन्न-भिन्न स्रोत हैं । स० घ (इय) छ (ईय) एव ढक (इअ इय) प्रत्ययान्त शब्दों से इन प्रत्ययान्त शब्दों का सम्बन्ध है । डा० चटर्जी डा० वर्मा डा० तिवारी आदि इसका सम्बन्ध इय ईय इक स ही मानते हैं । डा० भोलानाथ 'ईयक' से इसे सम्बद्ध करते है । इल—स्वप्निल, पंकिल आदि । इसका सम्बन्ध स० इल से है । ई-यह स्त्री० प्रत्यय है (इसके लिए देखें पृ० १०३) । स्त्री प्रत्यय के अतिरिक्त अन्य अर्थों म भी यह प्रयुक्त होता है यथा—देशी विदेशी (सम्बन्ध अर्थ) इस अर्थ म यह स० ईय से विकसित हुआ है यथा-देशीय-देसीअ देसी । तेली

माली धोबी आदि इस अर्थ मे यह 'इक' से विकसित हुआ है । स० तलिक प्रा० तलिम्र हि० तेली । 'ईन' इनका सम्बन्ध स० ख>ईन (ख प्रत्यय को ईन आदेश होता था) से है यथा—नवीन कुलीन, नमकीन आदि ।

ईय--इसका सबंध-स० छ>ईय (छ को इय आदेश होता था) से है यथा—स्वर्गीय । इसका सबंध स० अनीयर प्रत्यय से भी है यथा—दर्शनीय आदि । ईल—इसका सम्बन्ध स० के इल प्रत्यय से है । इसका विकास क्रम इस प्रकार है । स० इल प्रा० इल्ल हि० ईल एव लगिक प्रत्यय यथा—पथरीला जहरीला चमकीला आदि । इसका गुणीय रूप एलर खल बिगडल, चुडल भी है । एर/आ ई ए– का सम्बन्ध स० कृते से है इसका विकास क्रम इस प्रकार है—स० कृते प्रा० केरम्र अप० केरउ हि० एर राज० एरो । यह ममेरा मौसेरा चचेरा आदि पारिवारिक सम्बन्धवर्ती शब्द एव लुटेरा सपेरा आदि व्यवसायवाची शब्द एव कमेरा (राज० कोमेडो काम करने मे निष्णात) आदि शब्द स्पष्ट होते है । हानले एर का सम्बन्ध स० दश से मानता है पर यह त्रुटिपूर्ण है ।

टनर अक्र (स० ठट ठक्र प्रा० ठठार>ठठेरा) मे इसका सम्बन्ध जोडते हैं । यह मत भी सर्वथा त्रुटिपूर्ण है क्योकि स० मे यह अक्र' रूप नही अपितु कृ धातु का गुणीय रूप कर है एव इसका वृद्धि रूप कार है यथा कुम्भ करोति कुम्भकार (कुम्भ, कृ+अण) । इनसे आर कुम्हार चमार) का विकास हुआ है न कि 'एर का । एडी मे—गेडी (भाग पीने वाला) यह एर का राजस्थानी रूप है ।

ओई—इसका उद्‌भव स० पति से हुआ है । स० पति प्रा० वइ, उइ हि० आइ । यह बहनोई ननदोई आदि शब्दो मे प्रयुक्त होता है । ओट ओट/आ ई ए–लगोटा, कसोटी । इनका सम्बन्ध स० पट्टक एव पट्टिका से है । स० कसपट्टिका प्रा० कसवटिमा हि कसौटी ।

इसका विकास क्रम इस प्रकार है—स० पट्टक प्रा० वट्टग्र हि० ओटा (व>उ>ओ–सम्प्रसारण एव गुण) प ट्टका प्रा० व ट्टग्रा हि० ओटी। कार-इसका सम्ब ध म० कार स ही है यथा—भाष्यकार साहित्यकार। हिन्दी में इसके प्रय म विकास हुआ है यथा—जानकार गीतकार सगीतकार गीतकार, रचनाकार आदि। की —इसका विकास अक (स० ल्युट) प्रत्ययान्त शब्दो मे स्त्रीलिंग वाची प्र० ई के योग से हुआ हैं–यथा डुबकी चुमकी धमकी आदि। ज/आई/ए/ इसका सम्बन्ध स० जातम् स है यथा—मत्सि जातम् इति सर सिसम्। इसी प्रकार जलज पकज आदि। हिन्दी मे यह तत्सम शब्दो के अतिरिक्त भतीजा, भतीजी, भाजा, भाँजी आदि शब्दो म भी प्रयुक्त होता है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है। स०भ्रात जातक पा०भादजाउ भतीजउ भत्ती जाऊ हि० भतीजा इसी प्रकार जातिका जाइग्रा-जी। ट/आ ई ए नक्टा, (नाककटा) स० कत से इसका विकास हुआ है। स० कत प्रा० कट्ट हि० कट्ट हि० कट्ट कटा। ऊटा ऊटी। इसका विकास स० वत् (वत) से इस प्रकार हुआ है।

स० वर्त प्रा० वट्ट हि० ऊट/आ ई ए/ क्लूटी क्लूटी। डा० भोला नाथ ने यहाँ ऊ का आगम वधूटी के साम्य पर माना है पर मरे विचार मे यह वह का सम्प्रसारण उ है।

डा० भोलानाथ ने चिमटा, चिमटी म भी प्रत्यय माना है पर यह 'ट वर्णान्त सज्ञा शब्द है। ठ का विकास ष्ठ से हुआ है। स० षष्ट प्रा० छट्ठ हि० छठा। ड—यह स्वार्थ प्रत्यय ह। ड' का उद्भव स० टक अन्त वाले शब्दों से हुआ है। प्रा० काल में टक का विकास डग्र म हुआ। यथा–फोटक प्रा० फोडग्र हि० फोडा। (टोड प्रा में ट को ड होता ह) राजस्थानी मे यह स्वार्थ प्रत्यय प्रधान है। हिन्दी म राजस्थानी क माध्यम से ही यह प्रत्यय आया है। यथा—दुखडा, मुखडा आदि। क्षेत्रीय प्रभाव से इसका उच्चारण 'र' रूप म भी होता ह। 'त' वतमान कालिक कृत प्रत्यय (इसके लिए देखें क्रिया प्रक

से प्रत्यय आए हैं। यद्यपि अंग्रेजों के सम्पर्क से कुछ अंग्रेजी प्रत्यय भी आए हैं पर इनकी सीमा बुद्धिजीवियों या शिक्षितों तक ही सीमित है।

अन—(मसलन अबरन) आना (नजराना, रोजाना) आनी (अफगानी, रूमानी) इयत् (इन्सानियत्) इश (फरमाइश आजमाइश) खोर (हरामखोर) गर (रफूगर, बाजीगर जादूगर) गार (गुनाहगार, मददगार रोजगार, यादगार) गिरी (बाबूगिरी दादागिरी) गाह ईदगाह चरागाह) गी (गन्दगी मैनगी, मर्दानगी) गीर (राहगीर उठाईगीर) ची (अफीमची मशालची नकलची देगची) जाद / जा ई, ए (शहजादा शाहजादी हरामजादा) दान (पानदान गुलमदानी) दार (थानेदार, दुकानदार पहरेदार) नाक (खतरनाक दर्दनाक) बाज (धोखेबाज नशाबाज) बाजी (मुक्केबाजी) बान (महरबान बागवान) बारी (बमबारी गोलाबारी , बीन (दूरबीन खुर्दबीन) मन्द (जरूरतमन्द) वर (ताकतवर) वार (हफ्तेवार महावार) । राजस्थानी भाषा में ये प्रत्यय इसी रूप में प्रयुक्त होते हैं।

'इज्म' एव इस्ट अंग्रेजी प्रत्यय शिक्षितों द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं, यथा—कम्युनिज्म सोशिएलिज्म कम्युनिस्ट सोशलिस्ट आदि।

रचनात्मक दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रत्ययों को निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१ कृत् प्रत्यय—क-सज्ञापदों के निर्माणकारी कृत् प्रत्यय—धातु + कृत् प्रत्यय = व्युत्पन्न संज्ञा (कृदन्त) यथा—तप + ०२ = तप, बैठक तपत, तपती, चलन, पढाई तराव लिखावट, चलती झांकी आदि। 'ख—विशेषण पदों के निर्माणकारी कृत् प्रत्यय—धातु + कृत् प्रत्यय = व्युत्पन्न विशेषण रूप यथा—घुमक्कड़, लड़ाकू, अड़ियल, घटया, गवया। २ तद्धित प्रत्यय—

(१) सज्ञा से सज्ञा व्युत्पन्न तद्धित प्रत्यय—पचायत बहनोई

२ सवनाम से सना व्युत्पादक, यथा—अपनत्व अपनापन, ३ विशेषण से सनाव्युत्पादक, यथा—ऋूठन, बुढापा ४ क्रियाविशेषण से सना व्युत्पा क यथा—जरुरत ५ सना से विशेषण व्युत्पादक, यथा—तपस्वी, जहरीला ६ विशेषण से विशेषण व्युत्पादक सातवा कमती ७ क्रिया विशेषण से विशेषण व्युत्पादक—उपरी जल्दबाज ।